MAGP-07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

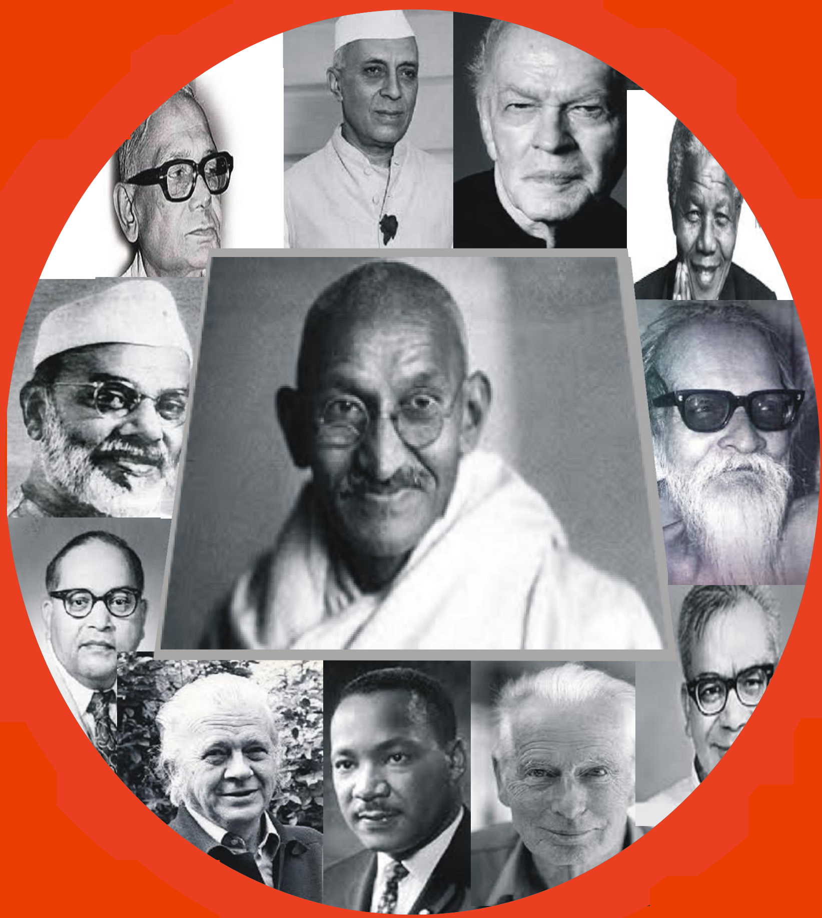

गाँधी के पश्चात् गाँधीवादी विचार एवं कार्य

MAGP-07

वर्धमान महावीर खुला विश्विद्यालय, कोटा

गाँधी के पश्चात गाँधीवादी विचार एवं कार्य

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विष्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरूण कुमार

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ.) एन. राधाकृष्णन

पूर्व अध्यक्ष गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति

राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. (डॉ.) के.एस. भारती

विभागाध्यक्ष (गाँधी एवं विचार)

टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नगापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एल. शर्मा

आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

पाठ लेखन

डॉ. राजेश शर्मा 1

सह-आचार्य , राजनीति विज्ञान

राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

डॉ. रविन्द्र कुमार सोहोनी 2, 3

आचार्य, राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, मंदसौर

मंदसौर (मध्य प्रदेश)

प्रो. (डॉ.) वी. के. राय 4

आचार्य , राजनीति विज्ञान

इलाहबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो. (डॉ.) लीला राम गुर्जर 5

आचार्य , राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

कोटा

डॉ. नरेन्द्र नाथ 8

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

राजकीय डूंगर कॉलेज

बीकानेर (राजस्थान)

डॉ. राधाकृष्ण 9, 15

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय महाविद्यालय, सांभरलेक

सांभरलेक (राजस्थान)

प्रो. (डॉ.) एन. राधाकृष्णन 11

पूर्व अध्यक्ष गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति

राजघाट, नई दिल्ली

डॉ. संतोष मैगज़ीन 12

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग

उपाचार्य एम.एस.जे. राजकीय महाविद्यालय

भरतपुर

फूल सिंह गुर्जर 6
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, झालावाड
झालावाड (राजस्थान)

प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया 7, 10
आचार्य (सेवानिवृत), अर्थशास्त्र
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. बी. अरूण कुमार 13
आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. गोपाल मीना 14
पूर्व गेस्ट फेकल्टी राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, बेरोड़
बेरोड़ (राजस्थान)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

प्रो. (डॉ.) एल आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

उत्पादन : जनवरी 2016 ISBN No. : 978-81-8496-593-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि, कोटा के लिये कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

MAGP-07

वर्धमान महावीर खुला विश्विद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	गाँधी एवं नेहरू	1-17
इकाई - 2	विनोबा भावे का राजनीतिक चिन्तन	18-38
इकाई - 3	विनोबा भावे और भूदान	39-53
इकाई - 4	जयप्रकाश नारायण का समाजवादी और गाँधीवादी विचार	54-66
इकाई - 5	गाँधी एवं लोहिया	67-75
इकाई - 6	अम्बेडकर	76-88
इकाई - 7	जे. सी. कुमरप्पा	89-99
इकाई - 8	भारत में गाँधीवादी आन्दोलन	100-111
इकाई - 9	सर्वोदय आन्दोलन	112-129
इकाई - 10	ई. एफ. शूमाकर	130-141
इकाई - 11	मार्टिन लूथर किंग जूनियर	142-153
इकाई- 12	नेल्सन मण्डेला	154-161
इकाई - 13	आर्ने नेस	162-166
इकाई - 14	जीन शार्प	167-184
इकाई - 15	एम. एन रॉय	184-200

इकाई – 1

गाँधी एवं नेहरू

इकाई रूपरेखा

1.0 उद्देष्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक परिवर्तन

1.3 राजनीतिक शक्ति एवं व्यवस्था

1.4 आर्थिक दृष्टिकोण

1.5 नैतिक एवं राजनीतिक मूल्य

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे:-

- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक चिन्तन।
- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत आर्थिक चिन्तन।
- गाँधी एवं नेहरू द्वारा प्रस्तुत सामाजिक चिन्तन।

1.1 प्रस्तावना

गाँधी एवं नेहरू दोनों ही न केवल अबाधित सामाजिक परिवर्तन के पक्षघर थे, अपितु वे स्थापित एंव प्रचिलित विचार, अवधारणा, संस्था एवं प्रक्रिया की स्वीकृति केवल उसी स्थिति में देना उचित मानते थे, जब तार्किक, वस्तुगत, विवेकजन्य तथा अनुभविक कसौटी पर उनकी औचित्यपूर्णता बनी रहे। अवश्य ही रानीतिक शक्ति एवं सामाजिक परिवर्तन के मुद्दों पर गाँधी व नेहरू का चिन्तन अपने विकल्प की प्रस्तुति में कभी भिन्न हैं, किन्तु वैयक्तिक तथा सामाजिक परिपप्रेक्ष्य में दोनों ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत ऐतिहासिक घटनाक्रम तथा सनातन राष्ट्रीय प्रायोजनों का गंभीर अध्ययन किया। गाँधी एवं नेहरू दोनों ही पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के वरदानों तथा अभिशापों से भी अवगत थे। गंभीर अध्ययन एवं चिन्तन के कर्मण्यवादी दायित्वों को सूत्रबद्ध कर दोनों ने स्वीकारा कि राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता पर स्वराज्य अपूर्ण बना रहेगा, यदि सामाजिक परिवर्तन की दिशा में शिथिलता व्यक्ति-समुदाय अथवा समुदाय-समूह से सम्बद्ध नहीं है। मूलतः इस प्रकरण में मानसिकता तथा मनोवृत्ति के आमूल चूल रूपान्तरण की मनोवृत्ति को स्वीकारना होगा।

गाँधी एवं नेहरू, दोनों ही सामाजिक परिवर्तन के पक्षघर तथा प्रणेता थे। अनेक बार परिस्तिपरक विवरण में उन्हें गुरू-शिष्य स्थिति में इंगित किया गया है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अनुभवों तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की अनुभूति को गाँधी तथा नेहरू ने नवीन अर्थ एवं प्रयोजन प्रदान किये। दोनों को परिपूरक स्थिति में ही औचित्यपूर्ण माना जा सकता है न कि एकाकी स्तर पर। विरोधाभासों के कृत्रिम, अस्वाभाविक रूप से आरोपति करने से दोनों की स्वायत्तता इसी सत्य पर निर्भर है कि व्यक्तित्वैभिन्य की भाँति उनके विचार-विकल्पों की प्रस्तुति को भी तदानुसार इंगित करना आवश्यक है। तुलनात्मक दृष्टि के बावजूद, मूल्य, प्राथमिकताओं तथा सम्बद्ध विकल्प प्रस्तुतिकरण की ज्ञातव्यता अपेक्षित है।

नेहरू ने गाँधीवादी मूल्याधारों का अनुसरण किया किन्तु इस संदर्भ को वे अन्धभक्ति से विलग रखने में भी सफल रहे। प्रारम्भ से ही पश्चिमी संसदीय व्यवस्था प्रक्रिया एवं सम्बद्ध अनिवार्यताओं को स्वीकारोक्ति प्रदान कर नेहरू ने लोकतान्त्रिक समाजवादी योजनाबद्ध विकास, सघन औद्योगिकीकरण, प्रविधि प्रसार तथा विकास हेतु आधुनिक संयंत्र की भूमिका को स्वीकारा। राजनीतिक शक्ति के समसामयिक संयंत्र को स्वीकृति देने के बावजूद नेहरू ने शांति अहिंसा एवं विश्वत्व को निश्चित परिप्रेक्ष्य की अनिवार्यता माना। अवश्य ही नेहरू ने गाँधी की अपेक्षा भिन्न प्रस्तुति की। अन्तर स्पष्टता होना आवश्यक है कि गाँधी सत्ता से दूर रहे जबकि नेहरू ने वास्तविक सत्ता को स्वीकारा तथा उसी पर्यावरण में नवनिर्माण को इंगित किया।

1.2 सामाजिक परिवर्तन

समाज वैज्ञानिक दृष्टि गाँधी की महात्मावादी छवि के संदर्भ में कुछ अर्थों में महत्वपूर्ण है। प्रथम गाँधी के सैद्धान्तिक निर्वचन एवं क्रियात्मक व्यवहार में अन्तराल नहीं है। द्वितीय गाँधी के व्यैक्तिक एवं सार्वजनिक

जीवन के आदर्शों एवं शैली में विभेद नहीं है। उक्त दानों का सन्दर्भ राजनैतिक सामाजिक आन्दोलनों मे अपवाद पूर्ण है। वस्तुतः गाँधी की "प्रेक्सिस" की विशिष्टता का मूल भी ही है। गाँधीय प्रेक्सिस उनकी नैतिक प्राथमिकताओं एवं राजनीतिक गतिविधि की अन्तःक्रिया पर आघृत हैं यह अन्तःक्रिया अंशतः श्रीमद्भागवद गीता के ज्ञान भक्ति कर्मयोग का अद्भुत संयोग है। अंशतः प्रारम्भिक ईसाई समाजवादियों के समतुल्यमानव समता के लिए आध्यात्मिक शैली में संघर्ष का भारतीय समानान्तर भी है। निश्चय ही सार्वजनिक जीवन में सम्यक ज्ञान, सम्पर्क आचार का समीकरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। उक्त समीकरण की साध्यता के लिए गाँधी ने प्रचलित मानदण्डों से भिन्न शैली का प्रतिपादन किया जिसे नैतिक परमवाद आध्यात्मिकृत राजनीतिक साधनों की परिशुद्धता साध्य-साधन एकात्मकता आदि संज्ञाए दी गई। गाँधी ने प्रकृति एवं लोक की अन्तर्निहित सूत्रबद्धता को सामाजिक संज्ञान का मूल माना एवं विज्ञान दर्शन एवं धर्म में भी साम्य की खोज को प्रधानता दी। अतः गाँधी दर्शन में सम्पूर्ण ज्ञान की कसौटी है। मानवीय संवेदनशीलता पर आघृत दायित्वपूर्ण कर्म जो कृत्रिम आरोपित विषमताओं से जूझने की क्षमता, व्यक्ति एवं समाज को प्रदान करता है। राष्ट्रीय आन्दोल में राजनीतक संघर्ष के समानान्तर समाजिक परिर्वन की रचनात्मक विद्या के मूल में कदाचित यही आदर्श है।

गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन को "समग्रता" एवं व्यापकता का व्यक्तित्व प्रदान किया जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एंव समाज के किसी भी मूल पहलू को विस्मृत नहीं किया। यदि गाँधी अपने कर्मण्यवाद को राजनीति तक ही सीमित रखते तो शायद उनके प्रयासों को इतनी व्यापकता के वृत्त में परखना सम्भव नहीं होता। तत्कालीन दक्षिण अफ्रीका में प्रजातिवाद एवं रंगभेद नीतियों, व्यक्ति के प्रति प्रशासनिक अनाचार, स्वतन्त्रता व समानता एवं न्याय के अधिकारी का अवमूल्यन, आर्थिक शोषण तथा प्रशासितों की असहायता के वातावरण में गाँधी ने प्रशासकों नीतिनिर्माताओं से केवल न्याय की अपेक्षा की थी जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की विस्मृत महत्ता को पुनः स्थापित किया जा सके। इन अनुभवों में गाँधी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप निहित है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में गाँधी ने सामाजिक संगठन, सम्बन्ध एवं दृष्टिकोण के रूपान्तरण, आर्थिक विकेन्द्रीकरण एवं न्याय प्रशासनिक व्यवस्था के मानवीकरण तथा राजनीतिक संदर्भ में स्वराज्य प्राप्ति के अधिकारों को प्राथमिक महत्व दिया इस प्रयोजन में किसी अवमूल्यन को वे किसी भी परिस्थिति में स्वीकार करने को बांध्य नहीं थे। इस दृष्टिकोण से गाँधी के प्रयास सामाजिक परिवर्तन की समग्रता से प्रेरित थे। वे मानते थे कि केवल विदेशी सत्ता की समाप्ति एवं स्वराज्य प्राप्ति से ही भारतीय संदर्भ में परिवर्तन प्रक्रिया प्रभावी एवं सृजनात्मक नहीं हो सकती। अतएवं उनका प्रयास था कि भारत में संगठित नैतिक, अहिंसात्मक, सहिष्णु, विवेकी एवं जागृत कर्मठ एवं प्रयोजनशील जनसमाज की स्थापना हो।

गाँधी की मौलिकता इस संदर्भ में अवश्य मानी जा सकती है। कि उन्होंने व्यक्ति एवं समाज की प्रगति एवं नवरूपान्तरण के संयंत्र में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रावधान को वरीयता दी। उनके दक्षिण अफ्रीका प्रवास में भी इसी दायित्वपूर्ति के प्रयास देखे जा सकते है। व्यक्ति को अधिकृत अधिकार, स्वतन्त्रता, न्याय एवं अवसर यदि

अनवरत एवं असीमित स्तर पर प्राप्त न हों तो अवश्य ही उसका वर्तमान एवं भावी संदिग्ध बने रहेंगे। गाँधी ने व्यक्ति को आधार मान कर ही एक नवीन समाजा की परिकल्पना को साकार करने का प्रावधान दिया। इस प्रावधान में गाँधी के सामाजिक परिवर्तन का स्रोत एवं उद्देश्य निहित है। ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति के इस गरिमायुक्त स्वरूप पर ही उनकी सर्वोदय समाज की प्रतिकृति अवलम्बित है।

गाँधी के चिन्तन में समाज के नवीन व्यक्तित्व निर्धारण के प्रयास देखे जा सकते हैं। वे इस दिशा में किसी सीमा तक सफल या असफल रहे इस विषय पर अनेक मत हो सकते हैं परन्तु उनके प्रयासों के विषय में दो राय होना असम्भव दीख पड़ता हैं। उन्होंने माना कि सामाजिक पुनः निर्माण के अभाव में सामाजिक प्रयास एवं सामाजिक शक्ति शिथिल बने रहेंगे। यदि स्वस्थ समाज स्थापित न हो तो राजनीतिक चेतना एवं क्षमता आर्थिक स्वावलम्बन एवं न्याय,अवश्य ही सुदूर के आदर्श बने रहेंगे। इसी आशय से प्रेरित होकर उन्होंने माना कि संकीर्णता, एकाधिकार, अन्याय तथा अंधानुकरण से मुक्त समाज की स्थापनाके अभाव में राष्ट्रीय प्रयास तथा उद्देश्य सविराम एवं विलम्बित ही होंगे।

सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय की प्राप्ति और सामाजिक परिवर्तन के लिये नेहरू ने गाँधी के विचारों को कुछ अंश तक स्वीकार किया। गाँधी की धारणा थी कि व्यक्तियों का सुधार सामाजिक विकास का प्रतीक बन सकता हैं नेहरू को कम समीचीन प्रतीत हुआ। इसी प्रकार वे भौतिक सुविधाओं का स्वेच्छा से त्याग तथा सादगी और सीमित आवश्यकताओं से संयमित जीवन के बारे में भिन्न मत रखते थे। नेहरू समाज की प्रगति के लिए विज्ञान की उपलब्धियों एवं सुविधाओं को महत्व देते थे, और गाँधी के साधुवाद और निर्धनता के महिमागमन को उन्होंने अस्वीकार किया। आधुनिक सभ्यता द्वारा केवल शहरी समाज को अपितु ग्रामीण भारत को ऊपर उठाने का उनका स्वप्न सामाजिक परिवर्तन का विशिष्ट विचार था। गाँधी का दार्शनिक अराजकतावाद हिंसात्मक परिवर्तन का विरोधी है। वे न्यासिता के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए उसके माध्यम से जनता के कष्टों का निवारण ढूँढ़ते हैं। इस प्रकार मनुष्य का आन्तरिक नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास चाहते हुए वे व्यक्ति के बाह्य पर्यावरण में परिवर्तन करना चाहते है।

नेहरू के लिए उपर्युक्त गाँधीवादी दृष्टिकोण की प्रासंगिता सीमित थी। उनके अनुसार मनुष्य की शक्ति प्राप्त करने की लालसा, धन अर्जित करने का लोभ एवं मानव सुलभ अन्य चेष्टाएँ त्याग नहीं की जा सकती। सामाजिक परिवर्तन का ध्येय इन सभी मानवीय चेष्टाओं के मध्य सामंजस्य तथा सामाजिक नियन्त्रण प्रस्तुत करने का है ताकि साधनहीन तथा सम्मपन्न दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। नेहरू के अनुसार ग्रामोद्योगों की स्थापना तथा पुरातनपंथी जीवन की पुनरावृत्ति से प्रगति प्राप्त नही की जा सकती। प्रगति के लिये आवश्यक है कि समाजवाद का लक्ष्य निर्धारित किया जाए। सार्वजनिक हित में उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था की जाए। यदि राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ ऐसे परिवर्तन का विरोध करें तो उन्हें भी बदल दिया जाए। न्यासिता के नाम पर पहले पूँजीपति को पनपने देना और फिर उससे सार्वजनिक हित में सम्पत्ति के

प्रयोग की कामना करना, जमींदारी, जागीदारी तथा सामन्तवादी व्यवस्था को स्वीकार करना, आदि नेहरू को स्वीकार नहीं थे। वे परिवर्तनवादी थे। उन्हें हिंसा, अहिंसा, बल प्रयोग अथवा हृदय परिवर्तन के किसी भी माध्यम के प्रति आग्रह अथवा अनाग्रह नहीं था। उनके सामने मूल प्रश्न था सामाजिक व्यवस्था को बदलने का। उन्होंने व्यक्तियों के साथ दुरभाव न रखते हुए पूर्ण व्यवस्था को समय के अनुसार परिवर्तित करने पर जोर दिया।

1.3 राजनीतिक शक्ति एवं व्यवस्था

गाँधी ने राजनीतिक शक्ति को अस्वीकार कर लोकशक्ति की अनिवार्यता के निर्वचन प्रस्तुत किये। आलोचनार्थ उल्लेख किया जाता है कि गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में ही विरोधासी विकल्प प्रस्तुत किए एवं तदनुकूल साधन शुद्धता को प्राथमिक मान कर राजनीति का आध्यात्मीकरण किया। फलतः गाँधी ने राजनीति को नीतिप्रदत्त मूल्यों से निर्धारित किया एवं विरोध शैली तथा धनों का नक्कथन प्रस्तुत किया। दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों को भारतीय संदर्भ में विस्तारित कर गाँधी ने मूल कथन प्रस्तुत किया कि राज्याधारित रेखाकथन द्वारा शक्ति के निर्वचन भी, प्रवर्तन अथवा उसकी सम्भावना आशंका से प्रभावित बने रहेंगे। सत्य, अहिंसा, अभय तथा लोकशक्ति के दृष्टिजन्य निर्णायक तत्वों एवं सम्बद्ध मूल्यों के आधार पर गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन की परिकल्पना की। राज्य के स्थान पर सामाजिक शक्ति एवं लोकशक्ति कानून के स्थान पर जनसम्मत सहमति केन्द्रित संसदीय, उत्तरदायी व्यवस्था प्रक्रिया, औपचारिक-संवैधानिक चयन प्रक्रिया के स्थान पर जन सहमति की भागीदारी, विश्वसनीयता, दलसंरचना प्रक्रिया के स्थान पर दल विहीन व्यवस्था जो सदाशयी लोकशक्ति सम्वर्द्धन से अनुप्राणित हो, उपभोक्तावादी आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर स्वदेशी से व्यवस्थित अनिवार्य न्यूनतम आवयकताओं की समतावादी उत्पादन क्रिया एवं पूर्ति अर्थ विहीन मशीनीकरण के स्थान पर जनकौशल सामथ्र्य एवं क्षमता की अबांधित स्थापना, सामाजिक संरचना की विकृत एवं दूषित यथा स्थिति के स्थान पर व्यक्ति की गरिमा एवं सामुदायिक स्वायत्तता की प्राथमिकता सामाजिक वैभिन्य प्रदत्त विच्छिन्नता के स्थान पर एकीकृत एवं परिपूरकता, कृत्रिम स्तरीकरण के स्थान पर प्रकार्यात्मक सौजन्य, स्वामित्व, एकाधिकार, लाभसंग्रहण तथा अनियमित प्रतियोगिता के स्थान पर कायिक श्रम, अस्तेय एवं अपरिग्रह की प्राथमिकता तथा सनियन्त्रित जीवन-यापन, विजय, उपलब्धि-अर्जन एवं लोकप्रियता की महत्वाकांक्षा के स्थान पर विपक्षी का हृदयहीन औद्योगिकीकरण, प्रविधी-नवीनीकरण, पूँजीवादी शोषण तथा उपभोक्तावाद के स्थान पर परिसीमन प्रेरित जनकल्याण, प्रतिशोध, हिंसा, अतिक्रमण एवं अवमूल्यित दिशा-दृष्टि के स्थान पर सदाशयता, विश्वसनीयता, संस्कारवृत्ति तथा मानवीय मूल्य स्थापना, उग्र-प्रसारवादी-हिंसक राष्ट्रवाद के स्थान पर विश्वत्ववादी सहअस्तित्व उन आग्रहों के प्रतीक हैं जिनके आधार पर गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु समग्र विकल्प प्रस्तुत किए।

गाँधी ने राजनीतिक शक्ति की अवधारणा को न तो अस्वीकार किया है और ना शक्ति की अवधारणा को असंगत ही बतलाया है। गाँधी शक्ति के ऐसे वैकल्पिक केन्द्रों की खोज में थे, जो अहिंसा की धारणा के

अनुकूल हो। शक्ति के लिए होने वाले संघर्ष में एक पक्ष की दूसरे पक्ष पर विजय सुनिश्चित होती है। गाँधी संघर्ष की स्थिति को इस प्रकार से सुलझाना चाहते हैं कि दोनों में सें किसी भी पक्ष को पराजय न देखनी पड़े ओर दोनों ही प्रेम भावना से एक दूसरे को समझने का प्रयास करें।

वे शक्ति का प्रयोग न कर केवल अहिंसात्मक आन्दोलन का ही सहारा लेना चाहते थे। साम्प्रदायिकता का निवारण भी वे राज्य शक्ति के स्थान पर अहिंसा के माध्यम से करना चाहते थे। गाँधी की सफलता का रहस्य यह था कि वे राज्य को प्रमुखता न देकर समाज की महत्ता को स्वीकार करते थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि यदि समाज अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक रहे तो वह राज्य को अपने नियन्त्रण में रख सकता है। राज्य की त्रुटियों को समाज ही सुधार सकता है। राज्य के निरंकुशवाद पर समाज का नियन्त्रण आवश्यक है। गाँधी ने शक्ति, विघटनकारी एवं भ्रष्ट प्रभाव से अपने आपको दूर रखा। वे शक्ति से दूर रहना चाहते थे। राजनीतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त होने को ही वे मुक्ति मार्ग मानते थे। यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उन्होंने काँग्रेस को परिष्कृत करने की दृष्टि से उसे शक्ति तथा सत्ता की होड़ से विलग हो जाने का आग्रह किया।

वस्तुतः राजनीतिक शक्ति के बारे में गाँधी का कहना था, "मेरे लिए राजनीतिक शक्ति का इससे अधिक कुछ भी महत्व नहीं है कि वह एक जरिया है, जिससे लोग अपने जीवन की अवस्थाओं को सुधार सकते है। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन का संचालन। अगर राष्ट्रीय जीवन स्वंय-संचालन की योग्यता हासिल कर लेता है तो प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे राज्य में हर आदमी अपना शासक है। वह अपना शासन इस प्रकार करता है कि पड़ौसी को उससे कोई अड़चन न पहुँचे। इसलिए आदर्श राज्य में राजनीतिक शक्ति नाम की कोई चीज नहीं रह जाती, क्योंकि राज्य रह ही नही जाता। परन्तु यह आदर्श जीवन में पूरी तरह से प्राप्त नहीं है।"

गाँधी दार्शनिक अराजकतावादी थे फिर भी राज्य के द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली राजनीतिक शक्ति में उनका विश्वास था। परन्तु उन्होंने सदा ही राज्य और समाज में भेद करने का प्रयत्न किया। पश्चिमी राजनीतिज्ञ मनुष्यों को राजनीतिक और अराजनीतिक इन दों वर्गो में बांटते हैं, और राजनीतिक मनुष्य का मूल्यांकन भी इस आधार पर करते हैं कि वह शक्तिशाली हैं अथवा शक्ति प्राप्त करने में प्रयत्नशील है अथवा निःशक्त है। गाँधी का विश्वास था कि समाज में जितने भी व्यक्ति है उन सबका राजनीतिक शक्ति में हिस्सा बाँटने का केवल अधिकार ही नहीं कत्त्तव्य भी है। पर साथ ही वह यक मानते थे कि कुछ व्यक्तियों के लिए, जिन्होंने सत्याग्रह की तकनीक में प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है यह आवश्यक होना चाहिए कि वे अपने को राजनीतिक शक्ति से दूर रखें और सदा इस प्रयत्न में लगे रहें कि राज्य-सत्ता को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए रखा जा सके। देश में रचनात्मक कार्यों के लिए उन्होंने जो अनेक संगठन बनाये थे उनके कार्यकत्त्ताओं के सम्बन्ध में गाँधी ने स्पष्ट किया कि "मैं

उन्हें संसद में भेजना नही चाहता। मैं चाहता हूँ कि मतदाताओं को प्रशिक्षण और निर्देशन देकर वे ससंद को नियन्त्रण में रख सकें।

परिवर्तन के इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए राज्य शक्ति और लोक-शक्ति का सम्मानपूर्ण सहयोग अनिवार्य है। पृथक रखने से स्वंय शक्ति आगे नहीं बढ़ पायेगी, और दोनों की शक्ति के दो पक्ष है शासक पक्ष तथा विपक्ष। लोक शक्ति जनता और उसके संगठनों से निर्मित होती है। राजनैतिक दलों को राज्य शक्ति के अन्तर्गत रखना उचित ही होगा, यद्यपि लोकशक्ति के विकास ओर संगठन में उनकी उपयोगी भूमिका है। अपने देश के सन्दर्भ में पंचायती राज को लोकशक्ति के अन्तर्गत गिनना चाहिए और इस बात के प्रति सदा जागरूक रहना चाहिए कि पंचायतों का चरित्र सरकारी न बनने पाए गैर-सरकारी बना रहे। अगर ऐसा नहीं होता तो पंचायती राज जनता को साथ लेकर नहीं चल सकेगा। उससे अपेक्षा है कि वह सरकार का अंग बनकर न रह जाए, बल्कि सच्चे ग्रामस्वराज्य की दिशा में एक समर्थ कदम सिद्ध हो।

गाँधी के लिए सत्ता का उत्तरदायी होना आवश्यक है। स्वंयसेवी संगठनों का मुख्य कार्यक्षेत्र रचनात्मक है। गाँधी ने रचनात्मक कार्य को जनता के स्वराज्य की कुंजी माना है लेकिन उनका रचनात्मक कार्य कोरी सेवा नहीं है। उसमें सेवा का अपना स्थान है, किन्तु रचनात्मक कार्य का मुख्य उद्देश्य लोकशक्ति जगाना और संगठित करना है, ताकि राज्य शक्ति के साथ उसका सम्मानपूर्ण सहयोग हो सके, तथा सामान्य जन जीवन के क्षेत्र में वह राज्य शक्ति का विकल्प बन सके।

गाँधी ने लोकतान्त्रिक राजनीति के तीन पहलू स्पष्ट किये है:-

1. राजनीतिक शक्ति प्रेरणा देना - जेनरेटिंग पॉवर (Generating Power)
2. राजनीतिक शक्ति को हाथ में लेना - केप्चरिंग पॉवर (Capturing Power)
3. राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करना - इक्सरसाईजिंग पावर (Exercising Power)

सत्ता को प्रेरणा देना स्वयं सेवी संगठनों का काम है। उसी तरह जनता और उसके अपने संगठनों का काम सत्ता का प्रयोग करना है। जनता अपने संगठनों द्वारा सत्ता का प्रयोग कुशलतापूर्वक और सर्वजन के हित में कर सके इसमें उसकी सहायता करना, उसे शिक्षण-प्रशिक्षण देना, स्वयं सेवी संगठनों का मुख्य भूमिका है। कहीं अनीति या अन्याया होता हो तो उसका सत्याग्रही प्रतिकार करना भी उनकी भूमिका के अन्तर्गत है। राज्य सत्ता अपने हाथ में लेना स्वसेवी संगठनों का स्वधर्म नहीं है। राज्य सत्ता हथ्याना और राजकाज चलाना राजनैतिक दलों ओर उन संगठनों का काम है जो इसी काम के लिए बने हैं और जो इस काम के लिए जनता का विश्वास प्राप्त कर उसका प्रतिनिधित्व करते हैं।

राजनैतिक शक्ति और लोकशक्ति के सहयोग पर जिनता भी बल दिया जाए कम है। जो सरकार जनता के मतों से बनती है उससे सामान्य स्थिति में असहायोग का विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन असहयोग उस समय आपद्धर्म बन जाता है, जब राजनैतिक शक्ति लोकशक्ति के मार्ग में तथा लोकतन्त्र की मर्यादा में होने वाले रचनात्मक कार्यों में रास्ते का पत्थर बनकर खड़ी हो जाती है। लेकिन वह असहयोग भी सहयोग पैदा करने के लिए होता है।

लोकतन्त्र में प्रतिकार का प्रथम और सबल अस्त्र लोकमत है। प्रबल लोकमत के मुकाबले किसी भी शक्ति का खड़ा होना कठिन हो जाता है। इसलिए सर्वमान्य मुद्दों पर व्यापक लोकमत बनाना शिक्षण और रचना का बड़ा कार्य है। लोकमत सत्य और न्याय पर आधारित हो, पक्षपातपूर्ण प्रचार या उन्माद भरे नारों पर नहीं इसके लिए लोकतन्त्र में राजनैतिक शक्ति का होना भी आवश्यक माना गया है। गाँधी को इसलिए शक्ति पुंज माना गया क्योंकि वे सत्य के पक्ष में खड़े हो सकते थे। गाँधी के अनुसार सत्य के पक्ष में संघर्ष की वाणी निंरकुश जनता और निरंकुश सत्ता, दोनों पर अंकुश का कार्य करेगी और राष्ट्र में विश्वास का वातावरण पैदा करेगी जिसके बिना करोड़ों लोगों का सह-अस्तित्व तथा राष्ट्र का शान्तिपूर्ण पुनर्निमाण सम्भव नहीं होगा।

नैतिक शक्ति राजनैतिक शक्ति से बहार रहकर ही उस पर अंकुश रख सकती है। अहिंसा शिव है, सत्ता इन्द्र है। शिव श्मशान में रहेगा तो सिंहासन पर इन्द्र सतर्क रहेगा। अहिंसा हिंसा की विरोधी शक्ति है। इसलिए अहिंसक क्रान्ति का चरित्र नैतिक क्रान्ति का होता है। इस चरित्र के कारण अहिंसक क्रान्ति का मुख्य साधन अहिंसक लोकशक्ति होती है, राज्य शक्ति नहीं और ऐसी लोकशक्ति भी नहीं जो हिंसक हो। जनता की अहिंसक और नैतिक शक्ति संगठित करने से लोकशक्ति का आधार बनता है। एक बार यह आधार बन जाता है तो सत्याग्रह के अनेक हथियारों का प्रयोग परिस्थिति के अनुसार किया जा सकता है अहिंसा आत्म की शक्ति है। गाँधी ने उसे 'सोल फोर्स' (soul force) कहा है। राष्ट्रीय जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति राजनिति के स्थान पर नैतिक दृष्टिकोण का स्वागत होता है। शान्ति और अहिंसा गाँधी और गाँधीवादियों की कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि इस युग की आवश्यकता है। यह सारा प्रयोग लोकशक्ति का होगा। इस सन्दर्भ में लोकतन्त्र में तटस्थ नैतिक शक्ति का बहुत बड़ा महत्व है। गाँधी ने भारत के युगनिर्माण के सन्दर्भ में यह कहा था कि अहिंसा में विश्वास रखने वाले क्रान्तिकारी "लोकसेवक संघ" बनाकर लाखों गांव में फैल जाएँ और जनता की संगठित अहिंसक शक्ति विकसित करें। वे संसदीय राजनीति को दूसरों के हाथों में छोड दें। अपने हाथ में नैतिक शक्ति के सूत्र रखें और उसी नैतिक शक्ति से राजनैतिक शक्ति को प्रभावित करें।

स्वाधीनता के बाद गाँधी ने बार-बार यह प्रश्न उठाया कि स्वतंन्त्राता मिल गयी किन्तु गाँव-गाँव, शहर-शहर स्वराज्य कैसे होगा ? स्वराज्य सरकार के कानून से नहीं होताः उसके लिए समाज की शक्ति चाहिए, लोकशक्ति चाहिए। गाँधी के मत में जब राज्य की शक्ति है तो जनता की शक्ति घटती है। वह ग्राम और शहर में लोकशक्ति को संगठित करना चाहते थे। राज्य शक्ति को क्रमशः सीमित स्वाधीनता प्राप्ति के बाद क्राँग्रेस में सत्ता के लिए

जो संघर्ष आरम्भ हुआ उससे उन्हें बहुत धक्का लगा। उन्होंने रचनात्मक कार्यकताओं से कहा कि वे "सत्ता की राजनीति और उसकी स्पर्श से अपने को अलग रखें। जितने भी क्रियाशील संगठन है उन्हें अपने साथ ले लो। अपने में से सारी गन्दगी दूर कर दो। सत्ता प्राप्ति करने के विचार को मन में आने भी ना दो इसी में मुक्ति है। तुम्हारे लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं।"

जहाँ गाँधी शक्ति की चिन्ता किए बिना भी अपने सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान रहते थे, वहाँ नेहरू राजनीतिक नेतृत्व को स्थायित्व प्रदान करने हेतु व्यवहारिक दृष्टिकोण रखते हैं। सत्ता व उसके औचित्य को बनाये रखने में नेहरू सदैव सफल रहे। उन्होंने अपनी लोकतान्त्रिक प्रगतिवादी प्रतिभा को बनाये रखा। उनहोंने स्वयं के लिए सत्ता का दुरूपयोग नहीं किया।

1933-34 में नेहरू पर मार्क्स का सबसे अधिक प्रभाव था परन्तु उस समय भी वे गाँधी के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नहीं हुए थे। यद्यपि गाँधी के तत्व चिंतन ने उन्हें प्रभावित नहीं किया, फिर भी ये गाँधी पर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप पसन्द नहीं करते थे। यह आरोप बम्बई के कुछ लोगों ने उन पर लगाया तो नेहरू ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये लिखा था "वह व्यक्ति (गाँधी) हिन्दुस्तान को जितना जानता और समझता है और किसान हिन्दुस्तान का तो वह प्रतिरूप ही बन गया है, और उसने इस तरह हिन्दुस्तान को हिला दिया है, उतना क्रान्तिकारी कहलाने वाले किसी व्यक्ति ने नहीं किया है। इसलिए उन्हें प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता है।"

भारतीय राजनीति में गाँधी के आगमन और उसके प्रभाव पर नेहरू ने अपने पुस्तक "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" में अत्यन्त प्रशंसापूर्ण टिप्पणी की है। गाँधीजी ताजा हवा के उस प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिये पूरी तरह फैलना और गहरी सांस लेना संभव बनाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अंधकार में बैठ गई और जिसने हमारी आँखों के सामने से आवरण को हटा दिया। वह उस बवंडर की भाँती थे, जिसने बहुत सी चीजों में विशेषतः श्रमिकों के मस्तिष्क में उथल-पुथल पैदा की। गाँधीजी ऊपर से आए हुए नहीं थे अपितु भारत के करोड़ों व्यक्तियों के मध्य उत्पन्न हुए थे। उनकी भाषा वही थी जो आम लोगों की थी, और वे निरन्तर उस जनता की और उसकी भयावह दुर्दशा की ओर ध्यान आकर्षित करते थे।"

वे व्यक्ति को सामाजिक प्रक्रिया से इस प्रकार एकीकृत करना चाहते थे कि उसमें मानवीय आत्मा समष्टिगत रूप से प्रकट हो सके ताकि आर्थिक न्याय, समानता, वर्गहीनता समाज व शोषण रहित व्यवस्था की स्थापना हो सके। समाज की भौतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ सहयोग, सौहार्द्र एवं प्रेम द्वारा विश्व-समाज व शोषण रहित व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। लोकतन्त्र तथा साम्यवाद दोनों ही इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के प्रतीक है। साम्यवाद आवश्य ही मानवीय स्वतन्त्रता को सीमित करता है अतः आलोचना का विषय बना है अन्यथा सहयोग एवं समानता के आदर्श द्वारा मानव जीवन के रचनात्मक विकास का क्रम निरन्त प्राप्त किया जा सकता है। वे लोकतांत्रिक पद्धति के प्रति पूर्ण निष्ठावान हैं। किन्तु वे पंच वर्षीय

लोकतन्त्र के पक्षपाती नहीं हैं जिसमें जनता चुनाव के समय ही लोकतंत्र का आभास प्राप्त करे, तथा शेष समय के लिए अवसरवादी तथा सत्ता लोलुप नेतृत्व का शिकारी बनी रहे। नेहरू ने स्थितियों को आत्मसात् किया है जिसके अन्तर्गत मानवीय मस्तिष्क एवं आत्मा को परतन्त्रता में निर्बद्ध कर दिया जाता है। वे आधुनिक सभ्यता को मानवीय स्वातंत्र्य के लिए अभिशाप मानते हैं क्योंकि आज का मानव यान्त्रिक होकर समष्टिगत समुदाय में विलीन हो गया है।

गाँधी ने एक मौलिक लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। गाँधी की लोकतंत्र की अवधारणा पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र एवं परम्परागत और वर्तमान लोकतंत्र की अवधारणा के वर्गीकरण से भिन्न है। अन्य अवधारणाओं की भाँति गाँधी का लोकतंत्र मूलतः गाँधी की आध्यात्मिक आस्था से ही सम्बद्ध है। गाँधी ने भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिये प्रथम स्तर पर छः शर्तो को आवश्यक माना हैं। सत्याग्रह जो चरखे द्वारा प्रकट हो, ग्रामीण उद्योगों का विकास, प्राथमिक शिक्षा एवं हस्त उद्योगों का विकास, छुआछूत निवारण साम्प्रदायिक एकता एवं श्रमिकों का अहिंसक संगठन।

गाँधी चिन्तन में इन्हीं जीवन मूल्यों को आधार मानकर ग्राम आधृत लोकतंत्र को यथार्थ धरातल पर स्वराज्य के रूप में अभिव्यक्त किया गया हैं। ग्राम स्वराजय ऐसी व्यवस्थात्मक संरचना है जिसमें लोकतंत्र केवल राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तरों पर ही सीमित नहीं रहता वरन् उसका निस्तारण वास्तविक अर्थों में सभी स्तरों पर हो। स्वराज्य ग्रामीण जनता की नैतिक शक्ति से प्रेरित लोकतान्त्रिक शक्ति द्वारा संचालित होगा।

वस्तुतः ग्राम आधृत लोकतंत्र की प्रमुख इकाई ग्राम होगा और गाँव की इकाई मनुष्य होगा। भौतिक शास्त्र की भाषा में मनुष्य परमाणु होगा और स्वयं विभिन्न स्वतन्त्र परमाणुओं का संगम ग्राम अणु होगा। प्रत्येक अणु स्वयं के गुणों का सम्पूर्ण प्रतिनिधि होगा परन्तु अणुओं के आपसी प्रेम एवं संरचना से ही गाँधी चिन्तन के ग्रामधारित लोकतंत्र की अवधारणा उत्पन्न होगी।

यह अवधारणा केवल ग्राम आधृत लोकतंत्र का मुखदर्शन मात्र नहीं अपितु किसी देश में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई के रूप में ग्राम समृद्ध लोकतंत्र के रूप में विकसित होना चाहिए। गाँधी ने इसी समृद्ध लोकतंत्र को स्वराज्य से सम्बोधित किया है यही स्वराज्य ग्राम आधृत लोकतंत्र का पर्याय भी स्पष्ट किया।

स्वराज्य ग्राम आधारित लोकतंत्र के विचार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि स्वराज्य गाँधी के जीवन का स्वप्न था। दादा भाई नौरोजी के 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में स्वयं के अध्यक्षीण भाषा में "स्वराज्य" को दोहरा अर्थ प्रदान किया गया था "साम्राज्य" के भीतर और आवश्यकता पड़ने पर साम्राज्य के बाहर स्वराज्य इसी द्वितीय अर्थ को प्रकट करने के लिए पूर्ण स्वराज्य को अभिव्यक्ति के रूप में उपयोगी माना गया।

अधिक स्पष्ट शब्दों में 'औपनिवेशिक स्वराज्य'' के स्थान पर ''पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है कि ब्रिटिश के साथ बराबरी के दर्जे का सम्बन्ध और दोनो पक्षों को उसे तोडने का अधिकार।

1.4 आर्थिक दृष्टिकोण

गाँधी के सामाजिक परिवर्तन में प्राचीन जीवन पद्धति, जीवन पद्धति में बुनियादी प्राथमिक ईकाई ''ग्राम'' को प्रधानता का प्रमुख कारण था गाँवों की त्रिविध बीमारी का निराकरण । गाँधी ने 16 मई 1936 को स्पष्ट किया। सार्वजनिक स्वच्छता की कमी, पर्याप्त पोषक आहार की कमी, ग्रामवासियों की जड़ता। अन्य ग्रामवासी जनता की उन्नति के प्रति उदासीनता, स्वच्छता के आधुनिक उपायों के प्रति अनभिज्ञता भी कष्टप्रद है। स्वयं के खेतों को जोतने या बने के अतिरिकत अधिक अन्य श्रम के प्रति उतना परिश्रम दृष्टिदोष ऐसी बाधाएँ रही हो जो वास्तविक और गंभीर है।

पश्चिमी सभ्यता के नकारात्मक परिणामस्वरूप औद्योगिकीरण, शहरीकरण, बढ़ते हुए भोगवाद के कारण परिसीमित नकारात्मक व्यक्तिवाद और स्वार्थ की भावनाओं को बढ़ावा मिला। जिससें वर्तमान के नर दैत्याकार नगर, विकृति और स्वभाविकता के परिणाम ही हैं। नगर जुआ, अपराध, व्यसन, व्याभिचार के अड्डे तो हैं हीं साथ-साथ झुग्गी व गन्दी बस्तियों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। पानी, सफाई, रोशनी की समस्याएँ इन नगरों में कवराल रूप धारण कर रही हैं। इसके सशक्त क्रियान्वयन के लिए लोक सेवकों की आवश्यकता अवश्य है इसलिए गाँधी ने काँग्रेस के सदस्यों से भी अनुरोध किया था कि अग्रेजों की छोडी हुई पुरानी पद्धति की गद्दी पर जाकर न बैठे बल्कि लोकशिक्षण के लिये लोक सेवक संघ को जन जन में प्रसारित करें।

गाँधी का आह्वान था कि सामाजिक परिवर्तन के लिए ''ग्राम'' का पुररूत्थान ही प्राथमिक दायित्व होना चाहिए। चूंकि भारतीय ग्राम भारतीय शहरों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं का स्त्रोत रहे हैं इसलिए स्वराज्य में कृषकों के पास राजनैतिक सत्ता के साथ-साथ हर प्रकार की सत्ता रहे। कृषक ही केन्द्र बिन्दु होना चाहिए। गावों को जीवित रखने के लिए उन्हें बलवान और समृद्ध बनाना आवश्यक है अतः गाधी का आह्वान था कि हमारे स्वराज्य के दृष्टिकोण में ग्रामों को प्रधानता होनी चाहिए।

उपरोक्त संकल्पना में स्वराज्य की अवधारणा में ''सादा जीवन एवं उच्च विचार'' को आधृत कर नैतिकता परक समाज में ग्राम और व्यक्ति की प्रधानता को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए गाँधी ने ग्राम आधृत लोकतंत्र की संकल्पना प्रस्तुत की।

वर्तमान समाज में सशस्त्रीकरण तथा व्यापक वैज्ञानिकीकरण की अंधी दौड़ के वातावरण में गाँधी द्वारा ग्रामआधारित लोकतंत्र को मानवीय विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है क्योंकि गाँधी का स्वराज्य आध्यात्मीकरण की वैचारिक आधारशिला पर स्थित है। भीड़वादी बहुसंख्यक लोकतंत्र के निराकरण, अमूर्त

सम्प्रभुत्ता के स्थान पर लोकशक्ति एवं लोकनीति, शासकी आरोपण के स्थान पर व्यक्ति की क्षमता एवं सामथ्र्य में विश्वास अपव्यय एवं प्रदर्शन के स्थान पर सरल, सहज, सहकारिता एवं व्यैक्तिक, सामूहिक विकासोन्मुख गत्यात्मकता को प्रतिष्ठित करने की कल्पना, सामाजिक परिवर्तन के लिए ग्रामीण लोकतंत्रीय योजना के रूप में दर्शन को यथार्थ में परिवर्तित करने का संकल्प गाँधी चिन्तन की प्रमुख लाक्षणिकर्ता हैं।

वर्तमान राजव्यवस्था के मूल प्रवाह से अविछिन्न पंचायत व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण के नाम पर रखने से न तो लोकतंत्र को बल मिला न ही विकेन्द्रीकरण की प्रतिष्ठता हुई। केन्द्र एवं राज्यों में संसदीय लोकतंत्र एवं गाँवों में पंचायत व्यवस्था एक दूसरे से समुद्री वतुर्ल की तरह आवरूद्ध नही होगी तब तक पंचायत को सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नही हो सकती और यह मात्र केन्द्रीय या सत्ता की मेहरबानी पर जीवित होगी। निकायों में एवं केन्द्रीय तथा राज्य सरकार अधिकारों के लिए शाश्वत खींचतान का अवसर रहेगा। इसका अभिप्राय है कि वर्तमान की केन्द्रित राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित कर विकेन्द्रित बनाना। यह किसी प्रकार की समानान्तर व्यवस्था में सम्भव नहीं अर्थात राज्य विधान सभाओं एवं केन्द्र की लोकसभा का आधार पंचायतें या पंचायतों के आधार पर अप्रत्यक्ष चुनाव नही होंगे तब तक पंचायतों के संवैधानिक संशाधनों की संजीवनी भी व्यर्थ सिद्ध होगी। वर्तमान में आवश्यकता है समाज व्यवस्था में नागरिकों की आजीविका का और जमीन जोतने वालों की जमीन का मौलिक अधिकार प्रदान करने से ही सच्चे अर्थों में ग्रामाधारित लोकतंत्र की स्थापना हो सकती है। लेकिन वर्तमान में देश में स्थित राज्य की सरकारें पंचायती राज व्यवस्था के प्रति जिस प्रकार उदासीनता और सौतेलापन का व्यवहार कर रही हैं वह देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के समग्र विकास के लिए घातक है। इसका एक मात्र और स्थाई निदान यह है कि पंचायती राज संस्थानों को समुचित संवैधानिक दर्जा प्रदान करने हेतु भारत के संविधान में यथाशीघ्र आवश्यक संशोधनों को लागू करें एवं लोकतंत्र दिल्ली और राज्य की राजधानियों में सीमित रहने की बजाय ग्राम स्तर पर पहुँच सके।

गाँधी राज्य के असीमित तथा उसके ऐतिहासिक दुरूपयोग से परिचित थे। वे मानते थे कि राज्य कि शक्ति न्यूनतम हो एवं कालान्तर में अराजकता ही व्यक्ति एवं समाज के व्यापक कल्याण की संरक्षक हो सकती हैं। राज्य की शक्ति-एकाधिकार प्रवृति,हिंसा,दमन-क्षमता तथा आरोपण की प्रवृत्ति से गाँधी सशंकित थे। व्यक्ति की स्वायत्ता तथा नैतिक साहस के संवधर्न हेतु वे मानते थे कि राज्य वरदान नहीं अभिशाप हैं। व्यक्ति की कर्तव्यपरायणा, जागरूकता, सदृइच्छा एवं सदाशय के उच्चतर कीर्तिमान तभी सम्भव हैं जब राज्य की बाध्यकारी निंरकुशता की समाप्ति हो। राज्य हिंसा का संगठित और केन्द्रित रूप है। व्यक्ति के भीतर आत्मा है, परन्तु राज्य आत्मका रहित मशीन है उसे हिंसा से कभी नही बचाया जा सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही हिंसा से है।

गाँधी ने माना कि राज्य ने व्यक्तित्व एवं समाज का सदैव दमन किया तथा राज्य की सम्प्रभुता वास्तविक स्थिति में व्यक्ति की अवहेलना का सशक्त माध्यम ही हैं। फलतः गाँधी ने राजनीति के स्थान पर लोकनीति की

प्राथमिकता एवं औचित्य पर बल दिया। गाँधी के चिन्तन में स्पष्ट है कि यदि राजनीति शासन पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन पर, यदि राजनीति शक्ति पर केन्द्रित है तो लोकनीति स्वतन्त्रता एवं स्वायत्ता पर, यदि राजनीति नियन्त्रण पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन मर्यादा पर, यदि राजनीति सम्प्रभुता एवं अधिकारों के अर्जन की प्रतियोगिता पर आधारित है तो लोकनीति कत्र्तव्यपरायणता तथा जागरूकता पर। गाँधी ने माना की लोकनीति आध्यात्मिकता से प्रेरित कर्मयोग की सम्पूर्ति है।

व्यक्ति के प्रति नेहरू का दृष्टिकोण पश्चिमी उदारवादियों से इस अर्थ में भिन्न है कि उदारवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य को अनावश्यक हस्तक्षेप निषेध करता है केवल व्यक्ति की अपने हित में निर्णय लेने की बौद्धिक क्षमता में विश्वास करताहै। इसके विपरित नेहरू की आस्था में केवल व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता में नही अपितु मानव की नैतिक प्रेरणा में है। उनकी मान्यता है कि व्यक्ति में कर्तव्यों के प्रति समर्पण, आत्मत्याग और उच्चतर नैतिक प्रयोजनों के प्रति निष्ठा की सहज भावनाएँ होती है जिसके सन्दर्भ में वे राज्य की दमनकारी शक्ति के भय नही अपितु नैतिक चेतना के कारण ही अपने कल्याण और सामुदायिक हित के मध्य समन्वय स्थापित करने की क्षमता रखता है।

राज्य के प्रयोजन एवं व्यक्ति तथा राज्य के सम्बन्धों की दृष्टि से जवाहर लाल नेहरू के दृष्टिकोण को व्यक्तिवादी अथवा समष्टिवादी के रूप में वर्गीकृत नही किया जा सकता। उन्होंने राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध में एक विलक्षण दृष्टिकोण को अपनाया और मानवीय गरिमा तथा सामाजिक व आर्थिक न्याय को एक साथ सुनिश्चित करने पर बल दिया। उन्होंने व्यक्तिवादियों की भाँति व्यक्ति के हितों की वरीयता अथवा व्यक्ति की सर्वोपरिकता का उद्घोष नही किया है और न ही साम्यवादियों की भाँति व्यक्ति की चेतना पर समुदाय के बाध्यकारी नियन्त्रण को ही मान्यता दी है।

गाँधी के सामाजिक पुनः निर्माण के प्रयास में प्रथम स्थान व्यक्ति का है। समाज प्रश्न वास्तव में "व्यक्ति की गरिमा एवं नागरिक महत्ता के प्रश्न है। इसका प्रमुख कारण गाँधी ने मनुष्य की आत्मा की सर्वोपरिकता को माना एवं उनके दृष्टिकोण में समाज की उन्नति साधारण व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति के विकास पर निर्भर है। व्यक्ति नितान्त भौतिक तत्वों का मशीनी सयुंक्तीकरण नही बल्कि एक दैवीय चिन्गारी है।"

गाँधी ने माना कि व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं दृष्टिकोण को नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों पर बदला जा सकता है। क्योंकि व्यक्ति सम्पूर्णता की प्राप्ति एवं निरन्तर क्षमता वृद्धि से पे्ररित होता है इसके लिये गाँधी तपस्या और त्याग पर बल देते हैं।

सामाजिक पुनः निर्माण में गाँधी की आस्था समुदायों की अपेक्षा व्यक्तियों में अधिक रही क्योंकि व्यक्तियों पर नैतिक विचारों का अधिक प्रभाव पड़ता है व्यक्ति समाज का अंग एवं निर्णायक है तथा व्यक्ति के मानस चेतना एंव दृष्टिकोण से पृथक सामाजिक परिप्रेक्ष्य असम्भव है।

गाँधी के अनुसार वास्तविक लोकतंत्र लोकशक्ति पर आधारित होता है जिसे सर्वोदय सिद्धान्त में लोकनीति का नाम दिया गया। जनमत की प्रतिष्ठा, अहिंसा एवं नैतिकता ही लोकतंत्र के आधार होने चाहिए। इसमें पुलिस एवं सेना की आवश्यकता नहीं बल्कि आवश्यकता है सामाजिक इच्छा शक्ति की। इसके अतिरिक्त गाँधी यद्यपि अपने अहिंसक राज्य में संक्रमण स्तर पर पुलिस को आवश्यक मानते हैं लेकिन उसके वर्तमान हिंसक तरीकों को सुधार कर उसमें परिवर्तन करना चाहते हैं। वास्तव में वे पुलिस के सिपाही को सेवक एवं सुधारक मानते थे। गाँधी ने स्पष्ट किया, ‘‘सच्चे जनतंत्र को किसी भी प्रयोजन के लिये सेना पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। सैनिक सहायता पर निर्भर रहने वाला राज्य नाममात्र का जनतंत्र हो जायेगा। सैनिक शक्ति मस्तिष्क के स्वतंत्र विकास में बाधा डालती है। वह मनुष्य की आत्मा का विनाश करती है।’’ इसी कारण गाँधी अहिंसक राज्य में सभी संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के मानवीकरण को अनिवार्य मानते थे।

इस प्रकार गाँधी द्वारा कल्पित अहिंसक राज्य के अन्तर्गत समाज का स्वरूप पूर्ण लोकतंत्रात्मक और अहिंसक माना गया जो ग्राम स्वराज्य के सिद्धान्त पर केन्द्रित था। उनके अनुसार समाज आत्मनिर्भर और स्वशासी ग्रामों का स्वस्थ सक्षम, संघ ही उचित था। प्रत्येक नागरिक स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर शान्तिपूर्ण और सम्मानित जीवन यापन करें एवं पूर्ण रूप से अहिंसा, आत्मनियंत्रित, त्यागपूर्ण और समाज सेवारत बनें। गाँधी ने स्पष्ट किया कि ‘‘प्रत्येक गाँव पूरे अधिकारों से सम्पन्न एक पंचायत होगा, इसलिये निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक गांव स्वावलम्बी होगा और इस योग्य होगा कि वह अपने मामलों का प्रबन्ध यहाँ तक कर सके कि सम्पूर्ण संसार से भी स्वयं अपनी रक्षा कर सके। इस प्रकार का समाज अवश्य ही उच्च रूप से सुसंस्कृत होता है। उसमें प्रत्येक स्त्री और पुरूष जानता है कि किसी भी ऐसी वस्तु की आवश्यकता नही होनी चाहिए जिसे दूसरे उतना ही परिश्रम करके नही पा सकते।

इस प्रकार अन्त में सम्पूर्ण संगठन व्यक्तियों से विनिर्मित समग्रता होगी। इस समग्रता की बाह्य परिधि अपनी शक्ति का उपयोग, आन्तरिक वृत्त को दबाने के लिए नही करेगी बल्कि वह परिधि के अन्दर शक्ति देगी ओर स्वयं अपनी शक्ति आन्तरिक वृत्त से प्राप्त करेगी।

गाँधी कहते है कि आज के युग में स्वर्णयुग की कल्पना करना प्रायः असम्भव ही हैं लेकिन एक अहिंसात्मक समाज में उनका पूर्ण विश्वास है। उनकी दृष्टि में अहिंसात्मक समाज एक दिशा का संकेत है न कि गन्तव्य का। ये एक प्रक्रिया है न कि निष्पत्ति। गाँधी की स्पष्ट धारणा है कि अहिंसा और लोकतन्त्र सभी मनुष्यों की आत्मिक एकता में केन्द्रित है। गाँधी का कहना है कि यदि अहिंसात्मक तरीके से राजनीतिक शक्ति अर्जित की जाती हैं तो वह सर्वश्रेष्ठ लोकतन्त्र होगा।

नेहरू ने व्यक्ति तथा राज्य के संबन्ध पर बल देते हुए यह व्यक्त किया है कि राज्य व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति राज्य के लिए। व्यक्ति समाज के प्रति उत्तरदायी है किन्तु राज्य का मूलधार व्यक्ति के कल्याण पर निर्भर

करता है। व्यक्ति के अधिकार उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों से सन्तुलित किए जाते हैं । कर्तव्यों के बिना अधिकारों का बोध नही हो सकता है। नेहरू पुलिस राज्य से लोककल्याणकारी राज्य की ओर विकास को आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुकूल मानते थे। वे राज्य के बढ़ते हुए कार्यों को दृष्टि में रखते हुए राज्य शक्ति के विस्तार तथा उसके विकेन्द्रीकरण से परिचित थे। वे चाहते थे कि राज्य शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाए ताकि व्यक्ति की स्वतन्त्रता की राज्य से रक्षा की जा सके।

नेहरू मूलतः लोकतन्त्रवादी थे। वे लोकतन्त्र को केवल शासन की प्रणाली नही समझते थे। उन्होंने लोकतन्त्र को जीवन में नैतिक मापदण्डों और मूल्यों की एक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया। नेहरू ने लोकतन्त्र के वैचारिक संस्थागत और प्रक्रियात्मक तीनों पक्षों को महत्वपूर्ण माना। उनकी वैचारिक दृष्टि से लोकतन्त्र एक जीवन पद्वति है जो सहिष्णुता उदारता और स्वतन्त्रता को सर्वोपरि महत्व प्रदान करती है। एक जीवन दर्शन के रूप में लोकतंत्र शासन से व्यक्ति के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को मान्यता प्रदान करने व उनमें हस्तक्षेप न करने के संयम की अपेक्षा करता हैं। व्यक्तियों की लोकतान्त्रिक आस्था नेहरू के अनुसार अन्य व्यक्तियों और वर्गों के प्रति सहिष्णुता व उदारता के रूप में परिलक्षित होता है। उन्होंने कहा कि लोकतन्त्र की सफलता जनता में लोकतान्त्रिक व्यवस्था का मर्म, जनता के कल्याण के प्रति शासन के समर्पण और अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जनता की चेतना व जागरूकता में निहित है। लोकतन्त्र यह अपेक्षा करता है कि शासन की शक्ति अंतिम रूप से जनता में निहित मानी जाए और राजनीतिक संस्थाओं को इस प्रकार संगठित किया जाए कि इनमें जनता को निर्णायक भागीदारी प्राप्त हो। इस दृष्टि से वे शासन की शक्ति के विकेन्द्रीकरण को लोकतन्त्र के लिये आवश्यक मानते थे।

गाँधी का वैचारिक वृत्त आध्यात्मिक दर्शन से समीकृत है अतः राजनीति के प्रचलित निर्वाचनों से उनका मत पूर्णरूपेण भिन्न है। गाँधी की दृष्टि में नीति विहीन राजनीति का कोई अर्थ नहीं है। यद्यपि कर्म से प्रेरित गाँधी चिन्तन में धर्म को द्वैतीयक नही माना गया है। तथापि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का हर चरण उनके लिए आध्यात्म से सम्बद्ध है। सत्य के अनवरत अन्वेषण एवं प्रयुक्त नैतिक साधनों के फलस्वरूप ही गाँधी की राजनीति एवं समाजनीति निष्पन्न हुई। वस्तुतः गाँधी ने नीति परक मान्यताओं को राजनीति के साररूप में स्वीकार किया।"

गाँधी का प्रयास धर्म एवं राजनीति के मध्य समरूपता स्थापित करना था। गाँधी ने धर्म को ऐसी शक्ति माना जो जन सामन्य के वास्तविक हितों की सुरक्षा कर सकता था। दैनिक जीवन से असम्बद्ध धर्म गाँधी की दृष्टि में निरर्थक था। इसी प्रकार गाँधी ने यह माना कि धर्म विहीन राजनीति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में सफल नही हो सकती। इसी कारण गाँधी ने राजनीति को धर्म से समन्वित करने का प्रयास किया। सत्य, अहिंसा, एवं दैविय सर्वोच्चयता के सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता से अधिक गाँधी के राजनीतिक जीवन का कोई पवित्र उद्देश्य नहीं है। इस तरह गाँधी की राजनीति धर्म नति से किसी भी रूप में भिन्न नहीं थी। ऐसी मिसालें तो बहुत

मिल सकती है। लेकिन वे ज्यादातर भारत भूमि की ही उपज होंगी। ऐसी रैयत जहाँ है वहीं स्वराज्य है। इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है।

गाँधी अपनी राजनीति को बहिष्कृत समाज के लिए स्वाभाविक मानते हैं और यह मानते है कि पश्चिमीकृत समाज के लोगों को ये चीजें सीखनी होगी। वे अपनी राजनीति को बहिष्कृत समाज के सबसे उत्कृष्ट मूल्यों के अनुकूल मानते है और पश्चिमी सभ्यता की वैकल्पिक सभ्यता की स्थापना में उसे एकमात्र साधन के रूप में देखते हैं। विस्तृत अर्थों में गाँधी की अर्थनीति उनकी राजनीति का ही अंग है और उनकी राजनीति उनकी विश्वदृष्टि का तात्कालिक और ठोस स्वरूप है। अतः उनके सभी कार्यो का वास्तविक आधार उनके दर्शन में है एक ऐसी वैकल्पिक सभ्यता की कल्पना में है जो नैतिक हो, मनुष्य केन्द्रित हो और सहयोग पर आधारित हो। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा, "मेरा अभी भी यही विचार है कि मैं राजनीति को धर्म से अलग करके उसकी (राजनीति की) कोई धारणा नहीं बना सकता।..........इस (धर्म) का अर्थ है दुनियाँ की एक व्यवस्थित नैतिक सरकार में विश्वास। यह हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, आदि धर्मों का अपने में समावेश करके आगे बढ़ जाता है। उन्हें नकार कर आगे नहीं बढ़ता। यह उनमें सामंजस्य स्थापित करके वास्तविक बनाता है।"

नेहरू का दृष्टिकोण मूलतः इहलोकवादी और वैज्ञानिक था। प्रचलित अंध-विश्वासों, रूढ़ियों, कट्टरता और मतान्धता को देखकर उन्हें गंभीर क्लेश होता था। वे इस समस्या के प्रति नया रूख अपनाने पर बल देते हैं और स्वयं को एक ऐसा मार्क्सवादी बताते है जो ईश्वर की तलाश में है। उनका विचार था "विज्ञान उन सभी रहस्यों की गुत्थी को नही खोल सकता है न भविष्य में उससे आशा है कि वह ऐसा कर सकेगा। वे विज्ञान और आध्यात्म को एक दूसरे का पूरक मानते थे। उनक मत था कि विज्ञान भी निरन्तर जीवन के रहस्यों की गुत्थियों को खोलने में लगा हुआ है। जिसे हम सत्य की खोज कह सकत हैं। सत्य की खोज से नेहरू का तात्पर्य ज्ञान सच्चाई और असलियत की खोज से है। उनका स्पष्ट मत है कि जीवन्त जीवन दर्शन ऐसा होना चाहिए जो आज की समस्याओं का हल पेश कर सके।"

नेहरू के लिए लोकतन्त्र तथा समाजवाद दोनों ही साध्य नही अपितु साधन थे। साध्य तो उनके लिये व्यक्ति का कल्याण और प्रगति था। उनके लिए प्रत्येक समाजिक अथवा राजनैतिक सिद्धान्त की कसौटी यह थी कि "उसमें प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति को अपने संकुचित स्वरूप से ऊपर उठने में तथा सबके कल्याण के लिये सोचने में कहाँ तक सहायता मिलती है। तात्पर्य है कि जवाहर लाल की कल्पना के समाजवादी का मूल उनके वैज्ञानिक मानवतावाद में था। उनके समाजवाद के स्वरूप को उनके मानसिक और नैतिक व्यक्तित्व के आधारभूत तत्व का विश्लेषण किए बिना नहीं समझा जा सकता है और यह तत्व था उनका मानव में विश्वास अर्थात मानववाद।

नेहरू के समाजवाद सम्बन्धी विचार गतिशील तो थे ही उन्होंने भारत की समस्याओं के हल के लिये अपने स्वतन्त्र विचारों के आधार पर अपने समाधान खोजे। इसलिए वे न तो पूर्णतः माक्सवादी रहे न ही पूर्णतः गाँधी के विचारों से सहमत हो पाए। गरीबी मिटाने का लक्ष्य स्वीकारते हुए भी वे गाँधी के दरिद्रनारायण सम्बन्धी विचारों से भिन्न मत रखते थे।

नेहरू, नियोजन की संकल्पना के मूलभूत तत्व इस प्रकार मानते थे:-

प्रथम, नियोजन के लक्ष्य उस समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल हो जिसकी उन्होंने एक विकासशील और गत्यात्मक संकलपना के रूप में कल्पना की थी। दूसरे जहाँ वे राज्य को प्रत्यक्ष रूप से देश की अर्थप्रणाली में उत्पादन और वितरणका साधन बनाना चाहते थे और वहाँ उन्होंने अनी नियाजन पद्धति में सार्वजनिक क्षेत्र की संकल्पना क्रमागत रूप से की थी न कि अचानक ही। तीसरे उनकी नियोजन की धारणा विवशता के अतिरिकत एक दूसरे को मानने की शक्ति पर आधारित थी और इसके लिये उन्हें समाज के विभिन्न लोगों का सहयोग अपेक्षित था। चैथे नेहरू का नियोजन सम्बन्धी दृष्टिकोण बहुत ही लचीला था। स्वतन्त्रता के पूर्व वे विदेशी सहायता के कटु आलोचक थे परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में उन्होंने त्वरित आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता ओर विदेशी ऋणों का समर्थन किया बशर्ते कि उनके साथ कोई राजनीतिक शर्ते न लगी हों। 1947 में भारत के विकास एवं सामाजिक परिवर्तन हेतु विदेशी साझेदारी का स्वागत किया था।

उन्होंने नियोजन में समस्त राष्ट्र के, विशेषकर देश के पिछड़े भागों के विकास की, पूर्व कल्पना की थी। जैसाकि उनका विचार था कि यदि समस्त भारत के लिये नियोजन किया जाता है तो औद्योगिक रूप से पिछड़े इलाकों को ऊपर लाकर उन्हें आगे बढ़ने में सरकार को मदद करनी होगी ताकि वे एक संतुलित भारत का हिस्सा बन सकें। यदि देश के कुछ भागों का ही औद्योगिकीकरण किया जाता है और शेष हिस्से कृषि के सहारे छोड़ दिए जाते हैं तो यह बात भारत के लिए ना सिर्फ रक्षा के दृष्टिकोण से बल्कि प्रत्येक दृष्टिकोण से आपत्तिजनक होगी।

उपरोक्त बातों का देश के नियोजित आर्थिक विकास की दिशा में नेहरू के लिए बहुत अधिक महत्व था। भारी उद्योग और इस्पात उद्योग की स्थापना पर उनका विशेष बल था परन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होंने कृषि की अवहेलना नहीं की थी। नेहरू जी हमारे देश में नियोजित विकास के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं।

गाँधी ने स्पष्ट कियां कि न्यासिता सिद्धान्त कोई ऐसी चीज नहीं है जो काम निकालने के लिए आज रख दिया गया है। अपनी मंशा छिपाने के लिये खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगित नहीं हैं। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्वज्ञान और धर्म के समर्थन का बल हैं। धन के मालिकों ने इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया है। इस बात से यह सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धान्त झूठा हैं।

उससे धन के मालिकों की कमजोरी मात्र सिद्ध होती है। अहिंसा के साथ किसी दूसरे सिद्धान्त का मेल ही नहीं बैठता। अहिंसक मार्ग की खूबी यह है कि अन्यायी यदि अपना अन्याय दूर नहीं करता तो वह अपना नाश स्वयं ही कर डालता हैं क्योंकि अहिंसक असहयोग के कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारने के लिये मजबूर हो जाता है या वह बिल्कुल अकेला पड़ जाता है।

1.5 नैतिक एवं राजनैतिक मूल्य

गाँधी के मूल्यों में अपनी आस्था प्रकट करते हुए भी गाँधी की विचारधारा से नेहरू की सोच अलग है। नेहरू जिन नैतिक और राजनीतिक मूल्यों को प्राथमिकता देते हैं उन्हें राजनीति में स्थान देने के पीछे उनका अपना दर्शन रहा है।

गाँधी और नेहरू दोनों सत्य को एक बहुमूल्य वस्तु और महान् राजनैतिक आदर्श मानते हैं। दोनों ही सत्य को पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील दिखाई पड़ते है। दोनों ही सत्य को प्राप्त करना किसी भी मनुष्य का लक्ष्य मानते हैं। दोनों ही सत्य को शाश्वत और चिरंतन मानते है। परन्तु जहाँ नेहरू दर्शन में निरपेक्ष सत्य का स्थान सीमित है क्योंकि उनके अनुसार इसको पाना और इस तक पहुँचना कठिन है अतः उसे प्राप्त करने में अपना जीवन व्यतीत करना जीवन की मूल समस्याओं से कट जाना है। इसीलिए सत्य के अंश पर केन्द्रित रहना ही नेहरू का प्रमुख लक्ष्य रहा है। वहीं गाँधी के दर्शन में निरपेक्ष सत्य का स्थान सर्वोच्च है वही नैतिकता, राजनीति और धर्म का आदर्श है यही जीवन के अन्य मूल्यों-अर्थ काम और धर्म को अर्थ प्रदान करता है। यही सापेक्ष सत्य का आधार है। सापेक्ष सत्य को पकड़े रहना ही निरपेक्ष सत्य तक पहुँचनें का साधन है और उसका कोई सम्बन्ध मोक्ष या इन्द्रियातीत अवस्था तक पहुचनें से नहीं। वहीं गाँधी के लिए सत्य का वास्तवकि उद्देश्य इसी इन्द्रियातीत अवस्था को प्राप्त करना है। यहाँ नेहरू और गाँधी के इस अन्तर का समझने के लिए उनके अलग-अलग उद्धरणों को उद्धत करना समीचीन होगा।

गाँधी की मान्यता थी कि अनेक सम्बद्ध प्रत्ययों, सिद्धान्तों से अभिप्रेरित सत्य की सार्वभौतिकता प्रतिवाद से मुक्त तार्किक वास्वविकता है। गाँधी के विश्वासवृत्त में सर्वेश्वर की उपासना सत्य के प्रतिमान पर्याय की प्रमाणिकता है। उन्होंने स्वीकारा कि चाहे ईश्वर के दर्शन न हुए हो, ईश्वर की खोज सनातन बनाए रखना प्राथमिकता है। जब तक सनातन, शाश्वत सत्य का दर्शन न हो, सापेक्ष सत्य की खोज तथा सम्बद्ध संकल्प, विश्वास, प्रतिबद्धता में ही व्यक्ति के मार्गदर्शन की ज्योति संरक्षण तथा सूत्रबद्ध सामथ्र्य स्थापित है।

इस सन्दर्भ में नेहरू ने स्पष्ट किया यदि सत्य की शाश्वत निर्णायकता को स्वीकारा जाए तो उसके अनन्य, अक्षत एंव अपरिवर्तनीय सत्य के विषय में कोई शंका नही हो सकती। सत्य की ऐसी अस्मिता सदैव बोधगम्य नही होती। कारण यह है कि व्यक्ति की परिसीमित विवेक क्षमता तथा सामथर्य के अनुरूप सत्य की अनुभूति भी समय सन्दर्भ विव्रकेजन्यता की विकास क्रिया तथा सामयिक विचारपद्धति से आबद्ध रहती है चाहे सत्य के

लाक्षणिक आधार मूलतः अक्षत रहते हैं। विवेकजन्यता की विकासशील सामथ्र्य से अनुशासित दृष्टि, विचार पद्धतियों की परिवर्तनीयता तथा नवीन प्रतीकों के उदय के फलस्वरूप सत्य के निर्वचन प्रकट होते हैं। अस्तु, सत्य का अन्वेषण, सत्यापन पुनः स्वरूपण एवं गत्यात्मक विकास सदैव व्यक्ति की अनुभूति से संलग्न बना रहे तथा वैचारिक प्रगतिक्रम और जीवनवृत के अनवार्य प्रवाह निरन्तर अबाधित रहें-सत्य की सृजनशील सांदर्भिकता हेतु परमावश्यक स्थितियाँ हैं।

गाँधी के दर्शन में सत्य विश्वास, मानव-अस्तित्व, मानव चरित्र और समस्त तत्वों का आधार हैं। यह ज्ञान के क्षेत्र में सत्य कहलाता है परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में औचित्य और सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में न्याय कहलाता है। गाँधी जी के दर्शन में सत्य को वैज्ञानिकता से नही जोड़ा जा सकता क्योंकि जो कुछ हम देख रहे हैं वह सत्य का केवल अंश मात्र है। सत्य तो सूर्य से भी करोड़ो गुना तीव्र है। जिस प्रकार सूर्य के अंश मात्र से ही प्राणी जीवित है उसी प्रकार सत्य के अंश मात्र के कारण ही मनुष्य का व्यक्तित्व व राजनैतिक जीवन सुरक्षित है।

वहीं निरपेक्ष सत्य की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए नेहरू लौकिक जगत के लिए केवल सत्य के उस अशंमात्र को महत्व देते हैं जिसे मनुष्य के जीवन के विकास और विचारों के उत्थान के साथ निरन्तर अपने को ढालता रहा है अर्थात नेहरू के दर्शन में सत्य वैज्ञानिकता को प्राप्त करने का साधन है क्योंकि इसी की सहायता से व्यक्ति रूढ़ियों से लड़ सकता हैं। पुरानी जर्जर अवधारणाओं को नए तथ्यों के प्रकाश में पुनः स्थापित कर सकता हैं।

सत्य की अवधारणा की तरह ही अहिंसा के बारे में भी दोनों के विचार भिन्न है। यद्यपि दोनों के लिए अहिंसा एक वैयक्तिक आदर्श होने के साथ-साथ एक सामाजिक आदर्श है। दोनों के लिए अहिंसा कायरता के तरीकों पर आधारित नही है बल्कि बुराई व हिंसा से लड़ने के लिए बहादुरों का तरीका है। दोनों के लिए अहिंसा हिंसा से अधिक प्रभावशाली हैं। परन्तु जहाँ गाँधी के लिए अहिंसा सत्य को प्राप्त करने का एक मात्र साधन है वहीं नेहरू के लिए अहिंसा सामाजिक व राजनैतिक न्याय को प्राप्त करने व सामाजिक कुरीतियों से लड़ने की एक सशक्त व्यवहारिक तकनीक हैं। उन्होंने अहिंसा को गाँधी की तरह किसी आत्मिक प्रेम से नहीं जोड़ा बल्कि उसे समसामयिक परिस्थितियों में भारत के लिए सबसे अधिक कारगर अस्त्र माना क्योंकि सशस्त्र विद्रोह भारतीय जनता के लिए बहार के सवाल जैसा होगा। भारत की अधिकांश जनता अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग तक करना नहीं जानती।

गाँधी के दर्शन में अहिंसा का प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में भी एक नैतिक अस्त्र के रूप में होता हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि सकारात्मक दृष्टि से अहिंसा, असीमित सम्पूर्ण प्रेम का प्रत्यय हैं। अहिंसा का उपासक शत्रु के प्रति भी दया, क्षमा, सहिष्णुता, अनुकम्पा से अभिभूत रहता हैं सृजनशील अहिंसा अपवादरहित स्थिति में सत्य एवं अभय से संलग्न एकाकार है। गाँधी ने अहिंसा के शाश्वत पवित्रमय सत्य को स्पष्ट करते हुए स्वीकारा है कि

वास्तविक लोकसत्ता टाविा स्वराज्य की प्राप्ति असत्य अथवा हिंसक प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं हो सकती। प्रतिवाद एव अपवाद से मुक्त अहिंसा की सार्वभौतिकता के अन्तर्गत ही वैयक्तिक स्वतन्त्रता की व्यावहारिकता सम्भव हैं।

नेहरू का तर्क है कि मनुष्य अभी इतना महान नहीं हुआ हैं कि उसमें से हिंसा के तत्वों को पूरी तरह से निकाल दिया जाए, न ही वे गाँधी जी की तरह यह मान पाते हैं कि अहिंसा के द्वारा किसी भी व्यक्ति को पूरी तरह बदला जा सकता है। इस प्रकार अमेरिका के प्रख्यात अहिंसा के समर्थक विचारक जीनशर्प की तरह वे अहिंसाको एक नैतिक अस्त्र की तरह नहीं बल्कि एक राजनैतिक रूप में स्वीकार करते हैं। नेहरू के शब्दों में "जब मैं अहिंसा के बारे में बात करता हूँ तो यह नैतिक नहीं सिर्फ राजनैतिक होता है। अहिंसा का प्रयोग हमने एक राजनैतिक हथियार के रूप में हमारे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया है और इसलिए इसको छोड़ने का प्रश्न नही उठता है।

गाँधी का दृष्टिकोण आदर्शवादी, तत्ववादी एवं शाश्वत मूल्यों पर आधारित है वहीं नेहरू का दृष्टिकोण व्यवहारिक एवं परिस्थितिपरक मूल्यों पर अवलम्बित है। एक राजनीति को निरपेक्ष मूल्यों की प्रयोगशाला मानता है तो दूसरा राजनीतिक को कौटिल्य की तरह एक कूटनीति और समन्वय सामंजस्य की प्रक्रिया मानता है।

इस प्रकार नेहरू के लिए अहिंसा का यह पूर्ण रूप कभी सम्भव ही नहीं। यहाँ तक कि अनेक परिस्थितियों में नेहरू ने हिंसा की सकारात्मक भूमिका का उल्लेख किया है। उनका तर्क है कि हिंसा का आधार कभी सद्भावना भी हो सकता हैं और जिस चीज का आधार सद्भावना होता है उसका पूर्ण रूप से बहिष्कार नहीं किया जा सकता है। इसलिए अहिंसा को वे केवल एक सापेक्ष मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं निरपेक्ष मूल्य में नहीं। उन्होंने स्पष्ट किया है "बहुत से मौकों पर मैने साफ-साफ यह जाहिर किया है कि अहिंसा मेरे लिए कोई अटल धर्म नहीं है। अतः दोनो के विचारों मे भिन्नता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि एक वैयक्तिक मुक्ति और सामाजिक आदर्श में अन्योन्यश्रित सम्बन्ध मानता है जबकि दूसरा सामाजिक आदर्श को वयैक्तिक आदर्श से स्वतन्त्र होकर देखता है।

सत्य और अहिंसा के प्रति दृष्टिकोणों का अन्तर गाँधी और नेहरू के साध्य और साधन के सम्बन्ध में भी परिलक्षित होता हैं। दोनों साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर बल देते हैं। दोनों साध्य और साधन को एक-दूसरे के साथ अटूट रूप से जुड़ा मानते हैं। दोनों उचित साधनों के अभाव में वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति कठिन मानते हैं परन्तु जहाँ गाँधी जी के लिए साधन की पवित्रता उतनी ही आवश्यक हैं जितनी साध्य की वहाँ नेहरू साधन से अधिक साध्य को महत्व देते है।

गाँधी जी का तो तर्क है कि साध्य और साधन के बीच बीज और पेड सा सम्बन्ध है।" गाँधी के इस विश्वास के संदर्भ में नेहरू ने स्पष्ट किया कि ऐसी मान्यता के आधार पर समस्या निवारण की सम्भावनाएँ सीमित हो जाती है। गाँधी द्वारा साधनों को प्रयोजन एवं साध्य की तुलना में प्राथमिक मानने की स्थिति में अहिंसा एवं सत्य की अस्मिता समानार्थक है। अनेक बार जन सामान्य में इस प्रकार का विश्वास उपस्थित नहीं दीख पड़ता। सांदर्भिक दायित्व को राष्ट्रीय आन्दोलन की प्राथमिकता से समीकृत कर नेहरू ने माना कि समयोचित कर्मण्यवादी दर्शन मूल अनिवार्यता थी क्योंकि इस प्रकार के उद्घोष की प्रेरणा की व्यैक्तिक नीतिपरक एवं सामाजिक प्रभाव प्रवाह के समकक्ष मानी जा सकती थी।

इस संदर्भ में राघवन अयग्र ने स्पष्ट किया कि सामाजिक तथा राजनीतिक विचारकों के मध्य गाँधी एकाकी व्यक्तित्व दीख पड़ते हैं, जिन्होंने "साध्य" युग्म के प्रति अपरिवर्तनीय हठधर्मिता को सशक्त स्तर पर अस्वीकार एवं साधन के प्रति नैतिक परमवादी प्रतिबद्धता की प्राथमिक प्रमाणिकता को ही विश्वनीय स्वीकृति प्रदान की।

यहाँ तक कि गाँधी के लिए एक अर्थ में साधन साध्य से भी बढ़कर है क्योंकि साध्य पर तो मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं है केवल साधनों पर ही उसकी पकड़ है। परन्तु इसके विपरीत नेहरू का तर्क है कि साध्य को समझना एवं उसकी दिशा को जानना साधन को जानने से बहुत कठिन है और अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सही साधन निर्बल मनुष्यों के लिए समझ के बाहर चीज होती है। बिना साध्य को जाने साधक लक्ष्य पर आगे नही बढ़ सकता है।

गाँधी वे पहले विचारक थे जिन्होंने राजनैतिक दर्शन के उस सिद्धान्त का पूरी तरह से खण्डन कर दिया कि साध्य से ही साधन का औचित्य सिद्ध हो जाता है। यह सिद्धान्त भारतवर्ष में कौटिल्य और पश्चिम में मैक्यिावेली से शुरू होता है। मैकिलयावेली ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि राज्य की रक्षा के लिए प्रयुक्त हर साधन उचित हैं। मार्क्सवादियों ने भी वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए हिंसा को उचित बताया। ट्राटस्की ने उन्हीं साधनों को उचित बताया जो मानव समुदाय को स्वतन्त्र कर सकें परन्तु यहाँ भी साधन का औचित्य साध्य से ही निर्धारित हो रहा है। नेहरू ने भी स्पष्ट कहा है कि मनुष्य को कम से कम ऐसे साधनों का चुनाव अवश्य करना चाहिए जो उसे उसके निर्धारित लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा दे। इस प्रकार नेहरू के दर्शन में साधन किसी न किसी सीमा तक साध्य से निर्धारित हैं। यह केवल गाँधी का दर्शन है जिसमें साधन अपने आप में स्वतन्त्र हैं। वह साध्य से जुड़ा अवश्य है परन्तु साध्य से निर्धारित नहीं।

नेहरू और गाँधी के दृष्टिकोणों का यह अन्तर सबसे अधिक धर्म के संदर्भ में स्पष्ट होता है। गाँधी जी का दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर में विश्वास व्यक्ति को निर्भय होकर उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करता है। मनुष्य को अज्ञान और बुराई से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है, निरंकुश से निरंकुश शासक को चुनौती देने का साहस प्रदान करता है। गाँधी जी भी धर्म से जुड़े हर प्रकार के बाहृय आडम्बरों का विरोध करते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है "धर्म

वह है जो मनुष्य की प्रकृति को परिवर्तित कर देता है, जो मनुष्य को सतय से बाँध देता है और उसे परिष्कृत करता है। यह मानव प्रकृति में स्थाई तथ्य है जो मानव आत्मा को उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति तक महान बनाने में कोई कमीं नही रखता, जो आत्मा को तब तक आराम नही लेने देता जब तक कि वह अपने स्वरूप को पहचान न ले, अपने एंव सृजनकर्ता को जान ले और अपने सृजनकर्ता के बीच सच्चे सम्बन्ध को समझ न ले।"

सत्य, अहिंसा, साधन और धर्म के बारे में दोनों के दृष्टिकोणों के बारे में यही अन्तर यहाँ गाँधी को एक आदर्शवादी और मूलतः एक धार्मिक चिन्तक बना देता है वहीं वह नेहरू को एक यथार्थवादी, वैज्ञानिक एवं मानववादी बना देता है। गाँधी जीवन के हर क्षेत्र में नैतिक मूल्यों को प्राप्त करना चाहते थें और इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए केवल ईश्वरीय शक्ति को छोड़कर अन्य बाह्य उपदानों का सहारा नही लेना चाहते थे क्योंकि बाह्य उपदानों पर व्यक्ति की निर्भरता, व्यक्ति की स्वतन्त्र आत्मचेतना के विकास में बाधा डालेगी। इसलिए वे राज्यों के केन्द्रीकरण, नियोजन और नौकरशाही आदि के विरूद्ध थे जबकि नेहरू जीवन के हर क्षेत्र में आदर्श और व्यवहार में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे क्योंकि वे मनुष्य की कमजोरियों से भलिभाँति परिचित थे। इन्हीं कमजोरियों के परिप्रेक्ष्य में वे शक्ति एव दबाव के महत्त्व को स्वीकार करते थे। वे इस बात के लिए भी सजग थे कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वचेतना इतनी विकसित करते थे। वे इस बात के लिए भी सजग थे कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वचेतना इतनी विकसित नहीं हो सकती थी कि वह सामाजिक सहयोग व सहचर्य को जन्म दे बल्कि उनका विचार था कि बहुधा मनुष्य की कमजोरियाँ और एक गलत सामाजिक ढाँचा समाजिक शोषण और अन्याय का कारण होता है। इसलिए जहाँ एक और वे वास्तविक रचनातमक विकास के लिए व्यक्ति स्वातन्त्रय के समर्थक हैं वहीं दूसरी और विषमताओं को समाप्त करने के लिए अनेक बाह्य उत्पादनों जैसे आर्थिक नियोजन, राष्ट्रीयकरण, सीमित केन्द्रीकरण आदि व्यवस्थाओं का समर्थन करते हैं। इतना ही नही एक शोषण विहीन समाज की स्थापना की लिए सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने की बात करते हैं।

यद्यपि नेहरू गाँधी की तरह वास्तविक धर्म के योगदानों को स्वीकार करते हैं परन्तु नेहरू नैतिक आचरण और मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने के लिए किसी धर्म में विश्वास करना आवश्यक नही मानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि धर्म की वर्तमान व्यावहारिक स्थिति को देखते हुए वे धर्म से अलग रहकर ही वैयक्तिक और राजनैतिक जीवन को व्यवहारिक मानते हैं। भारत की वास्तविक परिस्थितियों में धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों से भली भांति परिचित थे। उनके लिए सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह अत्यंत महत्वपूर्ण था और इससे पथभ्रष्ठ होना राष्ट्र और समाज के लिए नुकसान पहुँचाना है। धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों से लोगों में ज्ञान की रोशनी फैलानी की बजाए अक्सर उन्हें अंधकार की ओर दखेला जाता है और उदार हृदय बनाने की बजाए अक्सर लोगों को तंगदिल और दूसरों के प्रति असहिष्णु बनाता है। मानवीय स्वतन्त्रता के लिए धर्म के नाम पर प्रचलित बुराईयों को वे घातक मानते हैं और मानते हैं कि ये मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति और योग्यता को कुंठित करते हैं।

वास्तव में नेहरू उन्हीं मुद्धों पर ध्यान देना चाहते है जो मनुष्य के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को श्रेष्ठ बनाने में मदद करें। चूंकि विवेकशीलता, सामाजिक सदाचार, सत्य और नैतिकता एक रचनात्मक समाज के निर्माण में बड़ी अहम भूमिका अदा करते हैं इसलिए वे इन नैतिक मूल्यों में अपनी आस्था प्रकट करते हैं। धर्म जो मात्र ''वैयक्तिक मुक्ति'' से जुडा हुआ है, उसकी सीमितता को नेहरू ने भली भांति समझा। सामान्यतः पंथ तथा विश्वास के फलस्वरूप ईश्वर के प्रति सामाजिक जिज्ञासा अभिव्यक्त होती है एवं अनुयायी की कामना रहती है कि तुलनात्मक स्थिति में वैयक्तिक निर्वाण आश्वस्त हो जाए और समाज का कल्याण गौण हो जाता है। संस्थात्मक पंथ जब निहित स्वार्थपरकता का प्रतीक बन जाता हैं तो फलतः परिवर्तन तथा प्रगति की अवमानना को दृष्टिगत दायित्व मानकर प्रतिक्रियावादी तत्व सशक्त हो जाते हैं।

नेहरू के इस विचारों के विपरीत गाँधी के लिए धर्म व्यक्ति के लिए प्राण समान है। धर्मरहित राजनीति शव के समान है। यह बात और है कि धर्म शब्द का प्रयोग गाँधी ने जिस अर्थ में किया है वह नेहरू को भी मान्य है क्योंकि गाँधी की धर्म की व्याख्या मूल रूप से नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही है। परन्तु जहाँ नेहरू धर्म के साथ ईश्वर में आस्था होना आवश्यक नहीं मानते और न ही सत्य और अहिंसा के पालन के लिए धर्म में विश्वास होना आवश्यक मानते है वही धर्म गाँधी को पूर्णतः ईश्वर में विश्वास होने के साथ जोड़ते है और सत्य और अहिंसा के पालन के लिए ऐसी आस्था का होना आवश्यक मानते हैं। उनके शब्दों में ''सत्य और अहिंसा के प्रति व्यक्ति का मात्र यांत्रिक लगाव किन्हीं संकटपूर्ण क्षणों में उसे उसके पथ से अलग करता है.......ईश्वर एक जीवित या अवचेतन सत्ता हैं। हमारा जीवन उसी शक्ति का प्रतीक है। वह शक्ति हमारे अन्दर है........जो उस महानशक्ति के अस्तित्व को अस्वीकार करता है......वह उस पतवार विहीन जहाज के समान हो जाता है जो कि इधर उधर भटकता रहा है और अपने गंतव्य पर पहुँचे बिना नष्ट हो जाता है।''

इस समन्वय की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपने सम्पूर्ण राजनैतिक चिन्तन में मानवीय मूल्यों के प्रति नेहरू का अगाध आग्रह रहा है। वे सत्य, अहिंसा, आत्मानुशासन, सहिष्णुता आदि मूल्यों को प्रजातांन्त्रिक व्यवस्था का अभिन्न अंग बनाना चाहते थे। उनका उदारवाद केवल व्यक्ति स्वातन्त्रय तक सीमित नहीं था। बल्कि उन्होंने उदारवाद के साथ सामाजिक आर्थिक शक्तियों के महत्व को समझने का प्रयत्न किया था। उन्होंने व्यवहारवादियों की तरह राजनीति को केवल तथ्यों के अध्ययन तक सीमित नहीं किया वरन् हैना अरेन्ट, लियो स्ट्रास मैकफर्सन की तरह राजनीति को सामाजिक आदर्शों के साथ जोड़ा। इस प्रकार गाँधी व नेहरू दोनों के चिन्तन में मूल्यों के अर्थ, उपादेयता और प्रासंगिकता अलग अलग बिन्दुओं पर टिकी है।

1.6 सारांश

सारांश में कहा जा सकता है कि नेहरू ने गाँधी को अपना गुरू तो माना था किन्तु दोनों के विचारों में अन्तर भी है। गाँधी के चिन्तन में भौतिकता को न्यूनतम महत्व प्रदान करने की दृष्टि तथा भारतीय सामाजिक जीवन की

ज्वलंत समस्याओं से निपटने की आवश्यकता ने उन्हें वैकल्पिक मार्ग के बारे में सोचने और चलने के लिए प्रेरित किया। वे मानते थे कि गाँधी व्यक्ति की आत्मिक शुद्धता, जीवन में संयम तथा अपरिग्रह की धारणा से मानव जीवन को परिष्कृत एवं परिवर्तित करने को दृढ़संकल्प थे, किन्तु यथार्थ जीवन में गाँधी की वे धारणाए सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के समक्ष तत्काल और कारगर समाधान प्रदान करने हेतु मान्य नहीं हो सकता। वे व्यक्ति के आद्यात्मीकरण के स्थान पर प्रत्यक्ष एवं स्थूल जगत में आत्मीय अनुभूति को महत्व देते थे। गाँधी और नेहरू के मध्य वैचारिक और व्यक्तिगत संबंधों का निष्पक्ष आकलन यह स्पष्ट करता है कि नेहरू को गाँधी का अनुयायी तो माना जा सकता है, किन्तु उनकी यह अनुयायित्व अंधभक्ति नहीं है। नेहरू के विचारों पर गाँधी के व्यक्तित्व एवं चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव अंकित रहा। लेकिन उनके प्रति अनुयायित्व में नेहरू ने अपने विवेक को नहीं छोड़ा। कठिनाई यह थी कि मूल समस्याओं से सामाजिक पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में किसी प्रकार निबटा जाये। उनके समाजवाद का लक्ष्य निर्धनता को समूल रूप से नष्ट करना था। वे व्यक्ति या समूह द्वारा शोषण के प्रबल विरोधी थे। सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में पूर्ण सामंजस्य, व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन में सन्तुलन, समूह एवं व्यक्ति के मध्य सन्तुलन, उन्नति एवं बेहतरी के लिए प्रयत्न समाजवाद के माध्यम से प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य था। यदि संक्षेप में गाँधी और नेहरू के राजनैतिक मूल्यों को रेखांकित किया जाए तो वे मूल्य है - वैयक्तिक स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय, शोषण रहित समाज की स्थापना, शान्ति एवं सद्भावना। परन्तु इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए उनके रास्तें भिन्न हैं। इन दोनों के बीच अन्तर का कारण उनके दार्शनिक दृष्टिकोणों में अन्तर है। परन्तु समाज, व्यक्ति और राट्र की उन्नति के लक्ष्य के प्रति दोनों समान रूप सं प्रतिबद्ध थे।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी एवं नेहरू के राजनीतिक चिन्तन में समानतायें और अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. आर्थिक चिन्तन के संबंध में गाँधीएवं नेहरू का तुल्नात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
3. सामाजिक व्यवस्था और परिवर्तन के संबंध में गाँधीएवं नेहरू का तुल्नात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन: दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थोट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

4. शंकधीर, एम.एम., अण्डरस्टेंडिन्ग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996

5. नन्दा, बी. आर., द नेहरूस: मोतीलाल एण्ड जवाहरलाल, जे. डेय कं., न्यू यार्क, 1963

6. ज़कारिया, बेन्जामिन, नेहरू, राऊट्लेज, न्यू यार्क, 2004

7. रेंज, विल्लार्ड, जवाहरलाल नेहरूस वर्ल्ड व्यू, यूनिवर्सिटी ऑफ जोर्जिया प्रेस, ऐथेन्स, 1961

इकाई – 2

विनोबा भावे का राजनीतिक चिन्तन

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राष्ट्रवाद पर विचार

2.3 लोकतन्त्र पर विचार

2.4 पंथनिरपेक्षता पर विचार

2.5 मानवाधिकार पर विचार

2.6 शान्ति सेना और विश्व शान्ति संबंधी विचार

2.7 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी:-

- विनोबा भावे के राजनीतिक चिन्तन के विभिन्न पक्ष समझ सकेंगे।
- विनोबा भावे के पंथनिरपेक्षता संबंधी चिन्तन को समझ सकेंगे।
- विनोबा भावे के शांति संबंधी चिन्तन और कार्य को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में सहज ही हमारा ध्यान श्री अरविन्द घोष, एम.एन.रॉय, डॉ. राममनोहर लोहिया तथा महात्मा गाँधी के दर्शन की ओर जाता है, जिन्होंने अपनी कल्पना के आदर्श समाज का प्रतिमान प्रस्तुत किया। आचार्य विनोबा भावे इसी श्रृंखला की अगली कड़ी है। आचार्य विनोबा भावे ने गाँधी के चिन्तन और दर्शन को केवल समझा ही नहीं अपितु उसे आत्मसात भी किया। भारतवर्ष का स्वतन्त्रता आन्दोलन भारतीयों द्वारा अंग्रेजी शासन की दासता की मुक्ति पाने के लिए भारतीयों द्वारा संचालित एवं संगठित आन्दोलन था। लोकमान्य तिलक के अवसान के पश्चात राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गाँधी का आविर्भाव हुआ।गाँधी-युगीन स्वतन्त्रता सेनानियों में विनोबा भावे अग्रणी रहे हैं। परतन्त्रता के इसी युग में समकालीन चिन्तकों की भाँति आचार्य विनोबा के राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा साकार रूप ग्रहण कर सकी। नागपुर जेल में "स्वराज्यशास्त्र" जैसी कृति का साकार रूप लेना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आचार्य विनोबा भावे विनम्रतापूर्वक स्वयं स्वीकार करते है, "स्वराज्यशास्त्र सम्बन्धी इस छोटे से टिप्पणी की कल्पना दरअसल नागपुर जेल में की गयी थी। मुझे कहना चाहिए कि अगर श्री बियाणी जी इसे आदरपूर्वक ही नहीं, बल्कि आग्रहपूर्वक भी, खुद "कलमनवीस" बनकर मुझसे न कहलवाते, तो कम-से-कम फिलहाल इसके साकार होने की बहुत सम्भावना नहीं थी। अहिंसा पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाली यह पुस्तक मूलतः मराठी में है। 'सर्वोदय-विचार और स्वराज्यशास्त्र' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में विनोबाजी स्वयं स्पष्ट करते हुए कहते हैं-'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र' विषयक मेरे विचारों का यह संक्षिप्त संकलन पाठकों को समर्पित किया जा रहा है। मेरी दृष्टि में इसका बहुत महत्व है। मेरे दीर्घकालीन चिन्तन, निरीक्षण और कर्मयोग का सार इसमें आ गया है। 'स्वराज्यशास्त्र' उस लोकनीति का व्याकरण है।

2.2 राष्ट्रवाद पर विचार

विश्व के वर्तमान राज्य राष्ट्रीय राज्य हैं और राष्ट्रवाद को बीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रभावशाली व सशक्त विचार कहा जा सकता है। आज हम अपने प्रत्येक सार्वजनिक कार्य तथा व्यवहार में राष्ट्रवाद के भाव से प्रेरित होते हैं-और यह भाव आज मनुष्य-मनुष्य के बीच ही नहीं वरन् राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का भी नियामक बन गया है।

राष्ट्रवाद का भाव अपने सात्विक रूप में अन्तर्राष्ट्रवाद का सहयोग है और नागरिकों में देशभक्ति और देश-प्रेम की उमंग उत्पन्न करता है, किन्तु यही भाव जब उग्र रूप धारण कर लेता है तो इसका परिणाम महाभयंकर होता है।

'राष्ट्रवाद' के विभिन्न अर्थ लगाये गए हैं और उसको तरह-तरह से परिभाषित किया गया है। ऐसा कहा गया है कि-'यह मस्तिष्क की एक अवस्था है जिसमें व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ निष्ठा उसके राष्ट्र-राज्य के प्रति होती है। इस

रूप में राष्ट्र-राज्य के प्रति होती है इस रूप में राष्ट्रवाद का अभिप्राय यह हो जाता है कि-'राज्य या राष्ट्र के लागों को समान बना दिया जाये या, कम-से-कम, राज्य की सीमा के निर्धारण को जाति सम्बन्धी सिद्धान्तों के अनुसार निश्चित करने की इच्छ प्रकट की जाए।

इसी तरह राष्ट्रवाद के एक पृथक् और व्यापक अर्थ में इसके आशय को इस भाँति उद्घाटित किया गया है-'यह मस्तिष्क की एक प्रकार की अवस्था या दशा है जो ऐसे लोगों की विशेषताओं की द्योतक है जिनकी समरूपी संस्कृति हो, जो किसी प्रदेश में निकट मेल-जोल से निवास करते हों तथा अपने अलग अस्तित्व व समान भाग्य में विश्वास रखते हों।

भारतवर्ष में एकता और राष्ट्रवाद की संकल्पना उतनी ही पुरानी है, जितना विश्व का इतिहास। प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद की ऋचाओं में यह भाव प्रस्फुटित हो चुका है। आधुनिक अर्थों में भारत में राष्ट्रवाद के स्पष्ट अंकुर 19वीं शताब्दी में प्रस्फुटित होने लगे। भारतवर्ष में बौद्धिक पुनर्जागरण को आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक महत्वपूर्ण कारण निरूपित किया जा सकता है। आधुनिक अर्थों में राष्ट्रवाद की संकल्पना को लें तो राजा राममोहन राय को "भारतीय राष्ट्रवाद का पैगम्बर तथा आधुनिक भारत का जनक" कहा जा सकता है। राजा राममोहन राय ने देश में चिन्तन के अभिनव द्वार खोले और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिस पर भावी धर्म एवं समाज सुधारक तथा राजनीतिक चिन्तन आगे बढ़ते रहे।

भारतीय आत्मा के जागरण की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में हुई और राजनीतिक आत्म-चेतना का उदय उसके अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ।

गाँधीजी की राष्ट्रवाद की संकल्पना एक विशिष्ट प्रकार की है और राष्ट्रवाद की आधुनिक परिभाषाएँ इस संकल्पना को अभिव्यक्ति देने में न केवल अपर्याप्त है, अपितु एकांगी भी है। गाँधीजी ने कहा था, "………बिना सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय बने कोई अन्तर्राष्ट्रीय नहीं हो सकता। जब राष्ट्रीयता एक सत्य बन जाती है, तभी अन्तर्राष्ट्रीयता सम्भव है। यानि जब अलग-अलग देशों के लोग संगठित हो जाते हैं और एक व्यक्ति की तरह काम करते हैं तभी यह सम्भव है। राष्ट्रीयता पाप नहीं है। उसकी संकीर्णता और स्वार्थ भावना बुरी है। आज के राष्ट्रों में आपस में जो परस्पर घृणा है, वह पाप है। प्रत्येक राष्ट्र मानो दूसरे को शोषित करके, दूसरे के ध्वंस पर अपना निर्माण करना चाहता है।"

राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की संकल्पना हमारे देश में कुछ भिन्न है। वह ग्रीस से आरम्भ हुए 'नगर-राज्य' और बाद के यूरोप के 'नेशन-स्टेट' या सोवियत संघ के नैशनैलिटी(nationality) की कल्पना से भिन्न है। भारत में राष्ट्रवाद मूलतः वेदों के राष्ट्री-सूक्त से प्रारम्भ हुआ, इसमें मानव-मानव के बीच विभाजक रेखा या परस्पर घृणा या द्वेष फैलाने की बात कहीं नहीं थी। पॉल पावर ने गाँधी की 'राष्ट्र' सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण इन शब्दों में किया है-'कर्म या श्रम, पृथ्वी और जीवन का नारी पक्ष गाँधीजी के समाज देर्शन के तीन प्रधान प्रतीक

हैं, यहाँ नारी-तत्व के तात्पर्य है करूणा और समन्वय से। कभी-कभी गाँधी 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग समाज व्यवस्था के अर्थ में करते थे। वे कभी-कभी एक समान इतिहास और नियति वाली जनता की इकाई को 'राष्ट्र' कहते।

गाँधीजी की राष्ट्रवाद की अवधारणा में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य सर्वोपरि थे और यही कारण है कि विनोबा के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में भी इन्हें उच्च मूल्यों के दिग्दर्शन हमें स्वाभाविक रूप से होते हैं। गाँधीजी कभी भी केवल भौतिक जगत् और उसके सैन्य, शास्त्र, सत्ता पर आधारित शक्तिशाली राष्ट्र तन्त्र में विश्वास नहीं करते थे। उनके विचार से ऐसे राष्ट्र का कोई अर्थ नहीं था, जिसका आथार आध्यात्मिक न हो, जिसके पीछे परमात्मा का अधिष्ठान न हों।

आचार्य विनोबा भावे के राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा 'स्वराज्यशास्त्र' के लेखन के साथ ही आकार ग्रहण करती प्रतीत होती है। नागपुर जेल प्रवास के दौरान रची गई यह कालजयी कृति अपने आप में अनुपम है। सर्वराष्ट्रीय अविरोध या भ्रातृभाव पर अपने विचारों के प्रकटीकरण के साथ वे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "राजनैतिक-पद्धतियों का विचारा करते हुए दूसरी भी एक बहुत महत्व की बात पर ध्यान देना पड़ता है। वह यह कि राष्ट्र की अन्तर्गत वयवस्था के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों से उसका व्यवहार कहाँ तक अविरोधी है। पुराने जमाने में जब यातायात के साधन इतने वेगवान् नहीं थे, तब भी यह प्रश्न कम महत्व न रखता था। आज तो सर्वराष्ट्रीय अविरोधी ही नहीं, वरन् अनुकूलता और भ्रातृभाव किसी भी राष्ट्र-समूह के व्यवहार का मूल तत्व माना जाना चाहिए।"

आचार्य विनोबा भावे के उपर्युक्त कथन में अन्तर्राष्ट्रवाद के साक्षात् दर्शन होते हैं। राज्य-पद्धति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए विनोबा जिन दस आग्रहों पर प्रकाश डालते हैं, उनमें भी विनोबा का प्रथम आग्रह सार्वराष्ट्रीय भ्रातृत्व पर है। आदर्श राज्य पद्धति के अन्तिम एवं दसवें आग्रह में वे अपेक्षा करते हैं कि-'सार्वत्रिक, अव्याहत एवं तटस्थ या मुक्त, ज्ञान प्रचार।'

आचार्य विनोबा का राष्ट्रवाद सतही और संकुचित राष्ट्रवाद न होकर अपने भीतर विशाल अन्तर्राष्ट्रवाद का सागर समेटे हुए है। विनोबाजी की अवधारणा में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, नस्लवाद का सख्त विरोध सम्मिलित था। आचार्य विनोबा भावे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि संकिर्ण राष्ट्रवाद व्यक्ति को अन्धा बना डालता है, विनोबा के राष्ट्र प्रेम में सब राष्ट्रों का प्रेम निहित था।

क्या सर्वोदय विचार अति आदर्शवादी नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य भावे कहते हैं, "आज दुनिया में कानून और सरकार ही मजबूत है। लेकिन आगे जो दूनिया आयेगी, उसमें जनता की शक्त होनी चाहिए, लादी हुई सत्तानहीं। यह हमारा आदर्श है। नहीं तो क्या होगा? वन-वर्ल्ड (विश्वराज्य) होगा नहीं। इसलिए इधर एक विश्वराज्य चाहिए और उधर जनता अपने पाँव पर खड़ी हो।"

इस प्रकार उपर्युक्त् कथन से स्पष्ट है कि विनोबा का राष्ट्रवादी चिन्तन अतिव्यापक है। आचार्य विनोबा भावे की मान्यताओं को शब्द एवं स्वर देते हुए प्रसिद्ध गाँधीवादी तथा सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी लिखते हैं, "हमारे यहाँ सशस्त्र क्रान्ति, अनुपयुक्त ही नहीं अवांछनीय है हमारी क्रान्ति अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति, अनुपयुक्त ही नहीं अवांछनीय है हमारी क्रान्ति अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति का अर्थ मैं बता ही चुका हूँ कि वह हमारे राष्ट्र के लिए सुलभ होनी चाहिए और दुसरे राष्ट्र के लिए अनुसरणीय होनी चाहिए। ऐसी क्रान्ति की प्रक्रिया का विकास आज करना आवश्यकता था।

पाँच हजार वर्ष से भी पुराने इस सनातन राष्ट्र में-'वसुधैव-कुटुम्बकम्' का मन्त्र विद्यमान रहा है। हमारे यहाँ कि आध्यात्मिक, नैतिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताएँ अपनी विशिष्टताओं के उपरान्त भी सर्वग्राही रही है इसमें संदेह नहीं। विश्व-कुटुम्ब योग पर विचारों को अभिव्यक्ति देते हुए दादा धर्माधिकारी लिखते हैं, "विश्व कुटुम्ब योग का आरम्भ ग्रामीकरण में है। ग्राम में हर मनुष्य एक-दूसरे से परिचित है। यहाँ अपने लिए उत्पादन कोई नहीं करता। सब एक-दूसरे के लिए उत्पादन करते हैं। इससे सारा ग्राम एक कुटुम्ब बन जाता है। ग्राम कुटुम्ब बनता है, तो 'विश्व कुटुम्ब योग' आ जाता है। "आचार्य विनोबा भावे के राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयता के बीच एक सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। दादा विनोबा की मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "इधर राष्ट्र-राष्ट्र में अविश्वास और भय है, उधर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का जोश है, जज्बा है, उमंग है। सिर्फ विनोबा ही नहीं अब तो कई राजनैतिक व्यक्ति भी कहते हैं कि एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए "पासपोर्ट" और 'वीसा' नहीं होना चाहिए।"

आचार्य विनोबा भावे के राष्ट्रवादी चिन्तन में अन्तर्राष्ट्रवादी चिन्तन में अन्तर्राष्ट्रवाद के साथ ही मानवतावाद के भी दर्शन होते हैं। सर्वोदयी चिन्तक दादा धर्माधिकारी लिखते हैं "हम विश्व को एक विराट सामुदायिक संस्था नहीं बनाना चाहते। सारे विश्व को कुटुम्ब बनाना चाहते हैं। संस्था में जो रिश्ता होता है, वह सदस्य का होता है और कुटुम्ब में जो रिश्ता होता है, वह आत्मीयता का होता है।"

सर्वोदय कल्पना के अन्तर्राष्ट्रीय समाज में देशों के बीच मानव निर्मित दीवारें नहीं होंगी। सर्वोदय की अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलित संकुचित अर्थो वाली अन्तर्राष्ट्रीयता नहीं है। विनोबा कहते हैं कि हमें चार बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(1) आज का नारा 'जय-जगत',

(2) हमेशा का नारा 'जय-जगत',

(3) हमारा नारा 'जय-जगत' और

(4) सबका नारा 'जय-जगत'।

‘आजकल और बरसों का भी वही नारा। उसी से उद्धार होगा। ‘विरोबा भावे अपने आदर्श एवं आशावादी स्वरूप का चित्रण करते हुए कहते हैं, “पन्द्रह साल पहले’जय-हिन्द’ का नारा निकला था। अब वह ‘जय-जगत्’ तक पहुँच गया है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दुनिया में वेग से विचार आगे बढ़ रहे हैं। धीरे-धीरे सभी देशों की सरहदें टूटने वाली हैं। अब विश्व को सम्मिलित परिवार बनाने की भावनाएँ बढ़ रही है।”

विनोबा की मान्यता थी कि राष्ट्र संस्था का अधिक से अधिक उपयोग जनकल्याण-विभाग की तरह हो, यही गाँधीजी की भी मान्यता थी। गाँधी की भाँति विनोबा भी इस मत के थे कि राष्ट्र एक तान्त्रिक साधन-मात्र है, वह अपने आप में कोई मूल्य या साध्य नहीं। विनोबा मनुष्य के अन्दर सत्ताके केन्द्रित होते ही शुरू होने वाली बुराई से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। मनुष्य का धन के लिए गर्व, पद के लिए अंकार, शस्त्र-शक्ति के कारण मिथ्याभिमान, धीरे-धीरे अपना प्रभाव फैलाने, जमाने और दूसरों पर रौब गालिब करने की मनुष्य की सहज प्रवृत्ति आदि से वे अच्छी तरह वाक़िफ थे।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि विनोबा के राष्ट्रवाद को समझनें में पश्चिमी राष्ट्रवाद की परिभाषाएँ नाकाफी और अपर्याप्त हैं। वह उनका अपना नया, उदार और व्यापक मानवतावाद था, जिसने राष्ट्रवाद की पुरानी कल्पना में एक अभिनव आयाम जोड़ दिया था, उन्होंने उस पुराने सामुहिक अभिमान में अनुकम्पा और सहानुभूति, नैतिकता और आध्यात्मिकता का ऐसा जोड़ लगाया कि उसका मूल रूप ही बदल गया।

2.3 लोकतन्त्र पर विचार

मानव जाति के प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ विद्यमान रही हैं और शासन के इन विभिन्न रूपों का मानव जाति के राजनीतिक विकास में विशेष महत्व रहा है। वर्तमान युग में लोकतन्त्र विश्व में एकमात्र स्वीकृत शासन पद्धति है। संसार में सर्वत्र लोकतन्त्र में विश्वास का शंखनाद किया जा रहा है। वर्तमान युग के इतिहास में यह पहली बार देखने को मिला है कि लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्तों का कहीं भी प्रतिपादन नहीं किया जा रहा है। प्रायः अपने विरोधियों पर “लोकतन्त्र” का पशु होने का आरोप लगाया जाता है।

लोकतन्त्र 19 वीं शताब्दी तक केवल एक राजनीतिक आदर्श था परन्तु 20 वीं शताब्दी में लोकतन्त्र के सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक पहलुओं का विकास भी हुआ है। ‘लोकतन्त्र’ आज की तारीख में केवल एक शासन पद्धति ही नहीं वरन् एक जीवन-दर्शन बन गया है।

‘लोकतन्त्र’ व्युत्पत्ति की दृष्टि से दो ग्रीक शब्दों को मिलकर बना है-’डिमोस’ और ‘क्रेटोस’। डिमोस का अर्थ है ‘जनता’ और ‘क्रैटोस’ का अर्थ है-’शासन’।और इस प्रकार डेमोक्रेसी का अर्थ है-जनता का शासन।

एक जीवन पद्धति के रूप में 'लोकतन्त्र' के कई पक्ष प्रस्फुटित और पल्लवित हुए हैं। वह एक शासन पद्धति का रूप है, वह एक समाज व्यवस्था का रूप है, वह एक आर्थिक संरचना का रूप है और इसी के साथ उसकी नैतिक मान्यताएँ एक विशाल फलक का निमार्ण करती है। आधुनिक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का उदय एवं विकास पाश्चात्य देशों में हुआ है।

आचार्य विनोबा भावे 'लोकतन्त्र' को एक स्वाभाविक व्यवस्था मानते थे, किन्तु आचार्य भावे का यह भी अभिमत था कि पूँजीवादी व्यवस्थाओं के कारण लोकतान्त्रिक मूल्यों पर पर्याप्त कुठाराघात हुआ है और 'लोकतन्त्र' के रहते हुए भी सामाजिक विषमताओं का ग्राफ बढ़ा है। हमारे राष्ट्र ने आत्मोपलब्धि द्वारा विश्वात्मा के साथ अनुसंधान साधने की जो साधना की है, उसके कुछ पथ-प्रदर्शक महानुभाओं की एक उज्जवल और जाज्वल्यमान परम्परा रही है। आचार्य भावे उसी परम्परा के बीसवीं सदी के प्रतिनिधि हैं, जो गाँधी के उत्तराधिकारी होने के बावजूद गाँधी-मार्ग को संशोधित ही नहीं परिष्कृत और परिमार्जित भी करते हैं। विनोबा अपने मौलिक चिन्तन के माध्यम से 'लोकतन्त्र' के लिए नयी ऋचाओं का निर्माण करते हैं।

विनोबा लोकतन्त्रवादी थे। समय-समय पर उन्होंने लोकतन्त्र की व्याख्या की। लोकतन्त्र से सम्बन्धित समस्याओं और निराकरण के उपायों का विश्लेषण भी किया। लोकतन्त्र सम्बन्धी उनके प्रामणिक विचार- 'सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र' तथा 'लोक-नीति' नामक रचनाओं में विस्तार से उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त विनोबा के अनेकानेक भाषणों में भी लोकतन्त्र विषयक विचारों के दिग्दर्शन होते हैं।

'स्वराज्यशास्त्र' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में अपने राजनीतिक विचारों, मान्यताओं और अवधारणाओं को शब्द देते हुए वे लिखते हैं-'राज्य' एक बात है और 'स्वराज्य' दूसरी बात। राज्य हिंसा से प्राप्त किया जा सकता हैः किन्तु 'स्वराज्य बिना अहिंसा के असम्भव है। इसलिए जो विचारशील हैं, वे 'राज्य' को नहीं चलातेः बल्कि यह कहकर तड़पते रहते हैं कि, "आओं, हम सब स्वराज्य के लिए जतन करें।"

आचार्य विनोबा भावे अपनी इस कृति में राज्य पद्धतियों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्हें दोषणूर्ण ठहराते हैं। स्वाभाविक त्रिविध राज्य पद्धति , "व्यवस्था निमार्ण के तीन स्वाभाविक प्रकार होंगे-(अ) कोई प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति सबके लिए व्यवस्था करें। (आ) अनेक प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति एकत्र होकर सबके लिए व्यवस्था करें। (इ) सब मिलकर समान जिम्मेदारी से अपनी व्यवस्था कर लें। राज्य व्यवस्था के इन तीन स्वाभाविक प्रकारों को हम "एकायत", "अनेकायतन" और "अनेकयतन' और "सर्वायतन" ये पारिभाषिक नाम दें।'

आचार्य भावे की दृष्टि में सर्वायतन का दावा करने वाली वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था भी वास्तविक अर्थों में सर्वायतन व्यवस्था नहीं है। आचार्य भावे के मत में वर्तमान लोकतन्त्र जो सर्वायतन होने का भ्रम पैदा करती है-वास्तव में यह लोकतन्त्र "लोक" अभावग्रस्त तन्त्र तथा वैभव परस्त प्रजातन्त्र है। आचार्य विनोबा इसे

स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ‘‘प्रजातन्त्र’’ नाम धारण करने वाली और सर्वायतन होने का दिखावा करने वाली एक राज्य पद्धति है, जिसको स्वांग यूरोप और अमेरिका में रचा जा रहा है। लेकिन हिंसा पर आश्रित कोई भी पद्धति भले ही ‘‘जितने सिर उतने मत’’ गिनने का दम्भ करें, वास्तव में सर्वायतन नहीं हो सकती।’’

आचार्य विनोबा वास्तविक अर्थों में सर्वायतन की व्याख्या प्रतिपादित करते हुए आगे लिखते हैं, ‘‘सब लोग मिलकर स्वेच्छा से और सोच-समझकर अपने में से किसी एक को या अनेक को राग-द्वेष रहित, भूत-हित तत्पर, बुद्धिमान और कुशल जानकर सारी सत्तासौंप दें तो वह सत्ताआकार में एकायतन या अनेकायतन भले ही प्रतीत हो, अगर उसका आधार अहिंसा है, तो उसे सर्वायतन ही मानना चाहिए।’’

आचार्य विनोबा भावे ने ‘‘लोकतन्त्र’’ की प्रतिष्ठा के लिए ‘‘लोकनीति’’ शब्द को प्रचलन में लाया। आज ‘‘राजनीति’’ के स्थान पर ‘‘ लोकनीति’’ शब्द को प्रचलन में आया। आज ‘‘राजनीति’’ के स्थान पर ‘‘लोकनीति’’ शब्द अपना स्थान बनाता जा रहा है। बड़े-बड़े विचारक और राजनीतिज्ञ भी ‘‘लोकनीति’’ की महत्ता और विशेषता समझने लगे हैं। सर्वसाधारण जनता का ध्यान भी लोकनीति की तरफ आकृष्ट हुआ है और वह गम्भीरता से इस विषय पर विचार करने को उद्धत है।

आचार्य विनोबा की प्रसिद्ध कृति लोक-नीति की प्रस्तावना में दादा धर्माधिकारी विनोबाजी की लोकतन्त्र सम्बन्धी अवधारणाओं और मान्यताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखते हैं, ‘‘लोकतन्त्र का अधिष्ठान कुछ ऐसे लोकधर्म हैं, जिनका उल्लंघन कोई सत्ताधारी पक्ष, समूह और स्वयं सर्वसत्ताका स्रोत जनता भी नहीं कर सकती। भगवान् शंकराचार्य ने तो ईश्वर के ऐश्वर्य की भी मर्यादा बतलायी है कि वह अपनी नियति का भंग स्वयं भी नहीं कर सकता, इसी में उसके ऐश्वर्य का गौरव है। उसी प्रकार लोकनीति के जो प्राणभूत मूल्य हैं, उनका उल्लंघन सर्वसत्तासम्पन्न लोक-समूदाय सर्वसम्मति से भी नहीं कर सकता। यही लोकतन्त्र की मर्यादा और प्रतिष्ठा है।’’

‘परिवर्तन की हवा’ नामक शीर्षक के अध्याय में विनोबाजी लोकतन्त्र के प्राण-तत्व जनता की शक्ति को सर्वोपरि प्रमाणित करते हुए उसकी व्याख्या इन सुन्दर शब्दों में करते हैं, ‘‘लोकसत्तामें सरकार को ‘शून्य’ की अपनी कोई कीमत नहीं होती। अगर वह एक के अंक पर चढ़ जाय तो 10 बन जाता है, दो पर चढ़ा तो 20 और तीन पर चढ़ा तो 30। परन्तु 10, 20, 30 बनाने की शक्ति शून्य में नहीं है। आप उस शून्य को दस, बीस बना सकते हैं। स्वतन्त्र रूप से उस शून्य की कोई कीमत नहीं है। लोकसत्तामें लोग ही सब कुछ हैं, सरकार कुछ नहीं।’’

आचार्य भावे अपनी लोक-नीति सम्बन्धी आख्यायिकाओं के माध्यम से जनमानस या जनता की प्राण-प्रतिष्ठा ही नहीं करना चाहते अपितु आचार्य प्रवर आचार्य प्रवर अपनी मौलिक और अभिनव मान्यताओं के द्वारा राजनीति के शुद्धिकरण के भी हामी हैं। विनोबाजी की यह दृढ़ मान्यता है कि राजनीति के शुद्धिकरण के

उपरान्त ही वास्तविक अर्थों में लोक-नीति की प्राण-प्रतिष्ठा हो पाएगी।''राजनीति का शुद्धिकरण और लोकनीति'' शीर्षक वाले अध्याय में वे लिखते हैं, ''राजनीति का शुद्धिकरण शब्द का अर्थ है, राजनीति की जगह लोकनीति की स्थापना करनाः भले ही इसमें चाहे कितना ही समय लगे राजनीति, विज्ञान के इस युग में न निभ सकती हैं, न रह सकती है। इसलिए लोकनीति की स्थापना के बिना विज्ञान युग में राजनीति को शुद्ध करने का दूसरा कोई भी रास्ता मेरे ध्यान में नहीं आता।

विनोबाजी गाँधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं और यही कारण है कि गाँधी का दर्शन उनमें और बड़े पैमाने पर दिखलाई पड़ता है। विनोबा में लोकतन्त्रात्मक राजनीति को उदार और उदात्त बनाने की एक अज़ीब सी तड़फ है जो हमें इन शब्दों में दिखलाई पड़ती है. ''राजनीति और धार्मिक क्षेत्र में जो दम्भ दिखता है, वह सब देख मुझे बहुत वेदना होती है और मैं उसे बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता हूँ। मैं समझता हूँ कि बापू के जाने के बाद भारत में जिस तरह राजनीति चल रही है, इसी तरह आगे चलानी हो, तो बापू के आने से क्या लाभ हुआ? उनके अवतार का कुछ फायदा हमें मिला या नहीं?''

विनोबाजी की लोकतन्त्र सम्बन्धी जो धारणा है उसमें केवल वे जनता की प्रतिष्ठा की स्थापना ही नहीं चाहते वरन् लोकनीति को वृहद् अर्थ प्रदान करते हुए जनता की आत्मशक्ति को उभारकर उसे स्वावलम्बी बनाने हेतु भी कृतसंकल्प प्रतीत होते हैं, ''स्वराज्य के बाद लोग ज्यादा परतन्त्र बने हैं। हर बात में हम सरकार पर निर्भर रहने लगे हैं। सामाजिक, धार्मिक या पारिवारिक आदि हर प्रकार का काम सरकार ही करें और हम कुछ न करें, ऐसी हालत हो गयी है। जो जनता सरकार पर इतनी निर्भर रहेगी, वह शक्तिमान कैसे बनेगी? कानून से मसला हल होगा लेकिन शक्ति न बढ़ेगी। वास्तव में लोगों को आत्मशक्ति का भान होना चाहिए। वह तभी होगा, जब लोग अपनी समस्याएँ खुद हल करेंगे।''

विनोबाजी की लोकनीति की प्रस्थापना नकारात्मक न होकर सकारात्मक है। वे लोकतन्त्रात्मक राजनीति के दोषों को बतलाकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री नहीं मान लेते अपितु अपनी लोकनीति को नवीन मान्यताओं से नयी मर्यादाएँ रचने का महान् दायित्व भी पूर्ण करते हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं, ''आज की राजनीति यद्यपि ''लोकनीति'' नहीं है, फिर भी लोकमान्य अवश्य है। इसलिए जब लोग बदलेंगे, तभी वह बदलेगी। अतः हम राजनीति के दोष ही दिखाते चले जायेंगे, तो अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करेंगे।''

आचार्य विनोबा भावे वर्तमान लोकतान्त्रिक पद्धति की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हुए जनता की शक्ति को स्थापित करने का विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं, ''लोकशाही का सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चंद लोगों पर है। उसमें लोग अपने हाथ में अपना जीवन नहीं रखते। इसमें कुछ लोगों के हाथ में सत्तादी जाती है और सभी आशा रखते हैं कि सरकार हमारी रक्षा करेगी। इसमें लोकमत का कोई सवाल नहीं, मुख्य व्यक्ति की अक्ल के अनुसार ही काम चलता है। यह बहुत ही शोचनीय बात है।''

विनोबा लोकतन्त्र का जो वर्तमान स्वरूप है उससे सन्तुष्ट नहीं हैं। वे उसकी दुर्बलताओं पर प्रहार करते हुए अपना मत इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं-आज का बोगस जनतन्त्र "आज लगभग सभी देशों में सत्तासरकार जनता द्वारा चुनी हुई है। लेकिन कहीं भी जनशक्ति से काम नहीं होता। यहाँ प्रातिनिधिक लोकशाही है, याने सारा सेवा कार्य हमने प्रतिनिधियों का सौंप दिया है। अपने सारे महत्व के काम प्रतिनिधियों को सौंपकर हम शक्तिहीन बन जाते हैं। "वोटिंग का ढोंग विनोबा भावे वोट की अर्थहीनता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "मन लें कि 100 मतदाता है। उनमें से 60 मत देते हैं और 40 नहीं। तो उन 60 में जिस पार्टी को 30 मत मिलते हैं, वह राज्य चलाती है।बाकी 30 मत विभिन्न पक्षों में बँट जाते हैं, इसका मतलब यह हुआ कि 30 लोगों की सत्ता100 पर चलती है।"

वोट की अर्थहीनता के साथ ही साथ विनोबा बहुमत के औचित्य और विधि निर्माण के पारस्परिक सम्बन्धों पर एक गम्भीर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए कहते हैं, "मान लें, कोई बिल असेम्बली में लाना है, तो पहले चुने हुए उन 30 लोगों की पार्टी मिटिंग होती है और उस पर राय ली जाती है। तब उस बिल का मानो पन्द्रह सदस्य विरोध करते हैं, परन्तु पार्टी उस बिल को पास कर देती है, तो वे विरोध करने वाले सदस्य भी असेम्बली में अनुकूल मत ही देते हैं। इस तरह असल में 100 लोगों के लिए 15 लोग एक बिल को पास करते हैं। उन 15 में भी मुख्य तो उनका एक नेता होता है या एक दो मन्त्री होते हैं। बाकी सब तो उनकी बात मानने वाले सदस्य होते हैं। इस तरह 100 मतदाताओ पर केवल तीन मनुष्यों का राज चलता है।

विनोबाजी लोकतान्त्रिक पद्धति में चुनाव पद्धति से उत्पन्न होने वाली बहुराइयों के प्रति भी पर्याप्त सचेत हैं और उस पर भी अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। चुनाव पद्धति के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं, "चुनाव को कितना भी महत्व क्यों न दिया जाय, आखिर वह ऐसी चीज नहीं है कि उससे समाज के उत्थान में हम कुछ मदद पहुँचा सकें। वह 'डेमोक्रेसी' में खड़ा किया हुआ एक यन्त्र है। एक 'फॉर्मल डेमोक्रेसी' (औपचारिक लोकसत्ता) आयी है।"

चुनाव पद्धति के कारण जातिवाद, धनबल, भुजबल और राजनीति में असामाजिक तत्वों के प्रवेश के दुष्परिणामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए विनोबाजी लिखते हैं, "चुनाव से जाति भेद की वृद्धि पहला दुष्पणिाम है। दूसरा यह है कि आज जो तरीका चलता है, उसमें जिसके पास ज्यादा पैसा है, वही इसमें भाग ले सकता हैः जिसके हाथ में ज्यादा सम्पत्ति है, वही चुनाव में खड़ा होता है। इस हालत में गरीब और मूक जनता की आवाज कैसे उठेगी? लाखों मतदाताओं की ओर से जिन्हें चुनना है, उनके गुण तो गुण, उनका चेहरा भी हम नहीं जानते। इस तरह चुनाव से खर्च बढ़ रहा हैं, जाति-भैद बढ़ रहा है और अच्छे मनुष्य ही चुनकर आयेंगे, इसका भी कोई भरोसा नहीं है।"

विनोबाजी जनतन्त्र में जनता के गौरव उसकी गरिमा को स्थापित करने के लिए आजीवन प्रतिबद्ध रहे, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे इन शब्दों में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, ‘‘नाम ‘मालिक’ परन्तु अर्थ ‘गुलाम’। किसी दरिद्र की लड़की का नाम रहता है न लक्ष्मी। बेवकूफ लड़की हो और उसका नाम हो सरस्वती, विद्या इत्यादि। वैसा ही एक नाम ‘‘डेमोक्रेसी’’ है। जनता सारी यजमान है, वह अपने नौकर चुनती है। परन्तु अपने हाथों से पानी पीने का अधिकार उसे नहीं है। हमारी और सारी दुनिया के लोगों की यही स्थिति है।’’

आचार्य भावे अपने लोकतन्त्र सम्बन्धी विचारों में ‘‘दलीय राजनीति’’ के भी विरूद्ध है, उनकी मान्यता है कि पार्टी पॉलिटिक्स के जरिये जो लोक-रक्षा होती है, वह भ्रमात्मक है। इसी के साथ उनकी यह भी मान्यता है कि वास्तविक और सही अर्थों में लोकतन्त्र की स्थापना दलीय राजनीति से ऊपर उठकर ही की जा सकती है। वे लोकनीति में स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि , ‘‘सत्ताया पार्टी पॉलिटिक्स (दलगत-राजनीति) के जरिये क्रान्ति कभी नहीं होती। वह तो जनमानस में होती है। इसलिए उसे पक्षातीत होना चाहिए।’’

विनोबाजी लोकतन्त्र में जो विसंगतियाँ हैं उनकी ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उन विंसगतियों से बचने हेतु वैकल्पिक रास्ते भी सुझाते हैं। विसंगतियों की तरफ इशारा करते हुए वे लिखते हैं, ‘‘आज हम इधर तो लोकतन्त्र की बात करते हैं, उधर अर्थव्यवस्था पूँजीवादी और लश्करशाही रखते हैं। मुहँ में लोकतन्त्र है और बगल में केन्द्रीकरण का लश्कर है। उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे, जो सूत कातता भी जाता है और तोड़ता भी जाता है? हम लोकतन्त्र के साथ-साथ उसके विनाश के तत्व भी लेते रहेंगे, तो परिणाम कैसे निकलेगा?’’

विनोबाजी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एवं केन्द्रीकरण के विकल्प के रूप में अपना मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट करते हैं कि, ‘‘हमें यह समझना होगा कि जनता को न सिर्फ ‘सुशासन’ के लिए, बल्कि ‘स्वशासन’ के लिए तैयार करना है। स्वशासन के दो पहलू हैं-(1) विकेन्द्रित सत्ता, याने सत्तागांव-गांव में बँटी होनी चाहिए। (2) हम हिंसा में शक्ति हरगिज नहीं मानते, प्रेम और अहिंसा में ही मानते हैं-इस तरह का शिक्षण, इस तरह का मानसशास्त्र और तत्वज्ञान लोगों में चलाना।’’

आचार्य विनोबा भावे की यह दृढ़ मान्यता रही है कि लोकतन्त्र के वर्तमान स्वरूप को तभी परिष्कृत, परिमार्जित और संशोधित किया जा सकता है जबकि सत्तापक्ष के सम्मुख एक सार्थक, सौद्देश्य और ईमानदार प्रतिपक्ष हो तथा धीरे-धीरे इन दो राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वालों के अतिरिक्त एक तीसरा निष्पक्ष समाज का आविर्भाव हो। उनका स्पष्ट विचार था कि-’इस तरह की जमात जितनी विशाल और शक्तिशाली होगी, राज्य तन्त्र और लोकतन्त्र, दोनों उतनें ही शुद्ध और मर्यादित रहेंगे। उस तीसरे निष्पक्ष समाज का एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा। ‘इस पंचविध कार्यक्रम की एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत है-

(अ) जीवन शोधन,

(ब)	अध्ययनशीलता,

(स)	निष्काम समाज सेवा,

(द)	वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह और

(इ)	मसलों का अहिंसक हल।

अपने निष्पक्ष समाज के लिए लोक-नीति के प्रति निष्ठा को विनोबा अनिवार्य एवं आवश्यक मानते हैं। विनोबा अपनी भावनाओं और विचारों को प्रकट करते हुए लिखते है, ‘‘लोकनीति के विषय में जितना मैं सोच रहा हूँ, उससे इतना निश्चय हो जाता है कि आज की राजनीति को मान्य करके, उसको तोड़ने के लिए भी जो उसे मान्य करेंगे, वे उसे तोड़ नहीं पाएँगे, क्योंकि तोड़ने के लिए बाहर रहना चाहिए। वुक्ष को तोड़ने में आप वृक्ष के बाहर रहकर उसे काटते हैं, तो काम बनता है उस पर चढ़कर ही उसको तोड़ना चाहें, तो नहीं तोड़ सकते।’’

विनोबा लोकतन्त्र की परिभाषा, ‘जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए’ को असली जामा पहनाने के लिए एक वैचारिक क्रान्ति के पक्षधर हैं जिससे वास्तविक अर्थों में लोकसत्ताकी स्थापना हो, इस पर अपना विचार रखते हुए वे कहते हैं, ‘‘हम लोक-क्रान्ति में विश्वास रखते हैं, इसीलिए जनता को सत्तावलम्बी बनाना नहीं चाहते। राज्याश्रयी जनता लोकसत्ताके आवश्यक लोकनीति और लोकचारित्र्य का विकास नहीं कर सकती। यह लोकनैतिक आन्दोलन की मूल प्रतिष्ठा है। उसका अधिष्ठान राज्यसत्तानहीं, लोकसत्ताहोगा।

विनोबा पार्टी ‘‘व्हीप’’ और संसद पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए अपने एक आह्वान में सीधे जनता तक पहुँचने की बात करते हैं-’कुछ अल्पमत में हैं, कुछ बहुमत में हैं। जो बहुमत में हैं वे चाबुक के नीचे हैं। इसको अंग्रेजी में ‘‘व्हीप’’ कहते हैं तो जो बहुमत में हैं, वे चाबुक के नीचे हैं और जो अल्पमत में हैं वे तो अल्प ही हैं। तो जो दोनों प्रकार के लोग पार्लियामेंट में जाकर बोलते हैं कि हम कुछ अच्छी बात वहाँ रख सकते हैं और अपनी आवाज हम सकरकार में पहुँचाते हैं, तो क्या सरकार इतनी बहरी बन गयी है कि बाहर सभा में कोई बात बोलेगा, तो वह नहीं सुनेगी और पार्लियामेंट में जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी?’’

2.4 पंथ-निरपेक्षता का विचार

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि-धर्मनिरपेक्षता न किसी धर्म को प्रोत्साहित करती है और न ही निरूत्साहित। इससे आशय अधर्मी या धर्म विरोधी विचार भी नहीं हैं। इसका आशाय है धार्मिक-सहिष्णुता और इससे भी आगे बढ़कर उदार और उदात्त रूप ‘रूर्व धर्म समभाव’।

आचार्य विनोबा भावे महात्मा गाँधी के अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। गाँधीजी का समग्र चिन्तन और दर्शन विनोबा में नये प्रतिमानों के साथ परिष्कृत, परिमार्जित होते हुए एक नवीन स्वरूप में विकसित हुआ है। विनोबा भारतीय

संस्कृति की एक ऐसी अनूठी विभूति है जिनके चिन्तन एवं दर्शन में नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का बल विद्यमान है। विनोबा 20वीं सदी के नैतिक और आध्यात्मिक अग्रदूत भी हैं, जिनके लिए मानव की नैतिकता और आध्यात्मिकता सर्वोपरि है। उनका मूल चिन्तन यही था कि सम्पूर्ण विश्व समाज एक विशाल परिवार के समान है।

विनोबा के पंथ-निरपेक्षता सम्बन्धी विचार मुख्यतः उनके प्रामाणिक ग्रन्थ 'लोक-नीति' में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। सभी धर्मों की समानता और उनके आन्तरिक मूल्य एक ही है। सभी धर्मों का संदेश भी एक ही है जो थोड़ा-बहुत अन्तर मिलता है या दिखलाई पड़ता है उसका कारण उन परिस्थितियों और उस काल में छिपा होता है, जिसमें कोई धर्म जन्म लेता है। राजाराममोहन राय ने धर्मनिरपेक्षता की हमारी इस दृढ़ मान्यता और परम्परा को पहली बार पूरी शक्ति के साथ तार्किक और तुलनात्मक आधार पर प्रस्तुत किया। धर्मों के शुभ-लक्षणों के समन्वय का यह विचार राजाराममोहन राय से प्रारम्भ होकर रामकृष्ण परंमहस, विवेकानन्द तथा कालान्तर में समय के साथ गाँधी एवं विनोबा जैसे चिन्तकों के चिन्तन में मुखरित हुआ।

विनोबा का चिन्तन किसी दैवी शक्ति से प्राप्त आदेश अथवा उनके अपने भावोद्रेक का परिणाम नहीं है बल्कि उनके अपने सुव्यवस्थित अध्ययन, मनन और चिन्तन का सुपरिणाम है।

आचार्य विनोबा धर्मनिपेक्ष (सेक्युलर) शब्द के अर्थ पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए 'लोकनीति' नामक अपने ग्रन्थ में वेन्दान्ती सरकार, लोकयात्रिक सरकार शीर्षक में लिखते हैं, "सेक्युलर शब्द का तर्जुमा अपनी भाषा में हम किस तरह करें। सेक्युलर का अर्थ अगर हम पंथातीत या अपांथिक करें तो भी ठीक भाव व्यक्त नहीं होता। 'पंथ' याने मार्ग, जिसे अंग्रेजी में 'पांथ' कहते हैं, तो 'पंथातीत' याने 'मार्ग-विहीन' सरकार हुई। किन्तु यह शब्द तो 'गुमराह' का पर्याय है। इसके लिए 'अपंथिक' शब्द भी नहीं चल सकता।"

आचार्य भावे वास्तविक व सच्चे अर्थों में अद्वैतवादी एवं धार्मिक व्यक्ति हैं जिनकी मान्यता है कि हिन्दू धर्म का सारतत्व सर्वधर्म समन्वय है। इसीलिए वे लिखते हैं, "हिन्दू धर्म का स्वरूप: आचार सहिष्णुता, विचार स्वातन्त्र्य, नीति धर्म के विषय में दृढ़ता।"

सभी धर्मों के समन्वय के विचार को पुष्टि प्रदान करने हेतु एक और स्थान पर वे लिखते हैं, "सभी धर्म सत्य के अंशावतार है।" 'सेक्युलर' शब्द को परिभाषित करते हुए उसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लोकनीति में लिखते हैं- 'सेक्युलर' शब्द अर्थ बताने के लिए मैंने 'वेदान्ती' शब्द चुन लिया। हमारी सरकार वैदिक नहीं है, बल्कि 'वेदान्ती' है। वेदान्त में किसी उपासना का निषेध नहीं है। जितनी उपासनाएँ हैं, सबको वह समान भाव से देखता हैः फिर भी उसने निज की कोई उपासना नहीं रखी। इसलिए अगर हम वेदान्ती सरकार कहें, तो तुछ अच्छा अर्थ प्रकट होता है।" एक प्रश्न के उत्तर में आचार्य विनोबा भावे 'सेक्युलर' शब्द की व्यापक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, "हमारी सरकार नास्तिक नहीं है। वह आध्यात्मिक मूल्यों को मानती है, आत्मा को

मानती है, उसकी समानता को मानती है। फिर भी वेदान्त जितनी गहराई में वह नहीं जा सकती। अब अगर हम एक शब्द सेक्युलर का तर्जुमा नहीं कर सकते और भाव तो प्रकट करना ही है तो, 'निष्पक्ष, न्यायनिष्ठ, व्यवहारिक 'सरकार कह सकते हैं। एक ही, किन्तु कठिन संस्कृत शब्द में कहना हो, तो 'लोकयांत्रिक' सरकार कह सकते हैं। याने वह सरकार, जो लोकयात्रा के बल पर जनता को चलाना है। शब्द कठिन अवश्य है, लेकिन उससे कठिनाई कुछ दूर हो सकती है।"

आचार्य विनोबा भावे के पंथ-निरपेक्षता अथवा वेदान्ती विचारों को उपर्युक्त सन्दर्भ में गहराई से समझने के लिए हमें उनके 'स्वधर्म भाव का अर्थ' जानना आवश्यक है, इसके आभाव में हम विनोबा के वेदान्ती (धर्मनिरपेक्षता) के विचारों की तरह तक नहीं पहुँच पाएँगें। स्वधर्म का अर्थ प्रकट करते हुए विनोबा कहते हैं, "धर्म का अर्थ जरा समझ लेना चाहिए। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि स्वधर्म के नाते हैं। इनके लिए 'धर्म' शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त स्वतन्त्र कर्तव्य। वैसा स्वधर्म याने अपना विशेष कर्तव्य, हर मनुष्य का अलग-अलग होता है। परन्तु मनुष्य समाज का अंग है। इसलिए हम कहते हैं कि हर मनुष्य अपनी सेवा समाज को समर्पित करें।"

विनोबा भावे सामान्यतः और सिद्धान्ततः गाँधी के धर्म सम्बन्धी विचारों को स्वीकार करते हैं, लेकिन विनोबा अपनी कतिपय मौलिक मान्यताओं और विश्वास के आधार पर गाँधी के विचारों को सुव्यवस्थित करते हुए इस विचार का पर्याप्त विस्तार भी करते हैं। एक बार उन्होंने कहा था, "सच्चे हिन्दू में मुसलमान है और सच्चे मुसलमान में हिन्दू। केवल हमारी पहचान सही हो। जो परधर्म का आदर नहीं कर सकता वह धर्म का भी आचरण नहीं करता। धर्म का रहस्य समझने के लिए न कुरान पढ़ने की जरूरत है, न पुरान। केवल एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'सारे धर्म' हरि के चरण है'।"

आचार्य विनोबा गाँधी से आगे जाकर 'व्यापक-प्रार्थना' और 'प्रार्थना सम्पूर्ण अनाग्रह' तक जाकर अपने पंथ-निरपेक्षिता सम्बन्धी विचार को एक बडे क्षितिज तक फैलाते है। इस सन्दर्भ में अपना दृष्टिकोण रखते हुए वे कहते हैं कि, "हिन्दुस्तान बड़ा व्यापक देश है। व्यापक देश में हम काम करना चाहते हैं। तो वह भी व्यापक होना चाहिए। हिन्दुस्तान में जितनी विविधता है, उतनी दुनिया में भी है। प्रान्त-भेद, जाति-भेद इस तरह की विविधताएँ वहाँ भी हैं। इसलिए हम हिन्दुस्तान का मसला हल करते हैं, तो दुनिया का मसला भी तय कर सकते हैं। इसीलिए हमारी प्रार्थना भी व्यापक होनी चाहिए। प्रार्थना में हम ऐसे शब्द चुने, जिनसे सबको अनुकूलता हो।हमारे मन में यह आग्रह न रहे कि जिस प्रकार हम प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार सब करें। इसलिए हम आग्रह नहीं करते।"

विनोबा अपने स्वधर्म समन्वय के विचारा के सन्दर्भ में सभी धर्मों की पृथक्-पृथक् प्रार्थना की आवश्यकता के स्थान पर प्रार्थना में सारतत्व को सम्मिलित करने के प्रबल पक्षधर हैं। अपने इसी पक्ष के समर्थन में वे लिखते हैं

कि, "प्रार्थना के आकार, प्रकार आदि के बारे में मुझे कुछ नहीं सुझाना है। जिस मुँह को जो शब्द खींचते हैं, वह उन्हीं शब्दों द्वारा प्रार्थना करें। मैं यह नहीं कहता कि हम लोगों ने जो आश्रम बनाये, उनमें प्रार्थना की एकता हो। इस बात को मैं अनिवार्य नहीं समझता। सब कुछ सहज भाव से हो। हमने यहाँ जो प्रार्थना चलाई है, उसमें ईशावास्य उपनिषद्, के लक्षण और नाममाला है। नाममाला में भगवान् के कुल नाम आ जाते हैं, जो सारी दुनिया के मानव-समूह में चलते हैं। सिर्फ भारत के ही नहीं, सारी दुनिया के नामों का उनमें समावेश है।"

विनोबा विचार के स्तर पर ही नहीं व्यवहार के स्तर पर भी अपनी मान्यताओं को कार्यरूप में परिणत कर मूर्त रूप देने के इच्छुक हैं, क्योंकि विनोबा स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के सिपाही रह चुके थे। प्रार्थना की व्यापकता के विषय में वे एक स्थान पर अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "25 दिसम्बर को हमने एक व्याख्यान दिया था। उसमें हमने कहा था कि कुछ मनुष्यों की आसक्ति का भाव चिपका हुआ है। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में ऐसी कोई बात नहीं, जो किसी भी धर्म वाले को मान्य न हो। अगर हम दूसरा श्लोक गीता से लेते, जैसे-चातुर्वण्यम्........तो हो सकता था कि ख्रिस्ती धर्म वाले कबूल न हो। अब आपका सरमन ऑन दि माऊन्ट (गिरि-प्रवचन) है। उसकी तालीम ऐसी है, जो सबको कबूल होगी। जब हम शरणार्थियों में मेव लोगों को काम करते थे, तो कुरान से कुछ भाग लेते थे। इसलिए आपकी बात मुझे कबूल है, लेकिन यह भी ख्याल होता है, कि प्रार्थना में कुछ हिस्सा हिन्दू धर्म से, कूछ इस्लाम से, कुछ ख्रिस्ती से, इस तरह खिचड़ी-सी प्रार्थना हो, यह हम नहीं मानते। वहाँ जो भी चले, वैसी वस्तु चुनी जाय-चाहे इस्लाम से हो चाहे हिन्दू धर्म से, चाहे कहीं से, जो सबको मान्य हो।"

विनोबा की पंथ-निरपेक्षता की अवधारणा उनकी अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक जमीन के कारण व्यापक एवं सार्वग्राह्य है। इस विशाल छत के नीचे समूची मानवता को एकत्रित कर संगठित किया जा सकता है। उनकी इस अवधारणा की व्यापकता के दर्शन हमें उनके इस कथन में होते हैं कि, "कुछ लोग यह मानते हैं कि हम मूलतः हिन्दू हैं। लेकिन हम यों कहते हैं कि 'हम भारतीय हैं'। हमारा यही दावा है, हम उस दावे को नहीं छोडते। भारतीय के नाते ही हम 'जय-जगत्' की पुकार कर रहे हैं।"

आचार्य विनोबा भावे अपने सर्वधर्म समभाव की पुष्टि के लिये अपने अनुभवजन्य प्रमाण को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि, "आत्म-सन्तोष के लिये जब मैं भिन्न-भिन्न धर्म पुस्तकें उलट रहा था, तब मैंने ईसाई, इस्लाम, जरथुस्ती यहूदी और हिन्दू धर्म की पुस्तकों को अपने सन्तोष-भर के लिए परिचय कर लिया था। मैं कह सकता हूँ कि इस अध्ययन के समय सभी धर्मों के प्रति मेरे मन में समभाव था।"

विनोबा अपने धर्मनिरपेक्षता के विचारों को तर्कसम्मत और विज्ञानसम्मत आधार प्रदान करते हुए कहते हैं कि, "धर्म के दो विभाग हैं, एक आध्यात्मिकता, दूसरा है, साम्प्रदायिकता। विज्ञान युग में धर्म की

आध्यात्मिकता टिकेगी, साम्प्रदायिकता खत्म होगी। धर्म की संकुचित साम्प्रदायिकता ही धर्म के सच्चे तत्व को फैलने नहीं देती। उसके दिन अब लद गये हैं।

आचार्य विनोबा भावे की मान्यता थी कि अग्रेंजी शब्द 'सेक्युलर' के अनुवाद के रूप में जो 'पंथनिरपेक्षता' या धर्मनिरपेक्षता शब्द व्यवहार में आये हैं, ये सही मायने में अपने अर्थ के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं। आचार्य विनोबा ने इसी कारण धर्मनिरपेक्ष सरकार के लिए 'वेदान्ती' निष्पक्ष न्यायनिष्ठ-व्यवहारिक' तथा संस्कृत भाषा के शब्द 'लोकयांत्रिक' के प्रति निष्ठा जाहिर की तथा उपर्युक्त शब्दों के लिए एक सौभ्य आग्रह प्रस्तुत किया। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि, "सेक्युलर शब्द के कारण बड़े-बड़े लोगों में गलतफहमी होती है। हमारी सरकार का सारा चिन्तन अंग्रेजी में होता है, फिर उसका तर्जुमा करना पड़ता है। किसी भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में एकदम ठीक नहीं होता। अगर हम अपनी भाषा में सोचते होते, तो वे सारी गलतफहमियाँ टल जाती जो आज हो रही हैं।"

विनोबा पंथनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षता के साथ भारतीय संस्कृति के अनुकूल 'सर्वधर्म' समभाव' जैसे शब्द का विकल्प प्रस्तुत करते हुए सतर्क लिखते हैं कि-हमारे व्रतों में सहिष्णुता के नाम से परिचित व्रत को यह नाम दिया गया। सहिष्णुता अंगे्रजी शब्द 'टालरेशन' का अनुवाद है। मुझे यह पसन्द न था, पर उस समय दूसरा शब्द नहीं था। काका साहब को भी यह नहीं रूचा। उन्होंने 'सर्वधर्म-आदर' शब्द सुझाया। मुझे वह भी नहीं जँचा। दूसरे धर्मों को सहने की भावना में उनमें न्यूनता मानी जाती है। आदर में कृपा का भाव आता है। अहिंसा हमें दूसरें धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसा की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। दूसरे धर्मों के प्रति समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता स्वीकार भी आ ही जाती है।"

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य विनोबा भावे के पंथनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार अतिव्यापक एवं गूढ़ है। आचार्य भावे के इन विचारों में भारत की समन्वय संस्कृति, नैतिकता और वैज्ञानिकता के अतिरिक्त आध्यात्मिकता का प्रबल पक्ष विद्यमान है।

2.5 मानवाधिकार पर विचार

आचार्य भावे 20 वीं शताब्दी के राजनीतिक चिन्तक थे। यद्यपि उन्होंने आधुनिक राजनीति विज्ञान के राजनीतिशास्त्री की भाँति नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो नहीं किया, किन्तु फिर भी राजनीति विज्ञान के मूलभूत प्रश्नों पर उनके विचार और संकल्पनाएँ हमें उनके चिन्तन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। आचार्य विनोबा के चिन्तन पर विभिन्न व्यक्तियों एवं तŸवों का व्यापक प्रभाव पड़ा था, जिसे हम अपने प्रथम अध्याय में विवेचित कर चुके हैं। इसी में हम पाते हैं कि विनोबा पर पिता की वैज्ञानिक दृष्टि और माता की आध्यात्मिकता का गहन प्रभाव था।

बापू के सम्पर्क में आने के पश्चात् विनोबा की आध्यात्मिक चेतना का विकास और विस्तार नये क्षितिजों तक जा पहुँचा। अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक निष्ठाओं के कारण विनोबा का चिन्तन जहाँ एक ओर गहन हुआ वहीं दूसरी तरफ मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित तŸवों को उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से स्पष्ट कर अभिनव स्वरूप प्रदान किया।

भारतीय चिन्तन में जहाँ तक मानवधिकारों तथा मानवतावाद का प्रश्न है इसकी एक सुदीर्घ तथा सुदृढ़ परम्परा रही है। वैदिक चिन्तन से प्रारम्भ हुई हमारी सांस्कृतिक यात्रा हमेशा मानवतावादी और समन्वयकारी रही है। अतीत में जब कभी भी हमारी इस धरोहर को बरगलाने अथवा क्षति पहुँचाने का प्रयास हुआ है, तब-तब गौतम, महावीर, शंकराचार्य, राममोहन राय, रामकृष्ण, विवेकानन्द तथा बापू एवं आचार्य विनोबा भावे जैसे सन्तों, विचारकों एवं महामानवों ने 'एकैव मानुषि जाति' की हमारी चेतना की मजबूत सम्बल प्रदान किया।

आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में मानवाधिकारों के प्रत्यक्ष अथवा अभिधारणा संकल्पना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य जाति के राजनीतिक विकास में सर्वप्रथम प्राकृतिक अधिकार के सिद्धान्त का बोलबाला रहा। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में यूरोप तथा अमेंरिका की जनता ने इस सिद्धान्त से गहरी प्रेरणा प्राप्त की। अमेंरिकी क्रान्ति तथा फ्रांस की क्रान्ति के परिणामस्वरूप 'स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व' का मूल्य जहाँ एक ओर आधुनिक लोकतन्त्रों का प्राण-तत्व बना वहीं मानवाधिकारों का मूल्य स्थापित होता चला गया।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की स्थापना और संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को जो विश्वव्यापी मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गयी वह अपने-आप में एक अनुपम उपलब्धि है। प्रश्न यह है कि क्या आचार्य विनोबा भावे के राजनीतिक चिन्तन में हमें मानवाधिकारों का पक्ष और विचार दिखलाई पड़ता है? तो इस प्रश्न का उत्तर हाँ में होगा। आचार्य भावे के राजनीतिक चिन्तन और दर्शन में मानवाधिकारों सम्बन्धी विचार उनकी आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। विनोबा केवल मानवाधिकार ही नहीं अपितु मानवतावाद के भी प्रबल प्रस्तोता हैं। मानवाधिकार के विषय में विनोबा अपनी कृति-सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र में 'सर्वोदय' शब्द का स्पष्टीकरण विषयक शीर्षक में गाँधीजी का सन्दर्भ देते हुए वे लिखते हैं। कि, ''गाँधीजी ने रस्किन की' अन्टु दिस लास्ट' नामक पुस्तक का अनुवाद किया है। उसका उन्होंने सर्वोदय नाम रखा था। उसमें बतलाया गया है कि ऊँच औरी नीच सबके मानवीय अधिकार समान हैं।''

उपर्युक्त स्पष्टीकरण में यद्यपि विनोबा ने गाँधीजी का सन्दर्भ दिया है, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि गाँधी के पश्चात् सर्वोदयी समाज की स्थापना और सर्वोदय के माध्यम से एक नये विश्व अभिरचना की संकल्पना विनोबा ने की। गाँधी के पश्चात् विनोबा ही सर्वोदय के अधिकारिक प्रवक्ता रहे है।

विनोबाजी आत्मज्ञान को आधार बनाकर मानव मात्र की समानता के आधार पर मानवाधिकारों की वकालत करते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि, ''मैं कौन हूँ' यह सवाल है। हमारे पूर्वजों ने कह दिया-'मैं ब्रह्म हूँ' इसको वेदान्त कहते हैं और मैं ब्रह्म हूँ तो मेरी कोशिश होनी चाहिए कि सबके साथ समान व्यवहार करूँ।''

आत्मज्ञान के ध्येय की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए विनोबा मानवधिकारों का पक्ष मजबूत करते हैं। इस विषय में उनका विचार हैं, ''हमने धर्म-साहित्य का जो कुछ अध्ययन किया है, उस पर से ही यही समझ पाए हैं कि अभी तक मानव समाज को आत्मज्ञान का छोटा-सा अंश ही हासिल हुआ है। यदि आत्मज्ञान हुआ-'मैं और वह एक है'तो यह व्यापक आत्मज्ञान होगा।''

विनोबा की विश्व सरकार की जो कल्पना है उस पर प्रकाश डालते हुए धर्माधिकारी जी 'अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया' में लिखते हैं, ''विश्व सरकार का मतलब क्या है? क्या एक ऐसा राज्य होगा, जो सारी दुनिया का राज्य होगा? बाकी सब राष्ट्र नहीं होंगे? विनोबा का चित्र है कि एक सिरे पर ग्राम होगा और दूसरे सिरे पर सारा जगत् से मतलब है मानवता। विश्व का नागरिक नहीं, विश्व का मानव।''

विश्व मानव की यह कल्पना विनोबा के मानवाधिकार सम्बन्धी विचारों का दर्पण है। स्त्रियों को मनुष्यत्व के आधार पर नागरिकत्व (मानवाधिकार) प्राप्त होना चाहिए इस विषय पर विनोबा की अवधारणाओं का खुलासा करते हुए दादा लिखते हैं, ''स्त्री-पुरूष से मनुष्यत्व की भूमिका व्यापक है। हम स्त्री का स्त्रीत्व भूल जाते हैं, पुरूषत्व भूल जाते हैं-दोनों के मनुष्यत्व के आधार पर नागरिकत्व की रचना होती है। स्त्री और पुरूष में एक सामान्य मनुष्यत्व के आधार पर दोनों के नागरिकत्व की रचना होती है। नागरिकत्व का आधार उनका सामान्य मनुष्यत्व है।'' सर्वोदय मूल्यों की सार्वत्रिकता की व्याख्या करते हुए दादा जिस सुन्दर ढंग से इसे प्रस्तुत करते हैं, वह अद्भुत है, ''सर्वोदय निरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है। सबके लिए समान रूप में जो नहीं है, वह अशाश्वत है। दुनिया-भर के सारे क्रान्तिकारी लोग इस बात में सहमत हैं, चाहे वे मूल्यों का नाम लें या न लें।''

भूदान आन्दोलन की पदयात्रा के दौरान एक आस्ट्रेलिया के नागरिक ने विनोबा से प्रश्न पूछा था, ''आपके भूदान आन्दोनल का हमारे लिए क्या संदेश है?'' विनोबाजी ने उत्तर देते हुए कहा था, ''तुम्हारे लिए मेरा एक ही संदेश है। तुम्हारे पास काफी जमीन पड़ी है। चीन और जापान में भीड़ हो रही है। उन लोगों को न्यौता दे दो कि 'हमारे देश में बहुत जमीन पड़ी है, आओं और हमारे यहाँ बस जाओं। भूदान का यही विश्व मानवता का संदेश है। भूदान विश्व मानव का सर्जन करना चाहता है।''

विनोबाजी की प्रसिद्ध पुस्तक लोकनीति की प्रस्तावना में धर्माधिकारीजी जो व्याख्या प्रस्तुत करते हैं उसमें भी हमें विनोबा के मानवाधिकार सम्बन्धी विचार दिखलाई पड़ते हैं। सारांश रूप में वे कहते हैं, ''लोकनीति

नागरिकों को एक-दूसरों की स्वतन्त्रता का अभिभावक मानती है तथा लोकनीति में हर नागरिक अपने कर्तव्य के प्रति और पड़ोसी के अधिकार के प्रति जाग्रत रहता है।"

आचार्य विनोबा के मानवाधिकार सम्बन्धी विचार और मानवतावाद में उनका अटूट विश्वास इस कथन में परिलक्षित होता है, "हम विश्व-मानव हैं, किसी देश विशेष के अभिमानी नहीं, किसी धर्म विशेष के आग्रही नहीं, किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष के बन्दी नहीं। विश्व के सद्विचार-उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा। सद्विचारों को आत्मसात् करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधों का निराकरण करना हमारा धर्म होगा। विशेषताओं में सामंजस्य करके विश्व वृत्ति का विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी।"

2.6 शान्ति सेना और विश्व शान्ति संबंधी विचार

आज समूची मानव सभ्यता एक असाधारण युग में जीवनयापन कर रही हैं। यह युग असाधारण रूप से हिंसा, उत्तेजनाओं और चुनौतियों से भरा है। यदि मानव जाति के लिए शान्ति प्रथम आवश्यकता रही है तो हिंसा आतंक और अन्तः युद्ध उसकी मूलभूत समस्या। विश्व में चहुँओर व्याप्त हिंसा, तनाव, शोषण, उत्पीड़न, विज्ञान के विनाशकारी स्वरूप और अशान्ति के बीच आज विश्व के समस्त दार्शनिक, विचारक वैज्ञानिक शिक्षाविद्, मानवता के प्रेमी और उपासक जीवन के निरपेक्ष गुणात्मक मूल्यों के प्रति चिंतित हैं। 20 वीं शताब्दी के राजनीतिक चिन्तक के रूप में विनोबा भावे भी मानवीय मूल्यों तथा विश्व शान्ति के प्रति गम्भीर तथा चिंतित थे। 'शान्ति सेना और विश्व शान्ति' के विचार के मूल में विनोबा अपने राजनीतिक तथा आध्यात्मिक गुरू तथा अपने उपास्य महात्मा गाँधी से प्रभावित थे। गाँधीजी के अवसान के पश्चात् विनोबा ने शान्ति सेना और विश्व शान्ति के विचार को मानव समाज के समक्ष अपनी पूर्ण क्षमताओं के साथ प्रस्तुत किया। विनोबा के शान्ति सेना और विश्व शान्ति सम्बन्धी विचार केवल चिन्तन, मनन के लिए ही नहीं अपितु व्यवहार की दृष्टि से भी निःसंदेह स्तुत्य है। विचार का मूल, "गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में ही अपने सत्याग्रही दल के लिए 'अहिंसक सेना' (नानवायलेण्ट आर्मी) शब्द इस्लेमाल किया था। लेकिन सत्याग्रही दल के अलावा अशान्ति शमन के खास काम के लिए कोई टूकड़ी बनाने का विचार भी उनके मन में चलता रहा। सन् 1937-38 में कांग्रेस ने जब पहली बार मन्त्रिमण्डल स्वीकार किया, तब साम्प्रदायिक दंगों का मुकाबला करने के लिए गाँधीजी ने शान्ति सेना का विचार रखा।"

भारतवर्ष का सारा जीवन-विकासक्रम समन्वय की पद्धति से हुआ है। देश की मुख्य शक्ति समन्वय ही है। इसी समन्वय का परिणाम यह रहा कि हमारी संस्कृति उत्तरोत्तर शक्ति समन्वय ही है। इसी समन्वय का परिणाम यह रहा कि हमारी संस्कृति उत्तरोत्तर विकसित और सम्पन्न होती गई। विनोबा इस समन्वय संस्कृति की ही विभूति है। विनोबा ने बापू के विचार-बीज को साकार और मूर्तमान स्वरूप प्रदान कर अपनी क्षमता और प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु वे विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि, "शान्ति सेना का विचार पुराना है। यह शब्द बापू

का है और कल्पना भी उन्हीं की है। इसके लिए उन्होंने कोशिश भी की थी। वे शान्ति सेना के पहले सेनापति और सैनिक भी थे। सेनापति के नाते उन्होंने 'करो या मरो' का हुक्म दिया और सैनिक के नाते उस पर अमल किया।"

गाँधी का विचार-बीज केरल राज्य में 23 अगस्त, 1957 को कण्णनूर जिले के ग्राम मंजेश्वरम् में शान्ति सेना की स्थापना के साथ साकार हो उठा। इस अवसर पर विनोबा ने अपने वक्तव्य में कहा था, "आज हमारी केरल यात्रा का अन्तिम दिन है। यहाँ अभी शान्ति सेना की स्थापना का गम्भीर प्रसंग बना है। यह शान्ति सेना क्या होगी, यह आप लोगों को सुनाया गया। आज यहाँ आठ लोगों ने शान्ति सेना की प्रतिज्ञा ली है। इसका अर्थ है कि शान्ति सैनिक अपना जीवन और प्राण जनसेवा में अर्पित करेंगे।"

विनोबा का शान्ति सेना का विचार और संकल्पना एक गम्भीर संकल्पना थी जिसे वे ठोस धरातल पर गम्भीरता पूर्वक फलीभूत करना चाहते थे। अपने भाषण में सम्बोधित करते हुए अन्त में उन्होंने अपनी प्रतिबद्धता दर्शाते हुए कहा था कि, "केरल की तरफ सारे भारत का सारी दुनिया का ध्यान रहेगाः क्योंकि यहाँ शान्ति सेना का आरम्भ हुआ है। यहाँ के कार्यकर्ताओं पर प्रभु ने बड़ी भारी जिम्मेदारी डाली है। उसे उन्होंने विश्वास के साथ उठाया है। हम नहीं चाहते कि आज ज्यादा लोग प्रतिज्ञा लें। हम केवल दिखावा नहीं, पक्की बुनियाद चाहते हैं। यह बुनियाद आज आठ लोगों ने डाली है। आगे दिन-ब-दिन कार्य बढ़ेगा।"

शान्ति सेना शब्द ऊपर से परस्पर विरोधाभासी एवं विपरीत प्रकृति के दिखलाई पड़ते हैं। एक प्रश्न के उत्तर में विनोबाजी ने स्पष्ट किया था कि, "इस प्रश्न के मूल में 'सेना' शब्द के अर्थ के बारे में अज्ञान है। 'सेना' शब्द वेद में आता है। 'असेन्यावः पणयोस वचांसि' हे कृपणों, तुम्हारा बोलना असैन्य है, सेनारहित है। यानी तुम्हारी वाणी में ताकत नहीं या बोलने में संगति नहीं है। 'सेना' शब्द का अर्थ मर-मिटने की तैयारी से इकट्ठे हुए लोग, जिनमें संगति होती है।"

दोनों शब्दों को एक साथ रखने का एक विशेष महत्व है, क्योंकि इसके पीछे एक सुन्दर विचार की वासना छिपी हुई है। इसे स्पष्ट करते हुए विनोबा का कहना है कि, "नाम शान्ति सेना ही अच्छा है। सेना में जो गुण होते हैं, उन्हें हम चाहते हैं और उसके दोषों के विरूद्ध हमारा-'शान्ति' शब्द होगा। इस तरह दोनों शब्द मिलकर समाज के सामने एक परिशुद्ध विचार आ जायेगा।"

गाँधीजी और स्वयं विनोबा की यह दृढ़ मान्यता और विश्वास था कि विचार कितना ही सुन्दर क्यों न हो जब तक उस विचार को व्यवहार अर्थात् आचरण में सुव्यवस्थित एवं संगठित रूप में ढाला जाय तब तक उसकी सार्थकता सदैव संदिग्ध रहती हैं। इसी मान्यता के आधार पर शान्ति सेना का संगठन तैयार किया गया। शान्ति सेना के संगठन पर प्रकाश डालते हुए श्री नारायण देसाई लिखते हैं कि, "गाँधीजी ने एक बार कहा था कि

संगठन ही अहिंसा की असली कसौटी में अहिंसा खरी उतर जाय, तो अहिंसा की एक ऐसी शक्ति प्रकट हो सकेगी, जिससे संगठित, हिंसा का मुकाबला हो सकेगा।''

''भारतीय शान्ति सेना के स्तर आज नीचे लिखे अनुसार हैं-

1. शान्ति केन्द्र।

2. जिला शान्ति सेना समिति का संयोजक।

3. प्रदेशीय शान्ति सेना समिति।

4. अखिल भारत शान्ति सेना मण्डल।

5. सेनापति।''

नारायण देसाई शान्ति केन्द्रों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की संक्षिप्त रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। प्रमुख आधार यह होंगे।-

''1. आन्दोलन।

2. प्रचार।

3. सफाई।

4. स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य।

5. विद्यार्थियों से सम्बद्ध कार्य।

6. झगड़ो को दूर करने सम्बन्धी कार्य।ण्

7. प्रौढ़-शिक्षा।

8. अध्ययन केन्द्रों की स्थापना।

9. शान्ति सेना सम्बन्धी विशेष कार्य।

(अ) अल्पमत के लोगों के घरों पर जाना।

(ब) सम्भावित तनाव के स्थानों पर जाना।

(स) उद्योग क्षेत्रों में जाना।

(द) रैली संगठित करना।

(इ) विशेष महत्व के दिनों को (पर्वों,त्यौहारों,उत्सवों आदि) मनाने का प्रबन्ध करना।"

शान्ति सेना का संगठन किन सिद्धान्तों पर खड़ा होगा, यह प्रश्न अत्यन्त महत्व का तथा विचारणीय हैं। विनोबा अपनी पुस्तक 'शान्ति सेना' में विस्तार से इन पर प्रकाश डालते हैं। संक्षिप्त स्वरूप में इन्हें इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है-

1. "अहिंसा यदि संगठन की शक्ति नहीं दिखा पाएगी तो वह टिकेगी नहीं।

2. अहिंसा की मर्यादा और उसकी खूबी यह है कि वह विचार लाद नहीं सकती, समझा सकती हैं।

3. अखिल भारतीय संगठन ऐसे लोगों का होगा, जिन्हें शान्ति की शक्ति पर अत्यन्त विश्वास होगा, जो उस दृष्टि से जीवन बिताते होंगें, प्रतिदिन आत्म-परीक्षण कर निरन्तर अपना शोधन करते होंगे और जिनमें चित्त शुद्धि की मात्रा अधिक होगी।

4. ऐसा मण्डल सलाह देगा, आज्ञा नहीं। जहाँ दंगा होगा वहाँ शान्ति सैनिकों को भेजेगा। जाँच का कार्य मातृवात्सल्य और करूणाभाव से होगा।

5. प्रान्तीय समितियाँ गाँव-गाँव में शान्ति सेना का कार्य करेगी तथा प्रत्येक घर में सर्वोदय विचार पहुँचाने का प्रयत्न करेगी।

6. प्रत्येक जिले में शान्ति सैनिकों की इकाई होगी।

7. शान्ति सेना के विचार के लिए लोक सम्मति के आध्यात्मिक आधार हेतु सर्वोदयपात्र होंगे।

8. पाँच हजार की जनसंख्या के पीछे एक शान्ति सैनिक होगा। यह शान्ति सैनिक का प्रेम-क्षेत्र तथा सेवा-क्षेत्र होगा।

9. शान्ति सैनिक आमतौर पर सेवा तथा अशान्ति के दोनों में अशान्ति शमन का कार्य करेंगे।

आचार्य विनोबा भावे की एक सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वे अपने सिद्धान्तों से जीवन भर टस-से-मस नहीं, हुए, इसी कारण वे आज एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति अडिग खडे दिखलाई पड़ते हैं। विनोबा ने एक परम आदर्श के रूप में मानवता के एक सिरे पर ग्राम को खड़ा कर दूसरे सिरे पर एक 'विश्व परिवार' की कल्पना का स्वप्न बुना। इस स्वप्न को साकार और मूर्त रूप देने हेतु शान्ति सेना उनके लिए ब्रह्मास्त्र की भाँति महत्वपूर्ण है।

विनोबा का शान्ति सेना यह ब्रह्मास्त्र किसी 'वाद' या पंथ का द्योतक न होकर विश्व कुटुम्ब की ओर बढ़ने का एक सुन्दर और सबल माध्यम है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए विनोबा का विचार है, "एक प्रेरणा काम कर रही है। लेकिन हम लोग केवल प्रेरणाशील नहीं, चिन्तनशील भी हैं। इसलिए कुछ लोगों को लगता है कि पीला साफा वगैरह पहनने से एक पंथ बन सकता है। मेरा ख्याल है कि पंथ का जितना बैरी मैं हूँ, उतना और कोई नहीं होगा। यद्यपि मैं निर्वैर हूँ, फिर भी पंथ का बैरी हूँ। लेकिन शान्ति सेना की जो रैली कल हुई, उसके दृश्य से बड़ा उत्साह मालूम हुआ। उसमें कोई पांथिक दर्शन नहीं हुआ।"

वाद और पंथ से परे इस विचार का समर्थन आचार्य राममूर्ति इन शब्दों में करते हैं, "ग्रामदान को त्रिवेणी की गंगा मानना चाहिए। ग्रामदान से गाँव का जन्म, खादी से उसका पोषण और शान्ति सेना से उसका रक्षण होता है। जब जन्म ही नहीं है, तो पोषण और रक्षण क्या होगा।"

विनोबा के ग्राम दान का विचार जैसे-जैसे बढ़ता गया और मूर्त स्वरूप ग्रहण करता गया वैसे-वैसे शान्ति सेना सम्बन्धी उनके विचारों में जहाँ एक ओर गति आयी वहीं उसका कैनवास विस्तृत होता चला गया। आचार्य विनोबा स्वयं इसे इन शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, "मुझे लगा कि ग्रामदान और ग्रामराज्य तो हो चुका है, अब ग्रामराज्य के रक्षण के लिए हनुमान चाहिए। जो ग्राम राज्य बन चुका, उसके रक्षण के लिए देश में शान्ति सेना बननी चाहिए।"

शान्ति सेना की आवश्यकता और उसके औचित्य पर प्रकाश डालते हुए सर्वोदयी विचारक नारायण देसाई कुछ प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा करते हैं-

1. "ऐतिहासिक आकांक्षा।

2. राष्ट्र की आवश्यकता।

3. राष्ट्रीय एकात्म के लिए।

4. गणतन्त्र की मूल्य रक्षा के लिए।

5. विधायक शक्ति बढ़ाने के लिए।"

शान्ति सेना का विचार विनोबा को गाँधी की देन था। गाँधी स्वयं जीवन भर सत्य शोधन, अहिंसा शान्ति एवं एक समतावादी विश्व मानव समाज के प्रति प्रयत्नशील होकर प्रयोग करते रहे। विश्व शान्ति के लिए गाँधीजी जिन उपायों को मानते थे, वे यों हैं-

1. व्यक्तिगत हृदय परिवर्तन और सत्याग्रह।

2. पंच-फैसले से निर्णय।

3. कानूनी उपायों से सन्धियाँ आदि।

4. लीग ऑफ नेशन्स या संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएँ।

5. विश्व में एक राज्य की कल्पना।

6. निःशास्त्रीकरण।

7. शान्ति दल की स्थापना।

विश्व शान्ति आज मानवीय सभ्यता की प्रथम आवश्यकता है और शान्ति सेना आस्था और विश्वास का प्रतीक है। शान्ति सेना विश्व शान्ति में सहायक है, ऐसा विनोबा का विश्वास है। शान्ति आज के युग की आवश्यकता हैं, इस पक्ष में दलील देते हुए विनोबा लिखते हैं, ‘‘आज सारी दुनिया की मूल समस्या शान्ति स्थापना की है। शायद ही किसी जमाने में दुनिया को आज जैसी शान्ति की भूख रही हो। जो देश कल तक हिंसा के विचार में डूबे हुए थे, वे आज हिंसा से मुक्ति पाना चाहते हैं।’’

आचूड़ गाँधीवादी होने के कारण विनोबा की आस्था और श्रद्धा का मूल केन्द्र अहिंसा और शान्ति रहा। शान्ति के प्रति विनोबा की आस्था समय के साथ बलवती होती गयी। 24.9.59 को अपनी भूदान यात्रा के दौरान पंजाब के पठानकोट नामक स्थान पर अपने विचार व्यक्त करते हुए विनोबा ने कहा था, ‘‘जिन देशों में खूनी क्रान्ति हुई है, वे भी आज शान्ति चाहते हैं। इसका कारण क्या है? अभी तक शस्त्रास्त्र मानव के हाथ में थे, लेकिन अब वे उसके हाथ में नहीं, मानव ही उनके हाथ में पहुँच गया है। कहीं अगर विश्व युद्ध की आग लग जाय, तो कोई भी उसका नियन्त्रण नहीं कर सकेगा।’’

विनोबा की वैचारिक अवधारणाएँ संकुचित और उग्र राष्ट्रवाद से परे ‘अन्तर्राष्ट्रवाद’ का प्रतिबिम्ब थी। विनोबा आजीवन अपनी वैचारिक निष्ठाओं को कार्यरूप में परिणत करने हेतु एक सच्चे ‘कर्मचोगी’ की भाँति जुटे रहे। ‘गीता’ का कर्मयोग उनके जीवन का पवित्र ध्येय था। आध्यात्मिक पुरूष होने के नाते ‘आत्मा’ के एकता और उसकी अमरता में उनका अटूट विश्वास था और यही कारण है कि मानव निर्मित दीवारें उनके लिए असह्य होकर पीड़ादायक थी।

20.10.1961 को भारत के पूर्वांचल के असम राज्य में नाजीरा नामक स्थान पर सम्बोधित करते हुए उन्होंने जनमानस से कहा था, ‘‘छोटे-छोटे अभिमान रहेंगे, तो एक प्रदेश दूसरे प्रदेश के साथ एक भाषा वाले दूसरी भाषा वाले के साथ, इसी तरह धर्म-पंथ वाले अलग-अलग देश आपस में लडेंगे। लड़ने में भयानक शस्त्रों का उपयोग होगा। कुल दुनिया का खात्मा होगा। इसलिए इसके आगे संकुचित प्रेम नहीं रहेगा, यह सोचकर हमने

'जय-जगत्' मन्त्र आपके सामने रखा। 'जय हिन्द' के पेट में विश्व प्रेम नहीं आयेगा। यह 'जय हिन्द' कहता है तो वह 'जय-पाकिस्तान' कहता है। पर 'जय-जगत्' के पेट में 'जय-हिन्द' आता ही हैं।''

'स्वाति' की एक बूँद की चाहत जैसे 'चाहत' पक्षी को होती है, वैसी ही तड़फ, वैसी ललक विनोबा को 'विश्व-शान्ति' के लिए है। विश्व में शान्ति विभिन्न साधनों की चर्चा करते हुए एक सुन्दर रूपक बाँधकर विनोबा 'विश्व-शान्ति' के प्रति अपनी वैचारिक निष्ठाओं को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं, ''शान्ति पानी के समान होती है। उसके दो उपयोग हो सकते हैं। फसल उगाने के लिए पानी की जरूरत होती है। पानी से मनुष्य की प्यास बुझती है। तो जिसको फसल उगाने के लिये पानी की जरूरत है, उसे एक प्रकार की जरूरत हैं। जिसे प्यास लगी है, उसे पानी की हमेशा के लिए जरूरत है। उसके पास पानी की स्वतन्त्र कीमत है। इसलिए दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक शान्ति की स्वतन्त्र प्यास मानव को न लगे।''

विनोबा के समान अन्य गाँधीवादी तथा सर्वोदयी विचारक विश्व शान्ति के समर्थक हैं। इन सर्वोदयी विचारकों के विचार के कारण विनोबा की शान्तिवादी अवधारणा की पुष्टि होती है। गाँधी और विनोबा के वैचारिक उत्तराधिकारी तथा स्वनामधन्य जयप्रकाश नारायण ने मैसूर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करते हुए कहा था, ''मानव बनने का मतलब है, मानव मात्र को भाई मानना, विश्व नागरिक बनना, हर मानव के जीवन, सुख और स्वातन्त्र्य की कामना करना। मानव बनने का अर्थ है अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करना, युद्ध का निषेध करना तथा उसके नैतिक विकल्प ढूढ़ँना।''

मैसूर विश्वविद्यालय के इसी दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करते हुए जयप्रकाश जी एक अपील करते हुए बुद्धिजीवियों से कहा था, ''क्या आप यह भी नहीं मानते कि युद्ध एक अभिशाप है और उसका उन्मूलन होना चाहिए? क्या आप यह स्वीकार करते कि युद्ध इस देश के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा और राष्ट्र के निमार्ण के लिए हमें स्थायी शान्ति की नितान्त आवश्यकता है? इसलिए हम गाँधीवादियों की तरह क्या आपका यह कर्तव्य नहीं है कि शान्ति की शोध करें और विश्व को युद्धहीनता की ओर ले जायें।''

जयप्रकाश बाबू की तरह ही एक अन्य वरिष्ठ सर्वोदयी चिन्तक काका कालेलकर भी विनोबा के 'शान्ति सेना' और विश्व-शान्ति' सम्बन्धी विचारों का समर्थन करते हैं। काका साहब ने तो 'शान्ति सेना और विश्व शान्ति' शीर्षक से एक अनुपम ग्रन्थ की रचना ही कर डाली। काका साहब अपनी इस कृति में विनोबा के विचारों का समर्थन करते हुए लिखते हैं, ''दुनिया में युद्ध छिड़ते ही जिस तरह सब प्रवृत्तियाँ (ऑन ए वार फुटिंग) युद्ध परायण बनाई जाती है, उसी तरह आज की दुनिया की हालत कहती है कि हमारी सब वृत्तियाँ शान्ति केन्द्रित होनी चाहिए। स्थानीय नेता इस प्रवृत्ति को हाथ में लें। सरकारें इसकी मदद करें और सब धर्म व राजनीतिक पक्ष अपने भेद भूलकर शान्ति-सेना को संगठित और सफल बनाने के लिए एक हृदय हो जायें।''

शान्ति सेना की व्यापकता, कार्य उद्देश्यों तथा उसकी महता पर प्रकाश डालते हुए काका साहब आगे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं कि, ‘‘शान्ति-सेना का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है, जागतिक है, ‘विश्व मानव की शुद्ध सेवा’ यही उसका उद्देश्य। आज के जमाने का सबसे बड़ा तकाजा भी यही है और सर्वोदय की सफलता भी इसी में है।’’

काका कालेलकर की एक स्पष्ट मान्यता है कि शान्ति और शान्ति-सेना का विचार भारतवर्ष में जितना स्थापित होगा उतनी ही मात्रा में विश्व-शान्ति का मार्ग प्रशस्त होगा, यदि भारतवर्ष असफल रहा तो उसे दुनिया का अनुसरण करना होगा और यह एक शुभ संकेत न होगा। काका साहब अपना आग्रह इन शब्दों में रखते हैं, ‘‘शान्ति सेना का सामर्थ्य हम प्रकट कर सके तो तब ही शस्त्र सेना पर अपनी प्रजा का और दुनिया का जो विश्वास है, वह शिथिल होगा। वैसा नहीं हुआ तो भारत दुनिया के रास्ते जाएगा और उसके सामने कोई मिशन नहीं रहेगा।’’

2.7 सारांश

आधुनिक भारत में विनोबा भावे ने महात्मा गाँधी के विचारों और कार्यों को ओर आगे बढाने के संबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आचार्य विनोबा भावे ने गाँधी के चिन्तन और दर्शन को केवल समझा ही नहीं अपितु उसे आत्मसात् भी किया। विनोबा केवल गाँधी के कथित विचारों का शास्त्रीय ढंग से विवेचन ही नहीं करते तथा उनके द्वारा बतलाए गये रचनात्मक कार्यक्रमों को ही नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि नई-नई परिस्थितियों में नये-नये विचारों और धारणाओं का भी विकास करते हैं। विनोबा भावे की राष्ट्रवाद की अवधारणा में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य सर्वोपरि थे। वे सर्वराष्ट्रीय अविरोध या भ्रातृभाव के समर्थक थे। उनके अनुसार वर्तमान में सर्वराष्ट्रीय अविरोधी ही नहीं, वरन् अनुकूलता और भ्रातृभाव किसी भी राष्ट्र-समूह के व्यवहार का मूलतत्व माना जाना चाहिए। विनोबा अपने चिन्तन में ‘विश्व मानव’ की कल्पना को साकार रूप देने के इच्छुक थे और यही कारण है कि विनोबा जब किसी से मिलते, जब किसी से विदा माँगते, किसी को पत्र लिखते तो उनका एक ही नाम रहता-जय-जगत्। आचार्य विनोबा भावे 20 वीं शताब्दी के चिन्तक थे। सर्वोदय लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध और कर्मठ व्यक्ति और महात्मा गाँधी के अनन्य शिष्य तथा उनके वैचारिक तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में सम्पूर्ण विश्व में विनोबा भावे की उल्लेखनीय पहचान है।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. विनोबा के राजनीतिक चिन्तन की विवेचना कीजिए।

2. विनोबा के पंथनिरपेक्षता संबंधी विचार को स्पष्ट कीजिए।

3. शांति के संबंध में विनोबा के विचार प्रस्तुत कीजिए।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेट्टिकल, थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय: रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002

2. अय्यर, आर. एन., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 1973

3. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

4. भावे, विनोबा, भूदान गंगा, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1957.

5. भावे, विनोबा, भूदान योजना: लैण्ड-गिफ्ट्स मिशन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957

6. मिश्रा, आर. एन., भूदान मूवमेंट इन इण्डिया: एन इकॉनोमिक असेसमेंट, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1972

7. ओम्मन, टी.के., करिश्मा, स्टेबिलिटी, एण्ड चेंज: एन एनालिसिस ऑफ भूदान-गाँधीयन मूवमेंट इन इण्डिया, थोमासन प्रेस, 1972

8. राम, सुरेश, विनोबा एण्ड हिज मिशन, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, काशी, 1962

इकाई – 3

विनोबा भावे और भूदान

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भूदान आन्दोलन और विनोबा भावे

3.3 ग्रामदान और विनोबा भावे

3.4 सारांश

3.5 अभ्यास प्रश्न

3.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे:-

- विनोबा भावे द्वारा प्रस्तुत भूदान संबंधी विचार और कार्यक्रम।
- ग्रामदान और विनोबा भावे।

3.1 प्रस्तावना

आज सम्पूर्ण मानव प्रजाति बीसवीं सदी के अन्त और इक्कीसवीं सदी का दहलीज पर खड़ी है। इस मानव जाति के समक्ष आज जो सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न है कि क्या समाज बुद्धि, नीर-क्षीर विवेक और अहिंसा पर आधारित व्यवस्थित जीवन की ओर लौट सकेगा?

आचार्य विनोबा भावे ने एक युग द्रष्टा की भाँति इस यक्ष प्रश्न को अपने जीवनकाल में ही भाँप लिया था। महात्मा गाँधी के मानस पुत्र, आध्यात्मिक और रचनात्मक उत्तराधिकारी के रूप में विनोबा अनवरत जीवनपर्यन्त चिन्तन और अहिंसक क्रान्ति में संलग्न रहे। स्वातंत्रयोत्तर भारत में आचार्य विनोबा भावे ने एक प्रबुद्ध नागरिक और गाँधीवादी चिन्तक के रूप में राजनीति को पवित्र करने, मनुष्य के पुरूषार्थ को स्थापित करने, मानव मात्र की आत्मा में प्रेम, श्रद्धा, त्याग और परस्पर विश्वास की सुरसरि प्रवाहित करने का अभिनव कार्य किया। विनाबा ने मानव की अस्मिता, गरिमा और प्रतिष्ठा का पुनस्र्थापना के लिए समाज विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर समाज, राष्ट्र और समूचे विश्व को एक नयी दिशा प्रदान की।

3.2 भूदान आन्दोलन और आचार्य विनोबा भावे

समग्रद्रष्टा आचार्य प्रवर विनोबा भावे ने दरिद्र नारायण के हितार्थ और रक्षार्थ "भूदान आन्दोलन" का सूत्रपात किया। इस हेतु आचार्य भावे ने लगभग सम्पूर्ण राष्ट्र की पदयात्रा कर जीवन भर भूमि का दान माँगा। विनोबाजी ने पूर्णतः अहिंसात्मक साधनों से आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने एवं सर्वोदय समाज की स्थापना करने के महान् उद्देश्य के लिए अपने-आपको समर्पित कर दिया।

गाँधीजी के अवसान के पश्चात् देश में जो निराशा निर्मित हुई थी उसे दूर करने का कार्य काफी सीमा तक आचार्य भावे ने किया। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों के विषय में भी निष्ठावान में 'निष्ठा कायम', लेकिन उत्साह गायब ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई।

आचार्य भावे ने पहले भूदान और उसके पश्चात् ग्रामदान, प्रखण्डदान से प्रारम्भ कर जीवनदान, श्रमदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान आदि का संदेश गांव-गांव और प्रत्येक घर में पहुँचाकर देश में और कार्यकर्ताओं मे एक नई चेतना का संचार किया। गाँधीजी की अन्तिम वसीयत में निर्धारित रूपरेखा के अनुसार सर्वोदय समाज का निर्माण करने का निर्णय लिया गया। "विनोबाजी की प्रेणा से मार्च, 1948 में सम्पूर्ण भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सेवाग्राम में सम्मेलन हुआ और सर्वोदय का कार्य सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए सर्वोदय समाज की स्थापना हुई।

'अखिल भारत सर्व सेवा-संघ' के निर्माण के पश्चात् सर्वोदय सम्मेलन संगठित करने के उद्देश्य से प्रथम सम्मेलन मार्च, 1941 में इन्दौर के निकट राऊ (म.प्र.) में हुआ, दूसरा ओगूल (उडीसा) में और तीसरा, अप्रेल, 1951 में शिवरामपल्ली (हैदराबाद) आन्ध्र प्रदेश में हुआ।

भूदान यज्ञ की तात्विक तथा वैचारिक पृष्ठभूमि

सांस्कृतिक दृष्टि से भारतवर्ष दुनिया का एक अद्भुत और अनुपम राष्ट्र है। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास कई दृष्टियों से अलौकिक है। भारत दुनिया का एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जहाँ संस्कृति का सरिता अतीत की गुफाओं

से निकलकर वर्तमान तक कलकल निनाद करती अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है। भारतीय संस्कृति ने जहाँ दुनिया भर की संस्कृतियों को प्रभावित किया वहीं स्वयं भारतीय संस्कृति ने अपने उदार, उदात्त तथा समन्वय के चरित्र का परिचय देते हुए दुनिया के मानवीय मूल्यों को खुले हृदय से न केवल स्वीकार किया अपितु आत्मसात भी कर लिया।

आचार्य विनोबा भावे इस विषय में लिखते हैं, ''व्यावहारिक समानता का विचार इस्लाम के साथ आया। हिन्दुस्तान को इस्लाम की यह बड़ी देन है। इस तरह पहले ही जो संस्कृति द्रविड और आर्यों की अच्छाइयों के मिश्रण से बनी थी उसमें यह नया रसायन दाखिल हुआ।''

आचार्य विनोबा भावे खुले हृदय से स्वीकार करते हैं कि भारतीय संस्कृति पर इस्लाम के अतिरिक्त पाश्चात्य संस्कृति का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। पश्चिमी प्रभावों के फलस्वरूप हमने नई अवधारणाओं को आत्मसात करने में संकोच नहीं किया। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए विनोबाजी कहते हैं कि, ''जैसे-जैसे अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन, रशियन आदि के विचारों से परिचय होने लगा, वैसे-वैसे वहाँ के नव-विचारों का सम्बन्ध भी बढ़ने लगा। आज हम जहाँ जाते हैं, वहाँ सोशलिज़्म काम्युनिज़्म आदि पर विचार सुनते है। ये सारे विचार पश्चिम से आये हैं। अब इन सब विचारों में झगड़ा शुरू हुआ है। उसमें से कचरा-कचरा निकल जावेगा। हमारी संस्कृति कुछ खोयेगी नहीं, बल्कि कुछ पायेगी ही।

भारतीय संस्कृति के समन्वित विकास ने भारतीय संस्कृति को नई मर्यादाओं के साथ रचा। आधुनिक विचारों के प्रभावों के फलस्वरूप भारतीयों का दृष्टिकोण, व्यापक हुआ। विनोबा स्वीकारते हैं कि कम्युनिस्टों के प्रश्न पर वे लगातार चिन्तन-मनन करते रहे हैं। इस विषय पर विनोबा का कहना है - ''गाँधीजी के जाने के बाद जब में सोचता रहा कि अब मुझे क्या करना चाहिये तो मैं निर्वासितों के काम में लग गया। परन्तु यहाँ के कम्युनिस्टों के प्रश्न के बारे में मैं बराबर सोचता रहा।'' इस विषय में वे आगे लिखते हैं कि- ''कम्युनिस्टों का तरीका चाहे गलत क्यों न हो, उनके जीवन में कुछ विचार का उदय हुआ हैं और जहाँ विचार का उदय होता है, वहाँ सिर्फ पुलिस से प्रतिकार नहीं हो सकता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विनोबा की मान्यता थी कि विचार का प्रतिकार करने का श्रेष्ठ तरीका विचार ही हो सकता है और इस प्रकार विनोबा के अवचेतन में आर्थिक-सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए 'भूदान-यज्ञ' जैसे क्रान्तिकारी आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार होती चली गई। विचार शोधन की प्रक्रिया में विनोबा का ध्यान भारतीय संस्कृति के 'चरैवेति' की तरफ गया और फिर समूचा चित्र ही बदल गया। विचार शोधन के प्रमुख साधन 'चरैवेति' की महता और गुणों के विषय में विनोबा ने अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए कहा, ''शंकराचार्य, महावीर, बुद्ध, कबीर, चैतन्य, नामदेव जैसे लोग हिन्दुस्तान में घूमे और पैदल ही घूमे। वे चाहते तो घोड़े पर भी घूम सकते थे, परन्तु उन्होंने त्वरित साधन का सहारा नहीं लियाः क्योंकि वे विचार का

शोधन करना चाहते थे और विचार शोधन के लिए सबसे उत्तम साधन पैदल घूमना ही है। इस जमाने में वह साधन एकदम सूझता नहीं, परन्तु शान्तिपूर्वक विचार करें तो सूझेगा कि पैदल चले बिना चारा नहीं।

विनोबा जी ने तीसरे सर्वोदय सम्मेलन में भाग लेने के लिए सेवाग्राम से शिवरामप्ल्ली (आन्ध्र प्रदेश) तक 300 मील की दूरी पैदल ही तय करने का अद्वितीय निर्णय लिया। 7 मार्च, 1957 को सेवाग्राम से सर्वोदय यात्रा का शुभारम्भ हुआ तथा ठीक 30 दिन पश्चात् विनोबा सम्मेलन स्थल शिवरामपल्ली पर यथा समय पहुँच गये। पदयात्रा के महत्व को बताते विनोबा ने कहा कि, "पदयात्रा से देश का सच्चा दर्शन होता है। जनता के साथ सम्पर्क होता है और सर्वोदय का सन्देश घर-घर पहुँचाया जा सकता है।" प्रतिदिन दस-बारह मील पैदल चलने के बाद गांव-गांव में लोगों को सर्वोदय का सन्देश सुनाते हुए ठीक 30 वें दिन सम्मेलन स्थल (शिवरामपल्ली) पर पहुँचें। विनोबा ने सर्वोदय सम्मेलन में इस बात को उद्घाटित किया कि गांव की हालत की जो परिकल्पना मेरे मन में थी, उससे भी बुरी हालत आज भारत के गांव की है। जरूरत है गाँवों की दशा सुधारने की और इसके लिए लाखों कर्तव्यनिष्ठ लोक-सेवकों की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सेवक ऐसे हों जो "अन्तःशुद्धि, बहिर्शुद्धि, श्रमःशान्ति समर्पणम्" के सद्धिान्त के हों।

आचार्य भावे ने 15 अप्रेल, 1951 रामनवी को तेलंगाना की पदयात्रा प्रारम्भ कर दी। उनका पहला पड़ाव नरसिंही गांव हुआ। 18 अप्रेल को वे पोचमपल्ली पहुँचे।

भूदान का संकल्प

3000 के लगभग जनसंख्या वाले इस छोटे से गांव में प्रातः घूमते हुए विनोबा अनुसूचित जाति के क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ वे एक झोपड़ी के भीतर गये और उन्होंने एक नवजात शिशु को गोद में लेकर स्नेहाशीष प्रदान किया। स्नेह और प्रेम के इस कार्य से बहुत से अनुसूचित जाति के लोग विनाबा के प्रति सहज ही आकर्षित हो गये और उन्होंने अपने दारूण दुःखों की कहानी सुनाई। विनोबा ने गम्भीरता और तत्परता से उनकी समस्याओं को सुना और दोपहर पश्चात् मिलने का आग्रह किया।

हरिजन भाइयों ने विनोबा से आग्रह किया कि यदि हमें जोतने के लिए कुछ भूमि मिल जाय तो हम लोग उस पर खेती कर अपना निर्वाह कर लेंगे। विनोबा ने सायं सभा में उनसे पूछा कि वे कितनी जमीन चाहते हैं। हरिजन भाइयों ने आपसी विचार-विमर्श के पश्चात् कहा कि अस्सी एकड़ भूमि पर्याप्त होगी। तब विनोबा ने सभा से प्रश्न किया, "भाइयों क्या आप में से ऐसे कोई हैं जो अपने भाइयों को कुछ भूमि देंगे, ताकि वे भूखे न मर जायँ।इनको केवल अस्सी एकड़ भूमि की आवश्यकता है। विनोबा क इस मांग को एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने सहज तथा सहर्ष भाव से स्वीकार कर लिया और बड़ी विनम्रता से कहा, "मैं एक सी एकड़ भूमि दान में देता हूँ।"

महज प्रेम और विश्वास के तकाजे पर इतनी जमीन का मिल जाना एक आश्चर्य की बात थी। विनोबा ने यह जमीन दान स्वरूप स्वीकार कर हरिजन भाइयों को बांट दी। यहीं से पहली बार 18 अप्रेल,1951 को ‘भूदान-गंगा’ प्रवाहित हो गयी।

वामनावतार का जन्म

भूदान यज्ञ के सूत्रपात पर विनोबा टिप्पणी करते हुए कहते हैं, “कम्युनिस्टों के काम के पीछे जो विचार है उसका आधारभूत अंश हमें ग्रहण करना होगा, उस पर अमल करना होगा। यह अमल कैसे किया जाय, इस बारे में मैं सोचता था तो मुझे कुछ सूझ गया। ब्राह्मण मैं था ही, वामनावतार मैंने ले लिया और भूमिदान माँगना शुरू कर दिया।”

आचार्य विनोबा भावे के ‘भूदान-यज्ञ’ में कतिपय लोगों को यह आपत्ति रही है कि इसमें ‘दान’ शब्द दया, करूणा का भाव प्रदर्शित करता है जो कि सम्पत्ति वाले गरीबों के प्रति रखते हैं। इससे इस भावना पर भी आघात पड़ता है कि यह भूमिहीनों के अधिकार का दावा है।

आचार्य विनोबा भावे ने अपने ‘भूदान’ आन्दोलन में ‘दान’ शब्द का प्रयोग आदि शंकराचार्य की भावना व अर्थ के सन्दर्भ में किया है, ‘दानं संविभागः।’ अर्थात् किसी भी वस्तु का सम्यक् अथवा संगत वितरण। भूदान आन्दोलन के सन्दर्भ में ‘दान’ शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस पर प्रकाश डालते हुए विनोबाजी कहते हैं, “मैं भिक्षास्वरूप दान नहीं चाहता। दान शब्द का अर्थ लोगों ने विकृत कर दिया है, जिस प्रकार धर्म, विज्ञान, त्याग,नीति इत्यादि शब्दों के अर्थ विकृत किये गयें हैं।”

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से स्पष्ट है कि ‘भूदान-आन्दोलन’ में दान शब्द अपने प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त न होकर एक विशिष्ट अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ हैं। आचार्य विनोबा भावे इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहते हैं, “भूदान-यज्ञ का ‘दान’ शब्द किसी-किसी व्यक्ति को खटकता है। कुछ बन्धुओं ने एक नवीन विवाह विधि की रचना की है। जब वे इस विधि की रचना करने बैठे, तब’ कन्यादान’ शब्द उन्हें खटका। गाय-भैंस की तरह कन्या का दान कैसे किया गया? मूल-विवाह विधि में ‘कन्यादान’ शब्द है ही नहीं। वहाँ ‘सप्रदान’ अर्थबोधक शब्द है। उसका अर्थ मात्र ‘दिया गया’ है। इसको दान दिया गया, उसका दान दिया गया-ऐसा अर्थ नहीं है। दिया गया केवल एक इतना कहने से कोई गौणत्व प्रकट नहीं होता। इसलिए इस नई विवाह-विधि में ‘कन्या-सम्प्रदान’ शब्द का व्यवहार किया गया है। जहाँ सम्प्रदान है वहाँ ‘अपादान’ आ ही जाता है।”

आचार्य भावे इस पर आगे प्रकाश डालते हुए कहते हैं, “भूदान-यज्ञ में इसी प्रकार की कल्पना है। जमीन के मालिक स्वामी नहीं हैं। वे कन्या के पिता की ही भाँति प्रतिपालक मात्र हैं। सुपात्र देखकर उन्हें यह जमीन सम्प्रदान करनी होगी। ऐसे सुपात्रों की खोज भी करनी होगी। इस मामले में स्वामित्व की कल्पना कहीं नहीं है।”

आर्चाय विनोबा ने आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन का जो क्रान्तिकारी कार्यक्रम अपने हाथ में लिया उसके विषय में श्री चारूचन्द्र भण्डारी की मान्यता है कि जिस प्रकार 'यज्ञ' से क्षयपूर्ति, शूद्धीकरण और संगठन, ये तीन उद्देश्य पूरे होते हैं, उसी प्रकार 'भूदान-यज्ञ' का में भी इन तीनों उद्देश्य की पूर्ति होती है। वे विस्तार से प्रकाश डालते हुए स्पष्ट करते हैं,

"(1) क्षयपूर्ति- विकट भूमि समस्या और कुटीर उद्योगों का विनाश होने के कारण गरीबी,बेकारी, अशिक्षा आदि उत्पन्न होने से समाज की जो क्षति हूई है, उसकी पूर्ति भूदान-यज्ञ में भूमि के समतापूर्ण वितरण और ग्रामीणकरण, कुटीर उद्योगों की प्रतिष्ठा और बुनियादी शिक्षा आदि की व्यवस्था से हो रही हैं। केवल कुछ लोगों के हाथ में रहने के कारण भूमि का सद्व्यवहार न होने तथा तथा भूमि के खराब एवं अव्यहृत स्थिति में पड़े रहने के कारण सृष्टि की जो क्षति हुई है, वह भी भूदान-यज्ञ के द्वारा पूरी की जा रही है।

(2) शुद्धीकरण- भूदान-यज्ञ दाताओं के हृदय में त्याग और प्रेम-भाव का आविर्भाव कर उनकी चित्तशुद्धि करता है। गरीब लोग पर-निर्भरशीलता छोड़कर स्वावलम्बी बन रहे हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना की समाप्ति के द्वारा सम्पूर्ण लोकमानस शुद्ध हो रहा है।

(3) संगठन- भूदान-यज्ञ की चरम परिणति साम्ययोगी समाज की स्थापना के रूप में होगी। वह माहनतम् संगठन होगा।"

इस प्रकार भूदान-यज्ञ के माध्यम से महान् यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा है।

आधुनिक समय में सामाजिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करने के लिए कम्युनिष्टों द्वारा वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को अपनाकर हिंसा का मार्ग आत्मसात किया हैं। वहीं लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों ने व्यक्ति की आर्थिक-सामाजिक समानता की स्थापना के लिए संवैधानिक मार्ग को अपनाकर विधि निर्माण के द्वारा यह कार्य किया। स्वातंत्रयोत्तर भारत में संवैधानिक मार्ग को अपनाकर विधि निर्माण के द्वारा यह कार्य किया। स्वातंत्रयोत्तर भारत में संवैधानिक मार्ग के अतिरिक्त आचार्य विनोबा भावे ने प्रेम, अहिंसा के माध्यम से आर्थिक-सामाजिक समता स्थापित करने का बीड़ा उठाया और समूची दुनिया के सामने एक सुन्दर मिसाल प्रस्तुत की। विनोबा का मार्ग पूर्णतः अहिंसक था। विनोबा इस विषय में कहते हैं कि, "यह भूदान एक अहिंसा का प्रयोग हैं, जीवन परिवर्तन का प्रयोग है मैं तो निमित्त मात्र हूँ। आप भी निमित्त मात्र हैं। परमेश्वर आप लोगों से और मुझसे काम कराना चाहता है। वह काल-पुरूष की, परमेश्वर की प्रेरणा है। इसलिए मैं माँग रहा हूँ, तब आप लोग दीजिए और दिल खोलकर दीजिए। जहाँ लोग एक फुट जमीन के लिए झगड़ते हैं, वहाँ मेरे कहने से सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीन देने के लिए तैयार हो जाते हैं। तो आप समझिये कि यह परमेश्वर की प्रेरणा है।

आचार्य विनोबा भावे के भूदान-आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए विमला बहिन लिखती हैं, "स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भूदान-यज्ञ आन्दोलन इस देश में गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिए 'अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर अधिष्ठित एक सुन्दर एवं जनकल्याणकारी विचार है। आज हमारे देश के सामने जो मूलभूत समस्याएँ खड़ी हैं, सुलझाने के लिए भारत की इस धरती में से निकला हुआ एक माकूल जवाब है।"

भूदान आन्दोलन पूर्णतः एक नैतिक आन्दोलन है जो विचार परिवर्तन तथा हृदय परिवर्तन की शक्ति में विश्वास रखता है। आचार्य भावे का पूर्ण विश्वास था कि मानव की अच्छाइयों को जाग्रत किया जा सकता है और एक सम्य सर्वोदयी समाज की संरचना को आकार भी दिया जा सकता है। विनोबाजी का आग्रह था कि विचार परिवर्तन के माध्यम से जो अहिंसक क्रान्ति जन्म लेगी वह क्षणभंगुर नहीं बल्कि स्थायी होकर एक कालजयी समाज व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करेगी। विनोबा ने इस कालजयी समाज की स्थापना का शस्त्र भूदान-यज्ञ आन्दोलन को बनाया। विनोबा ने इस कालजयी समाज की स्थापना का शस्त्र भूदान-यज्ञ आन्दोलन को बनाया। विनोबा ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वस्तुस्थिति से सहमत होने के पश्चात् ही इस आन्दोलन में सहभागी बनें। वे कहते हैं कि हमारे तीन सूत्र हैं,

(1) "हमारी विचार समझने पर अगर कोई दान नहीं देता है, तो उससे हम दुःखी नहीं होते हैंः क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज नहीं देता है, वह कल देने वाला है। विचार बीज उगे बगैर नहीं रहता।

(2) हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है तो उससे हमें आनन्द होता हैः क्योंकि उससे सब जगह सद्भावना पैदा होती है।

(3) हमारा विचार समझे बगैर किसी दबाव के कारण अगर कोई देगा तो उससे हमें दुःख होगा हमें किसी तरह जमीन बटोरना नहीं है, बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृत्ति निर्माण करनी है।"

भूदान - यज्ञ की आवश्यकता एवं औचित्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने लोकतान्त्रिक समाजवाद का मार्ग अपनाया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से पं. नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया। इस"मिश्रित अर्थव्यवस्था" को आकार प्रदान करने के लिए आवश्यक था कि भारत औद्योगीकरण के लिए भी प्रयास करें, किन्तु जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रश्न है भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। आज जब हम बीसवीं सदी के अन्तिम सोपान पर खड़े हैं, तब भी भारत की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर करती है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राणतत्व रहा है और आज भी है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भूमि-सुधार के महत्व को खुले हृदय से स्वीकार किया गया। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन तथा 'सीलिंग' जैसे कानूनों के निर्माण के पश्चात् भी व्यवहारिक सफलताएँ भू-सुधार के क्षेत्र में प्राप्त

नहीं हुई। वास्तविक प्रगति न होने के कारण भूमिहीन कृषि मजदूर की वास्तविक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। प्रयोगशील चिन्तक विनोबा का ध्यान इस ओर गया और यही कारण है कि विनोबा ने कृषि प्रधान राष्ट्र में सामाजिक समता स्थापित करने के लिए, विश्व शान्ति के लिए एक अहिंसक अस्त्र खोज निकाला और यही अस्त्र'भूदान-यज्ञ आन्दोलन' के रूप में सामने आया। विनोभा के भूदान-आन्दोलन के पक्ष तथा उसके औचित्य को निरूपित करते हुए प्रसिद्ध सर्वोदयी तत्ववेता दादा धर्माधिकारी भूमि-दान किस लिए है? के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-

(1)''कृषि प्रधान देश में समाज परिवर्तन का आरम्भ जमीन की व्यवस्था के परिवर्तन से होता है।

(2) आज जमाने का जैसा रूख है, उससे यह साफ है कि दुनिया भर में आगे की अर्थ रचना अन्न प्रधान और कृषि प्रधान होने वाली है।

(3) जमीन केवल अन्न उत्पादन का साधन नहीं है, जमीन वसुन्धरा भी है। सारी खदानें जमीन में हैं, कच्चा माल और ईंधन आदि चीजें जमीन से ही मिलती हैं। इसलिए क्रान्ति का आरम्भ जमीन से होगा।

दादा धर्माधिकारी आचार्य विनोबा भावे के भूदान-आन्दोलन के दर्शन पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि हम एक से मालकियत लेकर दूसरे को मालकियत देना नहीं चाहते अपितु मालकियत की बुनियादी को और उत्पादक की भूमिका को बदल देना चाहते हैं। इसके लिए पहला कदम यह है कि, ''हम उत्पादन के साधन उत्पादक के कब्जे में दे देना चाहते हैं। जोतने वाले के कब्जे में जमीन हो, गैर-जोतने न हो। उत्पादक की मालकियत की स्थापना हो, अनुत्पादक की मालकियत का निर्धारण हो और अन्त में मालकियत का ही निराकरण हो। उत्पादन के साधन पर मालकियत किसी की न रहे।''

आचार्य विनोबा भावे की सुदृढ़ मान्यता था कि ईश्वर ने जब सभी मनुष्यों के लिए अपने पंचभूत सरलता से समान रूप में उपलब्ध करवाये है तो किसी भी व्यक्ति को भूमिहीन रखना प्रकृति के नियमों का न केवल उल्लंघन है अपितु अन्याय भी। इस अन्याय की समाप्ति का एक ही सुन्दर हल यह है कि भूमि का असमान वितरण समाप्त किया जाय। अहिंसक और शान्तिपूर्ण मार्ग से भूमि का समान वितरण किया जाकर सर्वोदय समाज की रचना की जाय। इस प्रकार भूदान आन्दोलन सर्वोदय समाज की स्थापना का एक रचनात्मक हथियार बन जाता है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अपनी अनुपम भाषा में कहा है, ''सूर्य घर-घर जा पहुँचता है। उसकी जितनी रश्मि एक राजा पाता है, उतनी ही एक मेहतर भी। भगवान् कभी भी अपनी चीज का असमान रूप से वितरण नहीं करता। यदि ईश्वर ने हवा, जल, प्रकाश और गगन के वितरण में भेदभाव नहीं किया है, तो यह कैसे सम्भव है कि उसने भूमि का सब लोगों में बराबर-बराबर विरतण न कर केवल कुछ लोगों के हाथ में उसे छोड़ दिया।

भूदान-आन्दोलन की औचित्यपूर्णता को सिद्ध करने के सन्दर्भ में विनोबा ने तनिकेला नामक गांव में कहा था, "प्राचीन काल में, जब भी देश में अशान्ति होती थी, तो हमारे पूर्वज यज्ञ किया करते थे। मैं भी एक यज्ञ करना चाहता हूँ, इसलिए मैंने इस भूदान को आरम्भ किया है। मैंने बहुत से लोगों को भूमि का दान करने के लिए कहा है। इस यज्ञ में प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेना चाहिए, क्योकि यह जनता के उत्थान के लिए है।"

आचार्य विनोबा भावे ने अकबरपुर में 28.4.52 को एक सभा को सम्बोधित करते हुए समूचे देश के लिए एक अपील जारी की। अपने 'भूदान-आन्दोलन' को 'प्रजासूय-यज्ञ' की उपमा देते हुए आपने कहा कि जिस प्रकार राजसूय यज्ञ से राजा का कल्याण होता है उसी प्रकार भूदान-आन्दोलन एक प्रजासूय यज्ञ है, जिससे प्रजा के कल्याण का आविर्भाव होगा।" अपनी अपील में विनोबाजी ने कहा था, "मेरे भारतवासी बन्धुजनों,आपसे मेंरी प्रर्थना है कि आप इस प्रजासूय यज्ञ में अपना भाग दें और इस काम को सफल करके आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा की प्रतिष्ठा करें। मेरे इस काम के लिए तिहरा दावा है। एक तो यह कि यह भारतीय सभ्यता के अनुकूल है, दूसरा इसमें आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति का बीज है और तीसरा इससे दुनिया में शान्ति स्थापना के लिए मदद मिल सकती है।"

आचार्य विनोबा में संकल्पशक्ति और तत्वनिष्ठा अद्वितीय थी। उनका विश्वास और मान्यता थी कि सर्वोदय की सफलता के लिए इस रचनात्मक माध्यम को पूर्णतः सिद्ध करना आवश्यक है। भूदान जैसे कार्यक्रम की सफलता राज्य सत्ताके स्थान पर जनशक्ति पर निर्भर करती है। उन्होंने कार्यकर्ताओं से आह्वान करते हुए कहा था, "भूदान-यज्ञ में हम साक्षात् नारायण की सेवा करते हैं। काल्पनिक सेवा या मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं। बल्कि,जनता में हम नारायण को देखते हैं और इसमें हम साक्षात् नारायण की ही सेवा करते हैं। इसलिए जो भूदान के कार्यकर्ता हैं, वे यह दावा कर सकते हैं कि हमने भक्ति की राह ली हैं।

अपनी संकल्पशक्ति और तत्वनिष्ठा के कारण ही विनोबा ने भूमि समस्या के निराकरण के लिए भूमिहीनों हेतु पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प रखा था। भूदान आन्दोलन का विचार इतना व्यापक और विशाल है कि इससे विनोबा अन्तर्राष्ट्रीय भेदों को समाप्त करना चाहते थे, उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक देश का जो देशाभिमान है वह भी समय के साथ तिरोहित हो जाएगा। जो वस्तु रहेगी वह होगी-विश्व-प्रेम।

विनोबा की उपर्युक्त मान्यता के संदर्भ में दादा धर्माधिकारी कहते हैं, "भूदान-यज्ञ आन्दोलन में पंथ नहीं है, ग्रन्थ नहीं है, सम्प्रदाय भी नहीं है। भूदान यज्ञ मानव मात्र के लिए निरूपाधिक विश्व कुटुम्ब वृत्ति की दिशा का एक दिव्य मन्त्र है। यह 'दिग्विजय' सबको विजयी करने वाला है।"

भूदान आन्दोलन में जो भूमि प्राप्त की जाती थी, वह वहीं के स्थानीय भूमिहीनों को ग्रामसभा के माध्यम से सर्वसम्मति से वितरित कर दी जाती थी। वितरित की गयी भूमि के प्रमाण-पत्र में निम्नलिखित शर्तें होती थी-

(1) "प्रदत्त भूमि में आदाता को निज की खेती करना अनिवार्य होगा। दूसरे किसी को जोतने के लिए देने, बेचने गिरवी रखने, दान करने, किसी अन्य तरह देने या स्वत्व निवृत्ति का अधिकार न होगा।

(2) प्रदत्त भूमि का जो लगान नियत होगा आदाता को प्रत्येक वर्ष समय पर उसे अदा करना होगा।

(3) प्रदत्त भूमि अगर पहले से जोती हुई है, तो उसमें खेती तुरत करनी होगी। यदि अगले दो साल तक परती रखी जाएगी, तो समिति को अधिकार होगा कि उस जमीन को दूसरे भूमिहीन किसान को दे दे।

(4) प्रदत्त भूमि अगर परती जमीन है, तो उसे तीन साल के भीतर आबाद करना अनिवार्य होगा।

प्रमाण-पत्र में प्रदत्त भूमि का विवरण देकर लिखा रहता है कि, "उपर्युक्त निर्णय गांव के निवासियों की सभी में तथा उनके सहयोग से हुआ है।" प्रमाण-पत्र पर विरण सभा के सभापति और प्रान्तीय भूदान मण्डल के अधिकारी के हस्ताक्षर भी रहते थे।

आचार्य विनाबा ने अपनी भूदान आन्दोलन को भारत ह नहीं वरन् पाकिस्तान तक फैलाया। पाकिस्तान सरकार की अनुमति से विनोबाजी ने पश्चिम बंगाल व आसाम की सीमा से '5 सितम्बर,1962 को पूर्वी पाकिस्तान में प्रवेश किया। विनोबा इस दौरान 21, सितम्बर1962 तक कुल सोलह दिनों तक पूर्वी पाकिस्तान में प्रेम एवं भाईचारो का अलख जगाते रहे।

पुर्वी पाकिस्तान में 'रंगपुर' के डिप्टी कमीशनर याकूब अली खान ने बाबा की अगवानी की तथा उनका भावभीना स्वागत किया गया। विनोबा ने अपनी स्वागत समारोह में कहा कि, "मैं यहाँ पाकिस्तान की जनता के लिए प्रेम और शान्ति का संदेश लेकर आया हूँ। यहाँ आने के पाँच मिनिट पश्चात् ही एक मित्र ने पूछा कि यहाँ आप कैसा अनुभव कर रहे हैं, मैंने उत्तर देते हुए कहा कि मुझे यहाँ कुछ भी अलग नहीं लग रहा है। यहाँ मुझे वैसी ही हवा, वैसी ही जमीन, वैसे ही लोग तथा उनके वैसे ही हृदय दिखलाई दिए हैं, कोई अन्तर नहीं है।

विनोबाजी को पूर्वी पाकिस्तान में अपनी यात्रा के प्रथम दिन 5 सितम्बर, 62 को ही 'भूदान' प्राप्त हुआ। एक भाई ने अपनी कुल चार एकड़ भूमि में से एक एकड़ भूमि में से एक एकड़ भूमिदान में दे दी और इस प्रकार पाकिस्तान में 'भूदान-गंगा' प्रवाहित हो गई। भूदान के पश्चात् विनोबा ने उस भाई को बधाई देते हुए कहा था कि, "वे उसके कल्याण के लिए परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करेंगे।" अपनी अगली प्रतिक्रिया में विनोबा ने कहा कि, "भूदान का द्वार अब भारत के बाहर भी खुल गया है।"

आचार्य विनोबा ने भारत में भूदान आन्दोलन के लिए 1947 तक वर्ष नियत करते हुए पाँच करोड़ एकड़ का लक्ष्य रखा था किन्तु वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ। 7 जून,1970 को विनोबा पवनार के ब्रह्म विद्यामन्दिर पहुँचे और 7 अक्टूबर, 1970 को क्षेत्र संन्यास की घोषणा कर दी और इस प्रकार एक अध्याय की समाप्ति हुई।

भूदान आन्दोलन एक दृष्टि में-

1.	भूदान में प्राप्त भूमि	:	41,76,814.93 एकड़
2.	भूदान देने वाले व्यक्तियों की संख्या	:	5,75,885
3.	वितरित भूमि	:	11,95,848.13 एकड़
4.	व्यक्तियों की संख्या जिन्हें भूमि वितरित की गयी	:	4,16,681 एकड़
5.	वितरण के लिए अनुपयुक्त भूमि	:	18,54,882.17 एकड़
6.	भूमि जिसका वितरण शेष रहा	:	11,46,094.63 एकड़
7.	दान में प्राप्त ग्रामों की संख्या	:	1,68,108
8.	दान में प्राप्त जिले	:	47

उपर्युक्त आँकड़ो के सन्दर्भ में अन्ततः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भूदान आन्दोलन जितने व्याप एवं विशाल स्तर पर चलाया गया उतनी सफलताएँ उसे प्राप्त नहीं हुई। विनोबाजी ने जो लक्ष्य निर्धारित किया था उस लक्ष्य का दस प्रतिशत ही प्राप्त हो पाया। इतने पर भी आन्दोलन की महता और उसका औचित्य समाप्त नहीं होता। विनोबा ने आर्थिक-सामाजिक समता स्थापित करने का जो मार्ग प्रशस्त किया था वह अपने उच्चतम मूल्यों के कारण वर्तमान में भी अद्वितीय है। मानव मे रक्षार्थ यही अहिंसक साधन आज भी प्रासंगिक है।

3.3 ग्रामदान और विनोबा भावे

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की सत्तर प्रतिशत जनता कृषि कार्य में संलग्न है। यह सत्तर प्रतिशत जनता रह रही है, भारत के लगभग छह लाख गांवो में। इन्हीं गाँवों में बसता है असली भारत। भारत के ये करोडों लोग कृषि और उससे सम्बन्धित ग्रामोद्योग पर निर्भर करते हैं, यही नइकी आजीविका का साधन है। यह सिलसिला आज का नहीं बल्कि हजारों सालों से चला आ रहा है। प्राचीन वैदिक साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन का स्पष्ट और विस्तृत चित्र देखने को मिलता है। मोहनजोदड़ो से लेकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा तब से आज तक स्पष्ट है कि भारत में ग्राम्य जीवन की एक स्वस्थ, सुन्दर तथा सुदृढ़ परम्परा रही है।

भारतीय ग्राम्य जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि भारत का गाँव अपने-आप में एक सम्पूर्ण इकाई रहा है। गांव अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उत्पन्न तथा तैयार करते थे। इस प्रकार गांव अपने में एक

आर्थिक इकाई भी था। आर्थिक इकाई के साथ गांव एक सामाजिक तथा राजनैतिक इकाई भी होता था। गांव की अपनी सामाजिक व्यवस्था होती थी, अपनी पंचायतें होती थीं जो सुलह, समझौते तथा न्यायदान का कार्य सम्पादित करती थीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में गांव अपने आप में एक सम्पूर्ण स्वायत तथा स्वावलम्बी इकाई होते थे।

अंग्रेजों ने आने के पश्चात् भारतीय जनजीवन को बुरी तरह ध्वस्त करना प्रारम्भ किया। अग्रेंजों ने अपने कारनामों से भारतीय जनजीवन के एक-एक आधार-स्तम्भ पर कुठाराघात किया और समूची व्यवस्था ही आमूल-चूल रूप से बदल गयी।

विनोबा के पथ-प्रदर्शक तथा भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के अपने चिन्तन में ग्राम स्वराज्य का जो ताना-बाना बुना था वही, गाँधीजी के अवसान के पश्चात् विनोबा के चिन्तन में अभिव्यक्त हुआः और 'ग्रामदान' आन्दोलन जैसी तूफानी और क्रान्तिकारी कल्पना साकार रूप लेती चली गयी। गाँधीजी कहते हैं, "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक पूरा गणतन्त्र हो। वह अपनी नितान्त आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहें, लेकिन दूसरी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, जिन्हें वह स्वयं पूरी न कर सके, दूसरों पर परस्परावलम्बित रहे। इस प्रकार प्रत्येक गांव को सबसे पहले यह देखना होगा कि वह अपनी जरूरत के अनाज और कपड़े के लिए कपास स्वयं पैदा करे। गांव में पशुओं के लिए चरागाह हो और बच्चों तथा वयस्क लोगों के लिए मनोंरजन के साधन और खेलकूद के मैदान हों। इसके बाद अगर जमीन बचे, तो खाद्य वस्तुओं के अलावा ऐसी उपज उपजायी जा सकती है, जिन्हें द्रव्य उपज कहते हैं। लेकिन गांजा, तम्बाकू या अफीम जैसी चीजें नही उपजायी जायेंगी। गांव में एक नाट्यगृह, एक शाला और एक सार्वजनिक सभा भवन होंगे। गांव में स्वच्छ पानी की व्यवस्था होगी। यह कुओं और तालाबों पर नियन्त्रण रखकर किया जा सकता है। पूरी बुनियादी शिक्षा अनिवार्य कर दी जायगी। जहाँ तक सम्भव होगा हर एक काम सहकारिता के आधार पर किया जायगा।

भारतीय सम्यता और संस्कृति के प्रतिनिध मनीषी तथा सन्त विचारक आचार्य विनोबा भावे ने गाँधीजी के इन मूल्यों का सदैव खुले हृदय से स्वागत करते हुए उन्हें आत्मसात् किया। गाँधीजी के अचानक अवसान के कारण जो शून्य को भरने तथा रचनात्मक कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाने का उत्तरदायित्व विनोबा पर आ गया। विनोबा ने इस दायित्व को बखूब निभाया।

प्रथम ग्रामदान -18 अप्रेल,1951 को पोचमपल्ली में जब पहली बार भूदान आन्दोलन की गंगा प्रवाहित हुई तो फिर उसने रूकने का नाम नहीं लिया और फिर विनोबा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। 'भूदान गंगा' जब अपना नया इतिहास रचती हुई अबाध गति से आगे बढ़ रही थी, तभी इसमें से 'ग्रामदान' जैसी एक और पवित्र धारा प्रस्फटित हुई, जिसने शान्ति, प्रेम, अहिंसा और सच्चे स्वराज्य की अमृत वर्षा की। इस संदर्भ में विनोबा का

कहना है कि, “भूदान आन्दोलन की यह एक विशेष बात है कि इसमें से समग्र ग्रामदान आरम्भ हुआ है। भूदान आन्दोलन का यह अन्तिम कदम है। उसका कदम था, गांव में कोई भी भूमिहीन नहीं रहना चाहिए और अन्तिम कदम यह है कि गांव में कोई भी भूमि मालिक न रहना चाहिए। जमीन और सम्पति का मालिक परमेश्वर है।”

उत्तर प्रदेश की भूदान दपयात्रा के दौरान विनोबाजी हमीरपूर जिले के डकोर पड़ाव से आगे बढ़े। मंगरोठ के पास उन्होंने आये हुए लोगों को सम्बोधित करते हुए एक नया सूत्र वाक्य दिया, “सबै भूमि गोपाल की।” मंगरोठ के दीवान शत्रुघ्नसिंह के आग्रह पर वे ‘मंगरोठ’ गये, श्रीसिंह ने गांव वालों को विश्वास में लेकर समूचे गांव की जमीन विनोबा को दान स्वरूप देने का विचार रखा और गांव वालों को तैयार कर लिया।

23 मई, 1952 को मंगरोठ के दीवान साहब ने पहला दानपत्र भरकर विनोबा को दिया। दूसरे दिन दोपहर तक एक व्यक्ति को छोड़कर शेष सारे किसानों के सर्वस्वदान पत्र विनोबा को अर्पित हो गये और भारत के अनगिनत अख्यात गाँवों में से यह एक गांव दुनियां के नक्शे पर चमक उठा। विश्व के इतिहास में पहली बार एक गांव के मालिकों ने स्वेच्छा से, प्रेम से अपनी मालकियत मिटा दी।

इस प्रकार 23 मई, 1952 को एक नई ऐतिहासिक अहिंसक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। ग्रामदान के पश्चात् मंगरोठ के नव-निर्माण का काम यद्यपि तत्काल हाथ में नहीं लिया जा सका। एक वर्ष पश्चात् यह कार्य आरम्भ हुआ किन्तु मंगरोठ वासियों की श्रद्धा डगमगाई नहीं। नव-निर्माण के पश्चात् मंगरोठ के विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस तरह मंगरोठ में इस जमाने के अन्यतम सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी प्रयोग का श्रीगणेश हुआ जिसका विकास तथा विस्तार आगे चलकर कारोपुर में हुआ है, जहाँ इसने विशाल गंगा का रूप धारण किया।

ग्रामदान क्यों?

मंगरोठ और कोरापुर के पश्चात् तो ग्रामदान का कार्यक्रम प्रगति की दिशा में बढ़ चला। लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ग्रामदान आखिर क्यों? विनोबा सहित समस्त गाँधीवादियों के पास इसके समर्थन में सशक्त तर्क उपलब्ध है। धीरेन्द्र मजूमदार ‘ग्रामदान शंका एवं समाधान’ पुस्तक में लिखते हैं कि-’देश के सामने इस समय मुख्य तीन चुनौतियाँ हैं-(1) सुरक्षा की समस्या,(2) राष्ट्रीय विकास की समस्या और (3) स्वराज्य की समस्या।

इस विषय पर विस्तार से विचार प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि, “आज देश की साढ़े पांच लाख ग्रामीण इकाईयों की परिस्थिति अनुकूल नहीं है। वहाँ लोग उसी तरह रहते हैं, जैसे जंगल में पशु रहते हैं। जंगल के पशु अपने गुजारे के लिए कुछ पुरूषार्थ करते हैं और उसकी फिक्र में रहते हैं। उसके लिए वे एक-दुसरे को नोच-नोचकर खाते रहते हैं। उसी तरह आज गांव का हर आदमी अलग से अपनी-अपनी फिक्र में रहता है और उसी

चेष्टा में बड़े-छोटों को खाते रहते हैं। जब तक गांव में इस तरह का व्यक्तिवादी मानस बना रहेगा और उसके स्थान पर सामुदायिक वृत्ति पैदा नहीं होगी-परिवार भावना पैदा नहीं होगी।''

धीरेन्द्र मजूमदार ग्रामदान के लाभ की और इंगित करते हुए कहते हैं कि ग्रामदान के फलस्वरूप सामन्तवाद और पूंजीवाद की बुराइयों से लड़ना आसान होगा। ''ग्रामदान ही एक ऐसा कार्यक्रम है जिससे यह आश्वासन मिलता है। व्यक्तिगत मालकियत को समाज को समर्पित कर पूरा गांव सामन्तवाद और पूंजीवाद के विचार को समाप्त करता है। गांव में सब लोग मिलकर यह घोषित करते हैं कि हम अमुक प्रकार की व्यवस्था करने जा रहे हैं, जिसमें गरीबी मिटाने के लिए केवल घोषणा ही नहीं करते हैं, बल्कि भूमिहीनों को बीसवाँ हिस्सा जमीन देकर उस पर आश्वासन की दिशा में सक्रिय कदम भी उठा रहे हैं।

राष्ट्रीय विकास की समस्या भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि 200 वर्षों की पराधीनता के कारण राष्ट्र का आर्थिक ही नहीं अपितु नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पतन भी हो गया है। अतः इसका उपाय भी ग्रामदान में निहित है। इस विषय पर धीरेन्द्रजी की मान्यता है कि, ''विकास का मतलब केवल आर्थिक विकास से नहीं है। सांस्कृतिक विकास इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। लेकिन आज देश जिस ओर बढ़ रहा है, उससे संस्कृति का ह्रास हो रहा है। इतिहास बताता है कि किसी देश की संस्कृति की रक्षा उस देश का किसान करता है, पूँजीपति नहीं।''

देश के सामने तीसरी चुनौती स्वराज्य है। इस विषय पर विनोबा के विचार चिन्तनीय है, वे कहते हैं कि, ''स्वराज्य प्राप्ति के बाद यहाँ के लोग परतन्त्र हो गये हैं। वे समझते हैं कि हर चीज सरकार ही करेगी। यह बिलकुल गलत विचार है। इससे ज्यादा भयानक विचार दूसरा कोई नहीं है। सरकार बाल्टी और जनता कुआँ। कुएँ के पानी का एक छोटा-सा-हिस्सा बाल्टी में आ जाता है। उसी तरह जनता की शक्ति का एक अत्यन्त अल्प हिस्सा सरकार के पास होता है। लेकिन इन दिनों एक बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि बाल्टी में ही ज्यादा पानी आता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि देश की चुनौतियों का उत्तर देने की क्षमता 'ग्रामराज्य' की व्यवस्था में है और ग्राम राज्य अर्थात् सच्चा स्वराज्य ग्रामदान से ही सम्भव हो पाएगा अतः ग्रामदान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य आवश्यकता है। एक अन्य प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक जी.रामचन्द्र राव एक भिन्न दृष्टिकोण से 'ग्रामदान' तथा 'ग्रामराज्य' की आवश्यकता तथा औचित्य को निरूपति करते हैं। मानव जाति के लिए भोजन तथा स्वतन्त्रता प्रथम महत्वपूर्ण आवश्यकता है तथा इसकी पूर्ति ग्रामराज्य में सरलता से होती है। इस विषय पर वे गाँधी विचारों के माध्यम से प्रकाश डालते हुए कहते हैं, ''गाँधीजी ने परिवार और राष्ट्र के बीच एक नयी इकाई रखी, जो परिवार से बड़ी है और राष्ट्र से छोटी है। परिवार पद्धति इन छोटी-छोटी इकाइयों में और इस समाज रचना के विभिन्न स्तरों पर भी बढ़ायी जा सकती है, क्योंकि हर स्तर पर इकाई छोटी ही रखी

जाती है, जिससे परिवार के समान प्रेम सम्बन्ध बनाये रखने में सुविधा हो। इस बुनियादी इकाई को गाँधीजी ने ग्राम कहा है।

जी. रामचन्द्र राव की मान्यता है कि समाजवादी अधिनायक तन्त्र में मनुष्य को भोजन तो प्राप्त हो जाता है किन्तु उसका प्रकृति से प्रदत्त बहुमूल्य उपहार स्वतन्त्रता छीन जाता है, वहीं दूसरी तरफ पूँजीवदी लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्थाओं में स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तो रोटी छिन जाती है तथा मानव शोषण का शिकार हो जाता है। भोजन के कारण ही मनुष्य समाजवादी अधिनाकत्व की तरफ झुकता है।

'ग्रामदान' के माध्यम से जिस 'ग्रामराज्य' का अभ्युदय होगा उसमें भोजन तथा स्वतन्त्रता दोनों उपलब्ध होगी अतः ग्रामदान की आवश्यकता है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि, "मनुष्य जाति को अधिनायकतन्त्र की बुराइयों से बचाने के लिए किसी ऐसी पद्धति की जरूरत है, जिसमें उसे पहले कुछ खाना मिले और कुछ स्वतन्त्रता भी हो। साथ ही उसके अन्दर ऐसी गुंजाइश भी हो कि धीरे-धीरे हर आदमी को बहुत-सा-खाना और बहुत-सी आजादी भी मिल जाय। ग्रामराज उसी दिशा में एक प्रयत्न है।"

आचार्य विनोबा भावे का स्पष्ट विचार था कि 'ग्रामदान' हो जाने भर से ही 'ग्रामराज्य' और स्वराज्य की स्थापना होकर सर्वोदय नहीं होगा, अपितु इसे सुविचारित ढंग से कार्यरूप में परिणत करना होगा तभी वास्तविक स्वराज्य का सपना साकार हो पाएगा। इस हेतु आचार्य विनोबा का विचार है कि 'ग्रामदानी' ग्रामों में मुख्यतः हमें चार महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे। प्रारम्भिक तौर पर उठाए गये चार महत्वपूर्ण कदमों के पश्चात् ही आगे का मार्ग सुगम हो पाएगा। इस सम्बन्ध में विनोबा कहते हैं,

1. "जब जमीन बँटेगी, तब किसानों को जमीन की पूर्ति में और भी मदद देनी होगी।
2. खेती की पूर्तिस्वरूप ग्रामोद्योग खड़े करने होगें। ग्रामोद्योग का काम जमीन के बँटवारे के बिना नहीं फल-फुल सकता। जमीन का बँटवारा और ग्रामोद्योग, दोनों मिलकर एक पूर्ण विचार या सर्वोदय होता है।
3. हमें गांव-गांव में तालीम शुरू करनी होगी। हमारी तालीम ग्रामोद्योग प्रधान, आध्यात्मिक और व्यवहारिक होगी। गांव वालों को उद्योग का ज्ञान होगा, ताकि वे उद्योगों में प्रवीण बनें।
4. गांव-गांव में आरोग्य की योजना शीघ्रता से करनी होगी। इसके बाद कई काम करने होंगे। लेकिन ये चार मुख्य काम हैं। नागरिकों को इसमें सहयोग देना चाहिए।

आचार्य विनोबा भावे का विचार था कि ग्रामदानी-गाँवों में प्रारम्भिक तौर पर उपर्युक्त कार्यो को कार्य रूप में परिणत करने के पश्चात् ही 'ग्रामराज्य' का प्रशासनिक ढाँचा तैयार किया जायगा। ग्राम इकाई सामान्यतः तीन से

चार हजार व्यक्तियों की होती है। इसी इकाई से ग्रामसभा का निमार्ण होगा यही ग्रामसभा ग्रामराज्य की बुनियाद होगी।

ग्रामराज का पिरामिड

"ग्राम राज्य की बुनियाद ग्राम होता है। यह बुनियाद अथवा प्रथम वर्ग की इकाई है। इस प्रकार की 10 से 15 पड़ोसी ग्राम इकाइयाँ एक-एक प्रतिनिधि चुनेगी। इस तरह 10-15 प्रतिनिधियों की सभा दूसरे वर्ग की इकाई होगी। इस प्रकार एक-एक करके ऊपर की इकाइयाँ बनती जायेंगी और तीसरे, चैथे, पाँचवें आदि वर्गों की इकाइयाँ होंगी। ऊपर का प्रत्येक वर्ग अधिकाधिक आबादी का प्रतिनिधि होगा। इस प्रकार छठा या सातवाँ वर्ग आज के सम्पूर्ण संसार की आबादी का प्रतिनिधि होगा।"

ग्रामराज का प्रशासनिक स्वरूप जब पिरामिड के रूप में तैयार हो जायगा तो ग्राम इकाई से सम्बन्धित समस्त कार्यों का दायित्व ग्रामसभा रूपी धारा सभा का होगा। ग्रामसभा से ही पंचायत का सर्वसम्मति से गठन किया जायगा। ग्राम से सम्बन्धित समस्त योजनाएँ बनाने का कार्य ग्राम इकाई का ही होगा। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्धि सर्वोदयी ठाकुरदास बंग का कहना है कि, "गांव के सम्पूर्ण विकास का मुख्य उत्तरदायित्व ग्रामसभा पर होगा। गांव की सेवा और सुरक्षा, फसलों की रखवाली और खेती, रास्ते आदि के सुधार के लिए स्वयंसेवक दल खड़ा किया जायेगा। गांव के झगडे मिटाने का काम गांव सभा करेगी। ग्राम पंचायत प्रतिवर्ष गांव में सम्मेलन बुलायेगी। सम्मेलन में पिछले वर्ष की गांव की खेती, स्वास्थ्य, सहकारी संस्थाएँ, शिक्षण, उद्योग आदि की प्रगति का लेखा-जोखा कर अगले साल के काम की योजना तैयार की जायगी।

ग्रामराज का पिरामिड खड़ा होने का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि इससे स्वराज्य की स्थापना हो पाएगी। समाजवादी अधिनायकतन्त्र तथा पूँजीवादी लोकतन्त्र के जो दोष प्रायः देखने को मिलते हैं उनसे मुक्ति प्राप्त होगी। सत्ताका प्रवाह ग्राम इकाई से ऊपर की ओर जाएगा तथा सम्पूर्ण व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण के लाभ दिखलाई पड़ेगे। ग्राम इकाई पर खड़ी राजनैतिक संरचना अधिक टिकाऊ, उपयोगी तथा पारदर्शी होगी। इस राजनैतिक सरंचना में समाज एक बड़े संयुक्त परिवार के सदृश हो जायेगा। व्यक्तिगत मालकियत की समाप्ति के कारण एक कुटुम्ब योग की प्रवृति को बढ़ावा मिलेगा। कालान्तर में यही प्रवृत्ति विश्व कुटुम्ब योग को जन्म देगी और इस प्रकार जिस मानव समाज का निर्माण होगा उसका एक छोर गांव होगा और दूसरा छोर दुनिया।

"ग्रामराज्य में नीचे जनता के हाथों में सारी सत्ताहोती है और वह कुछ सत्ताऊपर की इकाइयों का हस्तारंतरित करती है। फिर प्रत्येक नीचे वाली इकाई ऊपर के वर्ग के लिए अपना प्रतिनिधि चुनकर देती है। यह प्रतिनिधि इन सब छननियों से छनता-छनता ठेठ ऊपर तक पहुँचता है। इसलिए यह आशा की जानी चाहिए कि वह अवश्य ही योग्य, अनुभवी और अपने कर्तव्यों को ठीक प्रकार से अदा करने की योग्यता रखता है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विनोबा ग्रामदान आन्दोलन के माध्यम से जिस ग्रामराज्य अथवा स्वराज्य की प्रेरणा देते हैं वहीं कालान्तर में जाकर इस समूची व्यवस्था को शासन मुक्त व्यवस्था के रूप में परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वावलम्बी व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। "ग्राम-स्वराज्य का सही अर्थ यह है कि दूसरों पर या सरकार पर अवलम्बित न रहकर अपने पैरों पर खड़ा रहा जाय। वर्तमान भेद,वर्ग और स्वार्थो को कायम रखकर ग्राम स्वराज्य की स्थापना कभी सम्भव नहीं है। इसलिए गांव को एक रूप बनाकर ग्राम-समाज बनाना होगा। इसके लिए गांव की सारी जमीन एक कर उसकी मालकियत गांव की यानी ग्राम-समाज की करनी होगी। ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की नींव है। लेकिन केवल ग्रामदान से सारे दुःख होने वाले नहीं हैं। ग्रामदान में से हमें ग्राम-स्वराज्य विकसित करना होगा।

ग्रामदान आन्दोलन का औचित्य तथा महत्ता

भूदान आन्दोलन में जन्मे इस आन्दोलन का औचित्य तथा उसकी महता निर्विवाद रूप से स्थापित है। भारतीय संस्कृति मूल्यों को ठोस पृष्ठभूमि इस आन्दोलन की प्रेरणा है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय-राजनीतिक चिन्तन का जो विकास हुआ उसमें ग्रामदान आन्दोलन को मील का पत्थर निरूपित किया जा सकता है। ग्रामदान आन्दोलन के विचार ने आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में अभिनव मूल्यों की स्थापना कर विश्व में बढ़ती हिंसा तथा तनाव को तिरोहित करने की दिशा में महत्वपूर्ण विकल्प प्रस्तुत किया है।

ग्रामदान आन्दोलन वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय शासन व्यवस्था, पूंजीवादी लोकतन्त्र तथा समाजवादी अधिनायकतन्त्र का सर्वोत्तम विकल्प प्रस्तुत करते हुए 'विश्वराज्य' की दिशा में उठाया गया प्रथम सोपान है। ग्रामदान आन्दोलन से जिस 'ग्रामराज' का आविर्भाव होगा उसके लाभों पर यहाँ दृष्टिपात करना अप्रासंगिक न होगा,

1. ग्रामदान आन्दोलन के पश्चात् जिस ग्रामराज्य की स्थापना होगी वही वास्तविक तथा सच्चा स्वराज होगा। स्वराज्य के मूर्त रूप धारण करने के कारण जनता स्वयं मालिक होगी तथा स्वतन्त्रता सही अर्थों में स्थापित हो पाएगी।

2. ग्रामराज्य में प्रातिनिधि प्रजातन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र के दर्शन होंगे। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के फलस्वरूप जनता तथा प्रतिनिधि के बीच सीधा संवाद स्थापित होगा तथा दूरियाँ घटेंगी।

3. जमीन तथा सम्पति में जब व्यक्तिगत मालकियत समाप्त हो जाएगी तो गलाकाट प्रतियोगिता का भी अन्त हो जाएगा।

4. नौकरशाही, पूँजीवाद तथा अन्धाधुँध सैन्यवाद से छूटकारा प्राप्त होगा।

5. गांव पूर्व की भाँति अपने आप में एक स्वावलम्बी इकाई का रूप धारण करेंगे।

6. वर्तमान में शहरों तथा महानगरों की तरफ जनता का जो प्रवाह बह रहा है वह काफी सीमा तक नियन्त्रित हो सकेगा। इसका परिणाम यह होगा कि शहर तथा महानगर गन्दी बस्ती जैसे समस्याओं से निजात पा सकेंगे।

7. ग्रामराज्य में ग्रामोद्योग तथा कुटीर उद्योगों का प्रधान्य होगा। इससे मानव समाज यन्त्रीकरण के दोषों से बच पाएगा तथा मनुष्य के पास रोजगार के अधिक अवसर होंगे।

8. ग्रामदान से ऊपजे ग्रामराज्य में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन युक्तियुक्त, तरीके से होने के कारण पारिस्थितिक सन्तुलन बना रहेगा और इस समय की सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण प्रदूषण से बचना भी सम्भव होगा।

9. वर्ग भेद तथा विषमता समाप्त होगी अतः वर्ग संघर्ष जैसी समस्या का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा।

10. ग्रामदान और ग्रामराज्य से मानस परिवर्तन होगा। इस विषय में जयप्रकाश जी का विचार है कि, ‘‘ग्रामदान में क्या कोई ऐसी चीज है, जिसकी वजह से कुछ मानसिक परिवर्तन होगा? कुछ सामाजिक परिवर्तन होगा और एक-दूसरे के प्रति सम्बन्ध मीठ होंगे?परम्परा से जो चला आ रहा है, उन बुराइयों में कुछ फर्क पड़ेगा? चाहे वह अस्पृश्यता हो, शराबखोरी हो या और कोई बात हो। हाँ, है! अवश्य है। फिर ग्रामदान के द्वारा प्रारम्भिक काल में भी जैसा परिवर्तन हो सकता है, वैसा परिवर्तन न पार्टियों के प्रोग्राम से होता है, न किसी सरकारी कार्य से होता है, न पंचायती राज से होता है, न कम्युनिटिडेवलमेंट से होता है, न पंचवार्षिक योजना के प्रोग्राम से होता है, न रूरल प्रोग्राम से या मैन पावर यूटीलिटी प्रोग्र्राम से होता है। जो भी प्रोग्राम चलते हैं, उनसे ऐसा परिवर्तन कभी नहीं होता।’’

11. ग्रामराज्य भ्रष्टाचार से मुक्त व्यवस्था होगी। इस विषय में धीरेन्द्रजी का विचार है, ‘‘ग्रामदान से पूरे गांव की सामूहिक शक्ति संगठित होती है, जिस कारण जनता द्वारा भ्रष्टाचार का मुकाबला सम्भव होगा।’’

12. ग्रामदान आन्दोलन के पीछे एक व्यापक आध्यात्मिक निष्ठा होती है जिससे समाज परिवार का एक भाग बन जाता है तथा व्यापक आत्म-दर्शन की सुखद अनुभूति होती, फलस्वरूप उसका अपना स्वतन्त्र मूल्य स्थापित होता है। इस विषय में विनोबाजी प्रकाश डालते हुए कहते हैं, ‘‘स्वराज्य प्राप्ति की स्वतन्त्र कीमत है, चाहे उसके बाद हम उसका उत्तम उपयोग कर सकें या न कर सकें। इसी तरह यह जा भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आदि का आन्दोलन चल रहा है, उसका स्वतन्त्र मूल्य है, चाहे उसका उपयोग हम ठीक से कर सकें या न कर सकें।’’

13. ग्रामदान तथा ग्रामराज्य की सर्वाधिक महता इस बात की है कि इसके परिणामस्वरूप 'विश्ववृति' जाग्रत होगी फलस्वरूप समूची मानवता एक कुटुम्ब में तब्दील हो जाएगी।

14. ग्रामदान-ग्रामराज्य आन्दोलन का सर्वाधिक सुखद पक्ष यह है कि इससे जहाँ विश्व की तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त होगा, वही "विश्व-शांति की तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त होगा, वहीं "विश्व-शान्ति" स्वप्नलोकिय विचार न रहकर वास्तविकता के यथार्थ धरातल पर उतरेगा और अन्ततः मानवता का कल्याण होगा। इस विषय में विस्तार से प्रकाश डालते हुए स्वयं विनोबा कहते हैं, "मैंने पूरी के सर्वोदय सम्मेलन में कहा था कि भूदान-यज्ञ में जो दान देता है, वह विश्व-शान्ति के लिए वोट देता है, विश्व-शान्ति स्थापित करने में मददगार होता है। पश्चिम की विद्या पढ़े लोग बहुत अन्धे हो गए हैं। वे ऐटम की शक्ति देखते हैं, एक परमाणु में कितनी शक्ति है ऐसा कहते हैं। लेकिन उससे भी ज्यादा शक्ति ग्रामदान में है। हम समझते हैं कि जो पराक्रमा ऐटम और हाइड्रोजन से हिंसा के क्षेत्र में होता है, वही ग्रामदान से अहिंसा के क्षेत्र में होता है। ऐटम और हाइड्रोजन को हिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जाता है, उसी तरह ग्रामशक्ति से सर्वस्वदान, अहिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जायगा। वैज्ञानिक कहते हैं जब ऐटम और हाइड्रोजन फूटता है, तब सारी दुनिया की हवा बिगड़ जाती है। हम समझते हैं कि जब एक ग्रामदान मिलता है, तो सारी दुनिया की हवा शुद्ध हो जाती है।"

3.4 सारांश

अन्ततः कहा जा सकता है कि ग्रामदान का सारा आन्दोलन सामाजिक सहयोग तथा समन्वय का एक विशाल, सुन्दर तथा भव्य दर्शन है। यह सुन्दर दर्शन है। यह सुन्दर दर्शन मानवतावाद की स्थापना करने में सहायक सिद्ध होता है। हिंसा और कानून के स्थान पर अहिंसा तथा सहयोग से जो मानव समाज आकार लेगा वह निश्चित ही कालजयी समाज होगा। ग्रामदान आन्दोलन की महता और औचित्य के विषय में आचार्य विनोबा भावे ने 21-22 सितम्बर, 1957 को येलवाल(मैसूर) उड़ीसा में ग्रामदान परिषद् को सम्बोधित करते हुए ग्रामदान को "डिफेन्स मेजर" निरूपित करते हुए कहा था, "आपकी पंचवर्षीय योजना यह मानकर चलती है कि दुनिया में शान्ति रहेगी। लेकिन अगर दुनिया में लड़ाई हुई तो आपके आयात-निर्यात में गड़बडी होगी और आपकी योजना ताश के महल की तरह गिर जायेगी। उस हालत में ग्रामदान टिक सकता है।"

3.5 अभ्यास प्रश्न

1. विनोबा के राजनीतिक चिन्तन की विवेचना कीजिए।

2. विनोबा के पंथनिरपेक्षता संबंधी विचार को स्पष्ट कीजिए।

3. शांति के संबंध में विनोबा के विचार प्रस्तुत कीजिए।

3.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भावे, विनोबा, भूदान गंगा, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1957
2. भावे, विनोबा, भूदान योजना: लैण्ड-गिफ्ट्स मिशन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, मार्च, 1957
3. मिश्रा, आर. एन., भूदान मूवमेंट इन इण्डिया: एन इकॉनोमिक असेसमेंट, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1972
4. उम्मन, टी.के., करिश्मा, स्टेबिलिटी, एण्ड चेंज: एन एनालिसिस ऑफ भूदान-गाँधीयन मूवमेंट इन इण्डिया, थोमासन प्रेस, 1972
5. राम, सुरेश, विनोबा एण्ड हिज मिशन, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, काशी, 1962

इकाई – 4

जयप्रकाश नारायण का समाजवादी और गाँधीवादी विचार

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 समाजवादः अवधारणात्मक विश्लेषण

4.3 गाँधी का समाजवाद

4.4 जयप्रकाश नारायण का समाजवाद

4.5 जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव

4.6 भारतीय समाजवाद पर जयप्रकाश नारायण के विचार

4.7 समाजवाद के लिए रचनात्मक कार्यक्रम

4.8 लोकतन्त्र एवं समाजवाद

4.9 जयप्रकाश नारायण गाँधीवादी समाजवाद के नजदीक

4.10 सामुदायिक समाजवाद

4.11 समाजवादः जयप्रकाश नारायण एवं गाँधी

4.12 सारांश

4.13 अभ्यास प्रश्न

4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. समाजवाद की अवधारा को समझना।
2. गाँधीवादी समाजवाद को समझना।
3. मार्क्सवादी समाजवाद को समझना।
4. जयप्रकाश नारायण के समाजवाद सम्बन्धी विचारों पर मार्क्सवाद का प्रभाव।
5. जयप्रकाश नारायण मार्क्सवादी समाजवाद से गाँधीवादी समाजवाद की ओर कैसे मुड़े?
6. भारतीय समाजवाद सम्बन्धी विचारों को जानना।
7. जयप्रकाश नारायण के समाजवादः सामुदायिक समाजवाद को समझना।

4.1 प्रस्तावना

समाजवाद का मूलरूप से सम्बन्ध समाज के कल्याण या समाज के अधिकांश व्यक्तियों का कल्याण से है। यह विचार स्वप्नलोकीय भी हो सकता है और व्यावहारिक भी हो सकता है। इस समाजवाद के विचार को अनेक व्यक्तियों ने एवं अनेक संस्थाओं ने अनेक नामों से समझने और समझाने का प्रयास किया है। पश्चिमी समाजवाद की अपनी अलग दिशा और दशा रही। भारतीय समाजवाद अपनी अद्वितीय, अनुपम एवं अनोखी विशेषताओं के साथ अनवरत रूप से आगे बढ़ रहा है। भारतीय समाजवाद भारतीय संस्कृति के आधार वाक्यों, “वसुधैव कुटुम्बकम”, सर्वे भूमि गोपाल की”, “सर्वे भवन्ति सुखिन”, “सर्वे सन्तु निरामया” से हमेशा प्रभावित रहा है। महात्मा गाँधी ने समाजवाद का विचार दिया तथा उत्तर गाँधीवादी विचारकों के समाजवाद सम्बन्धी विचारों पर गाँधी के विचार प्रतिबिम्बित होते दिखाई दे रहे हैं। जयप्रकाश नारायण भी इसी धारा के एक समाजवादी विचारक हैं।

4.2 समाजवाद: अवधारणात्मक विश्लेषण

समाजवाद के बहुत से रूप हैं- यूटोपियन, फेवियन, सिण्डीकलिज्म, श्रेणी समाजवाद, लोकतान्त्रिक समाजवादी, राज्य समाजवाद, विकासवादी समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद। जिनके अलग-अलग रुप और

विचार है सी. ई. एम. जोड़ का कहना है कि समाजवाद उस टोप की तरह से है जिसे इतने व्यक्तियों ने पहना है जिससे उसका स्वरूप ही नष्ट हो गया है।

आज के समय में ऐसा कोई राजनीतिक दर्शन नहीं है जो इस अमीर-गरीब के बीच की खाई को कम कर सके। पूंजीवाद ने इसका उत्तर असन्तोषजनक दिया है क्योंकि उसमें अनियन्त्रत व्यक्तिवाद की स्थिति आ जाती है इसने अमीर-गरीब की खाई को और भी बढ़ा दिया। जबकि साम्यवाद ने आर्थिक असमानता और सामाजिक अन्याय के लिए समाधान पेश किया। यह दर्शन निकट परीक्षण करने पर मौलिक रूप से दोषपूर्ण, प्रतिगामी और आत्मघाती पाया जाता है, यह एक तरफा है, यह सिर्फ मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं के बारे में ही सोचता है और उसकी आध्यात्मिक तथा नैतिक आवश्यकताओं का तिरस्कार करता है यह नैतिक भावनाओं तथा उच्चतर मूल्यों को पीछे धकेल देता है। ईश्वर, धर्म, प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता उसके भारी बोझ के नीचे कुचल दिये जाते हैं।1

मार्क्स को आधुनिक समाजवाद का जनक माना जाता है। मार्क्स का समाजवाद वर्ग संघर्ष और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर आधारित है। मार्क्स का मानना है कि मानव जाति के इतिहास में प्रारम्भ से ही दो वर्ग चले आये हैं। एक शोषकों का और दूसरा शोषितों का वर्ग। मार्क्स वस्तुत वर्ग संघर्ष के इतिहास को ही मानव जाति का इतिहास मानता है। अतिरिक्त मूल्य के सम्बन्ध में मार्क्स का विचार है कि पूंजीवादी समाज में श्रमिकों को जितना वह अपने परिश्रम से पैदा करता है उससे बहुत कम कीमत मिलती है। श्रमिक जो अपने परिश्रम से उत्पन्न करता है तथा जो मजदूरी उसको दी जाती है इसका अन्तर अतिरिक्त मूल्य निर्धारित करता है। अतिरिक्त मूल्य पूंजीपति रख लेता है इस प्रकार श्रमिकों का शोषण होता है।

4.3 गाँधी एवं समाजवाद

गाँधीजी का समाजवाद अद्वितीय और अनुपम है यह एक सम्पूर्ण मानव और सम्पूर्ण समाज के सन्तुलित अध्ययन पर आधारित है। उन्होंने व्यक्ति को एक भौतिकवादी मानने के साथ-साथ एक

आध्यात्मिक भी माना है। उनका समाजवाद केवल समाज के लिए ही नहीं वरन् वह व्यक्ति के लिए भी है। उनका समाजवाद बिना ‘‘वाद’’ का समाजवाद है।

गाँधीजी को समाजवाद में रस्किन की पुस्तक ‘‘अन टू दिस लास्ट’’, टालस्टाय की पुस्तक ‘‘किंगडम ऑफ गोड इस विदिइन यू’’ और ‘‘भागवत गीता’’ का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। गाँधीजी का समाजवाद एक प्राकृतिक समाजवाद है। गाँधीजी ने समाजवाद की अभिव्यक्ति सर्वोदय की अवधारणा के रूप में की है जिसमें सभी व्यक्तियों का उदय है। गाँधीजी का समाजवाद पश्चिमी समाजवाद की तरह नहीं है। समाजवादी व्यक्ति निजी सम्पत्ति को अस्वीकार करता है और वह मानता है कि राज्य के रूप में संगठित समाज जिसे सम्पूर्ण धन

का स्वामी होना चाहिए तथा उसे समस्त श्रम का संचालन एवं समस्त सम्पत्ति का समान वितरण लागू करना चाहिए।

गाँधीजी का समाजवाद सात्विक दृष्टि से वेदान्त के "ईशावास्यमिद" के आधार पर "आत्माओं की मूलभूत एकता" पर आधारित "सर्वभूत हितेरताः" या " आत्मावत सर्वभूतेषु" या "वसुधैव कुटुम्बकम" के नीति वाक्य यथार्थ है। गाँधीजी का समाजवाद का विचार सत्य, अहिंसा और नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा मानवता के नियमों पर आधारित है।" गाँधीजी का समाजवाद बैंथम के सिद्धान्त "अधिकतम लोगो का अधिक से अधिक सुख के आदर्श सिद्धान्त से भी आगे है। गाँधीजी ने मानव की सेवा को ईश्वर की पूजा माना है उनके विचार से व्यक्ति का स्थान व्यवस्था, समाज व राज्य से सबसे ऊंचा और सबसे प्रथम है। अहिंसा के सन्दर्भ में जब हम "दूसरों को खाकर जीओ" से "जीयो और जीने दो" और उसमें "दूसरों के लिए जीओ" की भूमिका में पहुँच रहे हैं जो उपयोगितावाद में निहित व्यक्तिगत लाभ की स्पर्धा की गंध अच्छी नहीं लगती है। गाँधीजी का सिद्धान्त डार्विन के सिद्धान्त "जो सबसे अधिक सक्षम है, वही जीवन संग्राम में बचेगा" की तरह नहीं है। गाँधी का सिद्धान्त सर्वोदय का सिद्धान्त है।

सर्वोदय का अर्थ है कि "सभी का सर्वांगीण विकास"। इसमें न भौतिकता की अवहेलना है, न आध्यात्मिकता की उपेक्षा है। यह सन्यासवाद एवं भोगवाद के बीच की मध्यम प्रतिपदा है:

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद दुख भागभवेत।।

के इस बोध वाक्य में मानसिक, शारीक एवं आध्यात्मिक सुखों का समन्वय है। समाजवाद व्यक्ति की निजी सम्पत्ति को अस्वीकार करता है और यह मानता है कि राज्य के रूप में संगठित समाज का सम्पूर्ण उत्पादन और वितरण के समस्त साधनों पर अधिकार होता है। इससे स्पष्ट है कि समाजवाद का सम्बन्ध समाज में सम्पत्ति के वितरण से है क्योंकि सम्पत्ति को समाज की सभी बुराईयों की जड़ मानते हैं।

4.4 जयप्रकाश नारायण एवं समाजवाद

महात्मा गाँधी जयप्रकाश नारायण को भारत में समाजवाद का अधिकृत विद्वान मानते थे। उनके शब्दों में "वे सामान्य कार्यकर्ता नहीं हैं, वे समाजवाद के अधिकारी हैं। हम यह कह सकते हैं कि पाश्चात्य समाजवाद के सम्बन्ध में जो वे जानते वह भारत में कोई नहीं जानता।" जयप्रकाश नारायण स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत सिपाही रहे हैं। ब्रिटिश समाजवादी नेता रैमजे मैकडोनाल्ड के अनुसार समाजवाद के विकास के इतिहास को परिशीलन करने के लिए जिन चरित्रों का अवलोकन करना होगा इनमें जयप्रकाश नारायण का स्थान अग्रण्य है।

समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदाय हैं। समाजवाद की परिभाषा में अन्तर नहीं है अपितु समाजवाद की स्थापना के तरीकों व साधनों में अन्तर है। इनकी कार्यपद्धति में अन्तर है। जयप्रकाश नारायण समाजवाद को आर्थिक सामाजिक पुनर्रचना का सिद्धान्त मानते हैं। वे समाज के सभी पक्षों का पुर्नगठन व पुनर्रचना करना चाहते हैं। "उनका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का समन्वित और सन्तुलित विकास करना है" 1929 से 1946 तक जयप्रकाश नारायण पक्के मार्क्सवादी समाजवादी रहे परन्तु भारतीय साम्यवादी और सोवियत संघ के साम्यवादी उन्हें अपने विचारों से प्रभावित नहीं कर पाये। जयप्रकाश नारायण को इनके हिंसात्मक और क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास नहीं था। जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का गम्भीर प्रभाव था। उन्हें समाजवाद की प्रेरणा मार्क्स से मिली थी और मार्क्सवाद में उनकी अटूट निष्ठा भी रही- "अतः जयप्रकाश नारायण ने मार्क्सवाद को ही समाजवाद का वास्तविक रूप माना था। वे समाजवाद का सामाजिक आर्थिक पुननिर्माण की एक पद्धति मानते है। समाजवाद व्यक्तिक आचरण की संहिता नहीं है। वह हमारे आपके व्यक्तिगत अभ्यास की कोई चीज नहीं है और न वह शशिमहल में निर्मित की जा सकने वाली वस्तु है। जब हम भारत में समाजवाद लाने की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य देश का सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक, उसके खेतों, खलिहानों, कारखानों, विद्यालयों, नाटक शालाओं आदि का पुनः निर्माण करना है।"

समाजवाद का उद्देश्य आर्थिक असमानता और कुछ थोड़े से हाथों में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को समाप्त करना है। वे उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व की बात करते हैं। उनके समाजवाद में सभी श्रमिक है- एक वर्गविहीन समाज। उनका समाज एक ऐसा समाज है जिसमें मानव का शोषण नहीं किया जा सकता है। समाजवाद की मुख्य समस्या विषमता की समस्या है, शोषण की समस्या है। इन दोनों के क्या कारण है और इन दोनों को कैसे दूर किया जा सकता है। इस विषमता का क्या कारण है? समाजवाद प्राकृतिक विषमता की तो स्वीकार करता है विषमता से उनका तात्पर्य पद, सम्पत्ति आदि की विषमता से है जो अनेक बुराईयों को जन्म देती है, सम्पत्ति का असमान वितरण ही सामाजिक समस्याओं का बीज कोष है। सम्पत्ति का असमान वितरण क्यों होता है ? स्मरणीय है जयप्रकाश नारायण प्राकृतिक विषमता को सम्पत्ति वितरण का कारण नहीं मानता। एक धनी पिता का मूर्ख पुत्र सम्पत्ति को विरासत में प्राप्त करता है, न कि निजी योग्यता के कारण। अतः विषमता का आधार समाज की प्रचलित रीति है।

हमारे देश में जयप्रकाश नारायण के अनुसार गरीबी का कारण यह है कि उत्पादन के साधनों पर उनका स्वामित्व नहीं है। यदि उत्पादन के साधन प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से प्राप्त हों तो ऐसी अवस्था में गरीबी नहीं रहेगी। जब तक कि जनसंख्या में इतनी वृद्धि न हो जाय कि वर्तमान स्थिति में उत्पादन की शक्ति उत्पादन के साधन तथा पद्धति से लोगों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त सम्पत्ति का उत्पादन न हो। उत्पादन और वितरण के साधनों पर पूंजीपतियों का स्वामित्व है।

शोषण सम्पत्ति की विषमता पर आधारित है। धनिकों के पास यह सम्पत्ति कहाँ से आयी ?

धनिकों के पास जो उनकी अपार सम्पत्ति है वह स्पष्टतः उनका अपना उत्पादन नहीं है। धन संग्रह का प्रकृति के साथ श्रम करने के अलावा कोई अन्य साधन नहीं है। उपभोग से अधिक उत्पादन धन संग्रह का कारण है जितने अधिक उत्कृष्ट उत्पादन के साधन होते हैं उतना ही अधिक उत्पादन होता है। जबकि श्रमिक को परिश्रमिक के रूप में उसका एक अंश ही दिया जाता है, शेष जो कुछ बचता है जिसे मार्क्स अतिरिक्त उत्पादन कहता है वह श्रमिक द्वारा अर्जित होने पर भी पूंजीपति हड़प लेता है।

उत्पादन और वितरण के साधनों पर जब एक वर्ग का स्वामित्व होता है और श्रमिक को वह नौकर रखता है उसे बस इतना परिश्रमिक देता है जिससे वह साधारण खाना खा सके, साधारण कपड़े सके और दूसरे दिन वह काम करने के लिए आ सके यह प्रक्रिया चलती रहती है और सम्पत्ति केन्द्रित होती जाती है। औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ शोषण तीव्र हो जाता है।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार विषमता और शोषण का उन्मूलन के दो उपाय हो सकते हैं- प्रथम समाज को इस प्रकार पुर्नगठित किया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हो अर्थात् या तो वह बिना लगान दिये अपनी भूमि जोते या अपने औजारों से अपनी कार्यशाला में कार्य करे। उत्पादन के साधनों पर किसी अन्य का कोई अधिकार न हो। जितना वह स्वयं हाथ से काम कर सके उसी अनुपात में उत्पादन के साधनों पर उसका स्वामित्व होना चाहिए।

उपयुक्त सुझाव के क्रियान्वयन में अनगिनत कठिनाईयाँ हैं अतः अव्यावहारिक है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार इसे क्रियानीवत करने के लिए बड़े परिवर्तन आवश्यक है। द्वितीय सुझाव समाजवादियों का है उनके अनुसार सामाजिक विषमता के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिक स्वामित्व समाप्त करके सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व स्थापित कर दिया जाय इससे आर्थिक शोषण और विषमता का उन्मूलन सम्भव हो सकेगा। इसमें व्यक्ति सामूहिक रूप से अपने हित में कार्य करेंगे। उनके द्वारा उत्पादन उत्पादकों के लाभ के लिए नहीं किया जायेगा अपितु उत्पादन का उद्देश्य उपभोक्ता की आवश्यकता की पूर्ति करना होगा। सामाजिक स्वामित्व से तात्पर्य- सम्पत्ति पर समाज के सामान्य नियन्त्रण से है। संक्षेप में समाजवाद का मूल सिद्धान्त उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार सामाजिक पुनः निर्माण का प्रयत्न उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिक स्वामित्व की समाप्ति से प्रारम्भ होना चाहिए।

इस अवधि में जयप्रकाश नारायण मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि भौतिक बल सामाजिक और व्यक्तिगत संस्थाओं को प्रभावित करता है। मनुष्य के अच्छे और बुरे विचारों का निर्धारण उन आर्थिक परिस्थितियों से होता है जिनमें वह रह रहा है वैसा ही सोचता है। मार्क्सवादी विचारधारा में मनुष्य के विचारों, मूल्यों, आदर्शों का निर्धारण वर्ग विचारधारा और वर्ग हित से होता है। जयप्रकाश नारायण

के अनुसार समाजवाद का पहला कारण है- राजाओं, जमींदारों और पूंजीपतियों में आर्थिक असमानता के कारणों को खोजना है जिनसे मानव का शोषण होता है।

4.5 जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव

मार्क्सवाद के प्रभाव ने जयप्रकाश नारायण को पूंजीवादी व्यवस्था का शत्रु बना दिया। उनके विरोध में सोचने के लिए बाध्य किया। उन्होंने मानव की स्वतन्त्रता को अपनी चेतना, अपने विचारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वे मानव की स्वतन्त्रता में विश्वास करते हैं। जयप्रकाश नारायण आज के आधुनिक राज्य के मजदूरों के लिए बढ़ते कार्यक्षेत्र - शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य, मकान और दूसरी सेवाओं के क्षेत्र में विश्वास करते हैं। मार्क्सवाद के प्रभाव से उन्होंने माना कि -

1. पूंजीवादी समाज व्यवस्था में राज-व्यवस्था सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कोई प्रभावशाली काम नहीं कर सकती है।

2. मनुष्य के विचार और उनके सामाजिक सम्बन्ध उन आर्थिक परिस्थितियों से निर्धारित होते है जिनमें वह रहता है।

3. राज्य एक मशीन है जिससे एक वर्ग दूसरे के ऊपर शासन करता है।

वे सामाजिक और आर्थिक समानता में विश्वास करते हैं। उनके लिए समाजवाद एक सिद्धान्त होने के साथ-साथ सम्पूर्ण योजना की तकनीक भी है, इसमें सम्पूर्ण समाज के सभी पक्षों का पुर्ननिर्माण निहित है। उनका उद्देश्य एक न्यायपूर्ण और सन्तुलित समाज का विकास करना है।

भारत के साम्यवादियों के आचरण ने उन्हें मार्क्सवाद के सम्बन्ध में पुनः विचार करने के लिए बाध्य किया। भारतीय साम्यवादी दल की आन्दोलन सम्बन्धी धारणा से उन्हें घोर निराशा हुई। साम्यवादी दल स्वतन्त्र अभिकरण न होकर मास्को का औजार है। इस दल के सदस्यों की मूल भक्ति पहले सोवियत रूप से के प्रति है। न कि अन्य किसी के प्रति। स्मरणीय है कि लेनिन के बाद स्टालिन रूस का सर्वे सर्वा बना। धीरे-धीरे सत्ता उसके हाथों में केन्द्रित होती गयी। सोवियत रूस में साम्यवाद के नाम पर तानाशाही की स्थापना की गयी।

साम्यवाद ने जयप्रकाश के अनुसार-मानवीय सभ्यता को नैतिकता विहीन आधार प्रदान किया है। यह ऐसी सभ्यता है जिसमें व्यक्ति और सामाजिक जीवन का हर पहलू शासक द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। जीवन का कोई क्षेत्र उसके हस्तक्षेप से परे नहीं है। साम्यवादी समाज का जीवन अपनी ही आर्थिक और राजनैतिक संरचना और सैद्धान्तिक संयुक्तीकरण होता है जो प्राय वास्तविकता से उतना ही दूर है जितना कि दक्षिण उत्तरी ध्रुव से।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार साम्यवादियों के विचार निश्चित और एक दम साफ होते हैं। वे साम्यवादी विचारों की प्रमाणिकता के बारे में तर्क-विर्तक नहीं करते। वे निश्चित और सही होते है, प्रारम्भ में जब साम्यवादी दल में जब स्वतन्त्रता थी तब प्रतिद्वन्दी विचार पाये जाते हैं, किन्तु जब साम्यवादी पार्टी पर एक व्यक्ति का अधिनायकत्व स्थापित हो जाने पर वह सब कुछ बदल गया और साम्यवादी विचारधारा एक ऐसी शक्ति बन गयी है जिसे कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है।

जयप्रकाश नारायण का कथन है कि यदि मार्क्स आज सचमुच जीवित होता तो रूसी तानाशाही की उसने सबसे पहले निन्दा की होती। स्टालिन की नीति मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विपरीत थी। मार्क्स के अनुसार सामाजिक विकास में क्रान्ति के बाद प्रथम अवस्था समाजवाद और अन्तिम अवस्था साम्यवाद है। साम्यवाद वर्गविहीन, शोषणविहीन व एक राज्यविहीन अवस्था यही मार्क्स का सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व है। इसका सिद्धान्त है कि सभी व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य करेंगे और आवश्यकतानुसार प्राप्त करेंगे।

पूंजीवादी व्यवस्था में सत्ता बुर्जुआ वर्ग के हाथों और साम्यवाद में सत्ता नौकरशाही के हाथों में होती है। पूंजीवादी अवस्था के विनाश के बाद सत्ता श्रमिकों के हाथों में न आकर एक छोटे जन समूह के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। उस दृष्टि जयप्रकाश नारायण के अनुसार "साम्यवाद" मध्यम वर्गी समाज है। सत्ता पूंजीवादी समाज के मध्यम वर्ग के हाथों मेंआ जाती है। साम्यवादी के लिए साधन की पवित्रता का कोई मूल्य नहीं है। जयप्रकाश नारायण के शब्दों में मानव कल्याण का लक्ष्य रखने वाले द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सर्वसत्तावादी राज्य की धारणा के रूप में पतित हो चुका है। स्मरणीय है कि मार्क्सवाद ऐसा कोई ओदश नहीं देता है कि साधन की पवित्रता महत्वहीन है।

जयप्रकाश नारायण के समाने एक गम्भीर प्रश्न था कि क्या मार्क्सवाद लेनिनवाद सामाजिक क्रान्ति व समाजवादी की स्थापना के लिए पूर्ण और सुरक्षित मार्ग दर्शक बन सकता है ? उनके अनुसार "सोवियत रूस में मार्क्सवादी क्रान्तिकारी नीति के विरूद्ध मेरा मन बगावत कर उठा और मैं यह सोचने के लिए विवश हो गया हूं कि क्या अशुद्ध साधना से कभी शुद्ध साध्य की प्राप्ति हो सकती है।" पूँजीवाद के विनाश की स्थिति को ही जयप्रकाश नारायण समाजवाद नहीं मानते हैं। स्पष्ट है जयप्रकाश नारायण साम्यवादियों के सर्वाधिकारवादी रूप को व्यैक्तिक स्वतन्त्रता विरोधी होने के कारण स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

समाजवाद की स्थापना के लिए दो मार्ग है-

1. हिंसात्मक, जनक्रान्ति या क्रान्तिकारी पद्धति द्वारा।
2. शान्तिपूर्ण या लोकतान्त्रिक पद्धति द्वारा।

समाजवाद की स्थापना के सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हुए जयप्रकाश ने कहा था कि "दल की नीति की घोषणा पत्र में इस विषय के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि क्रान्तिकारी पद्धति का अर्थ केवल हिंसा और आंतक से नहीं है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि समाजवाद की स्थापना का एक मात्र सही तरीका लोकतान्त्रिक पद्धति है।" जयप्रकाश नारायण के अनुसार- समाजवाद की स्थापना दोनों ही तरीकों से हो सकती है, लेकिन किस तरीके से उद्देश्य को प्राप्त किया जाय यह सम्बन्धित देश की ऐतिहासिक, वस्तुगत परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है। भारत में वे समाजवाद की स्थापना के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति अपनाने की बात करते हैं। उन्होंने भारतीय साम्यवादी दल की हत्या, लूट आदि हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण जयप्रकाश नारायण इनके तरीकों में विश्वास नहीं करते हैं।

4.6 भारतीय समाजवाद पर जप्रकाश नारायण के विचार

जयप्रकाश नारायण के अनुसार भारत और सोवियत संघ की परिस्थितियों और वातावरण दोनों ही भिन्न है| इसलिए दोनों देशों में समाजवाद एक समान पद्धति एवं तरीकों से नहीं लाया जा सकता है।

1934 में जयप्रकाश नारायण ने अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस के 15 कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए मार्क्सवादी विचारों एवं कार्यक्रमों के बारे में बताया,

1. सभी शक्तियों का उत्पादक वर्ग को हस्तान्तरण।
2. राज्य द्वारा नियोजित एवं नियन्त्रित देश की अर्थव्यवस्था का विकास करना।
3. उत्पादन और वितरण के बड़े उद्योगों- रेल, जहाज, खनिज, खान, स्टील, काॅटन, जूट, बैंक, बीमा और जनता के उपयोगी विभागों का राष्ट्रीयकरण करना।
4. विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार।
5. आर्थिक जीवन का समाजीकृत क्षेत्र में उत्पादन वितरण और ऋण सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना।
6. राज्य और जमींदारों तथा अन्य सभी शोषक वर्गों का बिना क्षतिपूर्ति का उन्मूलन।
7. किसानों के बीच भूमि का पुनः वितरण।
8. राज्य द्वारा सहकारी एवं सामूहिक कृषि को प्रोत्साहित और प्रोउन्ति करना।
9. किसानों और मजदूरों द्वारा लिए गये ऋणों का परिसीमन।
10. श्रम करने या पोषण पाने के अधिकारों को राज्य द्वारा मान्यता।

11. आवश्यकतानुसार काम और योग्यता के अनुसार दाम के आधार पर आर्थिक वस्तुओं का वितरण और उत्पादन।

12. व्यवसाय के आधार पर व्यस्क मताधिकार।

13. राज्य द्वारा किसी धर्म का समर्थन न करना। विभिन्न धर्मों के प्रति भेदभाव न करना और जातियों और सम्प्रदायों के आधार पर भेदभाव को मान्यता न देना।

14. राज्य द्वारा स्त्री-पुरूष के बीच भेदभाव न करना।

15. भारत के तथा कथित सार्वजनिक ऋणों की अस्वीकृति।

जयप्रकाश नारायण ने कांग्रेस के उद्देश्य और कार्यक्रमों की आलोचना की है। इनके अनुसार कांग्रेस के ये उद्देश्य कार्यक्रम और ये घोषणाऐं जनता को कोई प्रतिनिधित्व पूर्ण चरित्र प्रदान कर सकती है। उनके कार्यक्रमों में कम से कम निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल होने चाहिए-

1. ब्रिटिश साम्राज्य से सम्पूर्ण स्वतन्त्रता।

2. सम्पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का उत्पादक जनता के हस्तान्तरण।

3. बड़े उद्योगों और सार्वजनिक सेवाओं का राष्ट्रीयकारण- बैंक, खान, इस्पात, बीमा आदि।

4. सभी तरह से जमींदारी प्रथा का उन्मूलन।

5. जमीन पर किसान का अधिकार।

6. किसानों और मजदूरों के सभी प्रकार के ऋणों का परिसीमन।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार जनता को राजनीतिक एवं लोकतान्त्रिक ढंग से स्वतन्त्र करना, समृद्ध एवं सुखी बनाना, सभी प्रकार के शोषण के तरीकों से मुक्त करना और विकास के लिए अनियन्त्रित अवसर देना है तो समाजवाद रूपी लक्ष्य की ओर हमें बढ़ना होगा। स्मरणीय है कि "भारत में वे सभी परिस्थितियाँ विद्यमान है जो समाजवाद की स्थापना के लिए आवश्यक है यथा निर्धनता, भूखमरी एवं अभाव, अमीर-गरीब का व्यापक भेद, बहुसंख्यक वर्ग का धनी वर्ग द्वारा शोषण, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, आर्थिक और सामाजिक विषमता।" इस प्रकार वे जनता की क्रान्ति जिसका समर्थन जनता से हो। इस सामाजिक क्रान्ति में सभी व्यक्तियों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए वे अपने विचारों को लोकतान्त्रिक तरीके से व्यक्त करें। इस प्रकार जयप्रकाश नारायण हमेशा ही स्वतन्त्रता और लोकतान्त्रिक तरीके में विश्वास करते थे, उनका कभी भी तानाशाही में विश्वास नहीं था। सोवियत संघ अनुभवों से जयप्रकाश बताते हैं कि पूंजीवाद के नष्ट करने का नाम

समाजवाद नहीं है। समाजवाद में पूंजीवाद के नष्ट होने के साथ बड़े उद्योगों का- व्यापार, बैंक, कृषि, बीमा, इस्पात, इत्यादि का राष्ट्रीयकरण भी होता है। इस प्रकार जयप्रकाश नारायण एक नये प्रकार के समाजवाद की खोज में थे। वे न केवल पूंजीवाद की बुराईयों को नष्ट करना चाहते थे बल्कि वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को समाज के सभी प्रकार के शोषणों से अक्षुण्य रखना चाहते थे। उनका उद्देश्य एक इस तरह के समाज की संरचना में (मानव मूल्यों, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातत्व के मूल्यों को खतरा पहुँचाये बिना) परिवर्तन करना चाहते थे। अतः समाजवाद के द्वारा उत्पादन के साधनों से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर सम्पूर्ण सामुदायिक स्वामित्व स्थापित कर की जा सकता है। "1940 के कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में बड़े उद्योगों पर सामूहिक स्वामित्व एवं नियंत्रण की बात की। राज्य को बड़े उद्योग- यातायात, जहाजरानी, खान इत्यादि बड़े उद्योगों पर राष्ट्रीयकरण की बात करते हैं देश का कानून जनता की स्वतन्त्र इच्छा की अभिव्यक्ति पर आधारित होगा।" राज्य समाज के वर्गों का संरक्षण करेगा परन्तु जो गरीब वर्ग है उनके भी हितों का ध्यान रखकर एक सन्तुलित सामाजिक न्याय की व्यवस्था करेगा। राज्य उद्योगों पर स्वामित्व एवं नियन्त्रण रखेगा जिसमें श्रमिक अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर अपना प्रतिनिधित्व करेंगे।

जयप्रकाश नारायण का विश्वास है कि इस व्यवस्था में सभी जातियों और सभी वर्गों के लोगों के लिए प्रसन्नता, समृद्धि और लोगों की स्वतन्त्रता रहेगी, जिससे एक महान और समृद्धिशाली राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा। जयप्रकाश नारायण ने गाँवों के पुर्ननिर्माण पर बल दिया है उन्होंने कहा कि "गाँवों का शासन स्व-संगठित और स्व-पर्याप्त इकाईयों के द्वारा चलाना चाहिए" उन्होंने सुझाव दिया है कि "भूमि वास्तविक कृषक की होनी चाहिए।" इस प्रकार वे एक सहयोगात्मक खेती करने का सुझाव देते हैं जिससे किसानों का शोषण न हो, किसानों के ऋणों का परिसीमन किया जाय।

4.7 समाजवाद के लिए रचनात्मक कार्यक्रम

जयप्रकाश नारायण के अनुसार "नियोजित और सहयोगात्मक प्रयास उद्योग और कृषि में सन्तुलन बना सकेंगे। उन्होंने अगस्त 1946 में ग्राम राज्य स्थापित करने के लिए 13 रचनात्मक कार्यक्रमों का विवरण दिया। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं-

1. गाँव के प्रत्येक व्यस्क नागरिक को कांग्रेस के सदस्य के रूप में पंजीकृत होना चाहिए।
2. सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाये चाहिए जिनसे कि साक्षरता बढ़ाने के माध्यम बने।
3. एक सेवादल का गठन किया जाना चाहिए।
4. सड़क, सफाई, नाली इत्यादि की समस्याओं को व्यवहार में लाना चाहिए जिससे सामान्य उद्देश्य के लिए सामूहिक श्रम की भावना को बल मिलता है।

5. अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए।

6. साम्प्रदायिक सद्भाव होना चाहिए।

7. मद्यपान निषेध।

8. स्थितियों का जायजा होना चाहिए।

9. शिकायतों का समाधान होना चाहिए।

10. अनाज बैंकों की स्थापना करनी चाहिए।

11. पड़ौस के गाँवों में भी प्रचार करना चाहिए।

12. सहयोगात्मक बाजार व्यवस्था।

13. बालश्रम का निषेध।

जयप्रकाश नारायण सामूहिक खेती के साथ-साथ राज्य को अपने उद्योग स्थापित करने जोर देते है। इस समाजवाद में सम्पूर्ण शक्ति राज्य के एक वर्ग के हाथों में आने की जगह सम्पूर्ण जनता के हाथों में शक्ति आ जायेगी।

4.8 लोकतन्त्र एवं समाजवाद

जयप्रकाश ने लिखा है कि लोकतन्त्र के बिना कोई समाजवाद नहीं है। समाजवादी राज्यों में एक वर्ग की तानाशाही होती है, यह हमारा गलत सोचना है, यह मार्क्स की शिक्षा के विपरीत है, एक वर्ग की तानाशाही केवल संक्रमण काल में होती है। जब पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन होता है। इस समाजवाद की अवधारणा में आर्थिक और राजनीतिक लोकतन्त्र की धारणा है। इस प्रकार के समाजवाद में मानव न तो पूंजी का दास है और न किसी पार्टी का, न किसी राज्य का दास है। इसमें मानव का स्वतन्त्र अस्तित्व है। अपने आप में उसकी एक अलग अस्मिता, एक अलग पहचान है। लोकतान्त्रिक समाजवाद शान्तिपूर्ण और क्रमिक विकास में विश्वास रखते हैं। जयप्रकाश के अनुसार

"लोकतन्त्र और समाजवाद सहगामी है"। समाजवादी विचाधारा का एक मूल स्त्रोत स्वतन्त्रता की खोज और समाज में व्यक्ति के स्व-विकास के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान करना।

समाजवाद के अन्तर्गत मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण, अन्याय, असुरक्षा नहीं रहेगी। समाजवादी समाज में सभी स्वतन्त्र और समान होंगे और वह ऐसे मानवीय सामाजिक मूल्यों पर आधारित होगा जिनका कभी भी

किसी सिद्धान्त या दलीय नीति के लिए बलिदान नहीं किया जायेगा। जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद की स्थापना लोकतन्त्र और शान्तिपूर्ण साधनों के माध्यम से ही सम्भव है। लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रताओं के अभाव में समाजवाद जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार लोकतान्त्रिक समाज में राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र किसी वर्ग को कोई विशेषाधिकार नहीं होंगे, असमानताऐं नहीं होगी। इस प्रकार के समाज में ही "मानव की स्वतन्त्रता-अवसरों की समानता और प्रत्येक नागरिक को अपने व्यक्तित्व विकास के पूर्ण अवसर मिलेंगे।"

कांग्रेस के समाजवादी दल की छटी वार्षिक 1947 सम्मेलन के जनरल सेकेटरी रिपोर्ट में जयप्रकाश नारायण ने "नैतिक मूल्यों और समाजवाद लाने के लिए अच्छे साधनों पर जोर दिया"। इस रिपोर्ट में उनके विचार मार्क्सवाद से दूर हटते दिखाई देते हैं। उन्होंने लिखा है कि "महात्मा गाँधी ने हमें बहुत सही बातों को सिखाया है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह सिखायी है कि जैसे साधन हैं, वैसे ही साध्य हैं। बुरे साधनों से कभी भी अच्छे साध्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, अच्छे साध्यों के लिए तो अच्छे साधन ही होने चाहिए। अच्छे साधनों से ही अच्छे समाज के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है, जोकि समाजवाद का लक्ष्य है।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवाद में व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वप्रथम है। लोकतान्त्रिक समाजवाद में लोकतान्त्रिक साधन, शान्तिपूर्ण तकनीक और रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा ही इस अपने उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है। समाजवादियों का उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फैंकने और एक पार्टी की तानाशाही स्थापना करना नहीं है। सामाजिक क्रान्ति की लोकतान्त्रिक अभिव्यक्तिपूर्ण स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र की दृष्टि से आवश्यक है। जयप्रकाश नारायण की यह धारणा है कि "समाजवाद की स्थापना तानाशाही से नहीं हो सकती है। पूंजीवाद को समाप्त कर दिया जाय और उद्योग, व्यापार, बैंकिंग, कृषि सभी का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, फिर भी समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमें लोग स्वतन्त्र और समान हो। इस प्रकार का समाज मानव मूल्यों और सामाजिक जीवन पर आधारित होगा। जयप्रकाश नारायण ने एक ऐसे समाज का चित्र प्रस्तुत करने की कोशिश की है " जिसमें किसी का कोई शोषण नहीं है जिसमें आर्थिक और सामाजिक समानता होगी, सभी के लिए स्वतन्त्रता होगी, सभी के लिए खुशहाली और समृद्धि होगी।"

4.9 जयप्रकाश नारायण: गाँधीवादी समाजवाद के नजदीक

1948 के आते आते जयप्रकाश नारायण गाँधी के नजदीक आये और उनका आध्यात्मिक राजनीति की ओर झुकाव बढ़ा। अब उनका मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ओर अविश्वास बढ़ने लगा। 1952 में जयप्रकाश नारायण पूरी तरह गाँधीवादी बन गये। बोध गया सर्वोदय सम्मेलन में 1954 में जयप्रकाश नाराण्ण ने सर्वोदय और भूदान के बारे में बात कहीं। नये समाज की व्यवस्था वर्ग विहीन और जाति विहीन समाज की स्थापना में

पहला प्रयास है। 1949 में वर्धा के सम्मेलन में एक सर्वोदय की रूपरेखा तैयार की जोकि गाँधीजी के राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण पर आधारित थी। हमें एक समाजवादी समाज जिसके उद्देश्य- स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व और शान्ति थे, की स्थापना ही नहीं करनी है उससे आगे सर्वोदयी समाज में परिवर्तितत करनी है जो कि वास्तव में लोगों का समाजवाद होगा। आज की प्रतियोगितावादी अर्थव्यवस्था की जगह सहयोग पर आधारित सामाजिक अर्थव्यवस्था लाने की बात करते हैं। भूदान को सम्पूर्ण क्रान्ति (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र) का पहला कदम बताया है। उन्होंने आगे कहा है कि " इस समाज में सभी का कल्याण होगा, प्रत्येक व्यक्ति इसमें प्रसन्न और खुश रहेंगे। इस प्रकार के समाज में ऊंचे और नीचे व्यक्ति का कोई भेद नहीं होगा, सभी व्यक्ति समान होंगे।"

प्रथम ऐशियाई समाजवादी सम्मेलन रंगून में जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि "गाँधी के प्रेम और शान्ति के रास्ते से ही समाजवाद लाया जा सकता है"। वे गाँधीजी के मानव परिवर्तन में विश्वास करते हैं। समाजवाद के बारे में उन्होंने कहा है कि, "समाजवाद हमेशा ही मेरे लिए एक जीवन जीने की कला है"। "1957 में उनका दलीय राजनीति के प्रति अविश्वास बढ़ा और राज्य के समाजवाद की जगह जनता के समाजवाद की बात करने लगे।"

4.10 सामुदायिक समाजवाद

जयप्रकाश नारायण के अनुसार जनता का समाजवाद (सामुदायिक समाजवाद) में शक्ति प्रवाह नीचे से ऊपर की तरह होगी, जहाँ आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होगा। प्राथमिक सामुदायिक ईकाईयों एवं स्वःसंचालित और स्व-पर्याप्त ग्रामीण ईकाईयाँ होंगी। जयप्रकाश नारायण के अनुसार राजनीतिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकेन्द्रीकरण के बिना प्रभावहीन है इस प्रकार की अर्थव्यवस्था के उद्देश्य समाज के लोगों का कल्याण करना है। इस प्रकार की सामुदायिक समाज में राज्य की भूमिका कम से कम होगी। उन दिनों जयप्रकाश नारायण साम्यवाद की तानाशाही की कल्पना के स्थान पर मानवीय मुक्ति के एक नये तत्वज्ञान की खोज में थे। अब साम्यवाद उन्हें राज्यशाही और पूंजीवाद से भी अधिक सम्पूर्ण दासता का आवाहन करने वाला प्रतीत हुआ। उन्होंने 1950 में समाजवादी पार्टी के सम्मेलन में कहा था कि " मेरा विश्वास है कि मार्क्स ने समाजवाद का जो चित्र उपस्थित किया है वह लोकतान्त्रिक समाजवाद है जिसकी स्थापना के लिए हम प्रयत्नशील है। लोकतान्त्रिक समाजवाद से ही मेहनतकश व्यक्ति मुक्त हो सकते हैं। एम.एन. राय के नये मानवतावाद ने उन्हें आकर्षित तो किया किन्तु अन्त में राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के साथ साम्यवादी या फासिस्टवादी तानाशाही के विचार के अनुसार सरकार पर ही सारा आधार रखने के बदले लोकशक्ति पर जोर देने वाली गाँधीवादी संकल्पना में उन्हें अपनी वैचारिक जिज्ञासा का समाधान मिला। जयप्रकाश नारायण का मत है कि यदि आज मार्क्स जीवित होता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने अपने को पूरी तरह पृथक कर गाँधीजी के विचारों एवं पद्धति से आँखें बन्द न की होती।

जयप्रकाश नारायण समाजवाद का एक ऐसा चित्र खींचना चाहते थे जिसमें सभी लोगों में खुशहाली और समृद्धि हो। लोगों के जीवन का संचालन स्व-शासित संस्थाओं के द्वारा शासित हो। उन्होंने शक्ति का नीचे से ऊपर की ओर प्रवाह बताया। उस व्यवस्था में शोषण और गरीबी का कोई स्थान नहीं हो सकता। सभी को विकास के समान अवसर होंगे। समाज के भौतिक और नैतिक स्त्रोतों का विकास किया जायेगा और समाज की भौतिक आवश्यकताओं के अनुसार उनका प्रयोग किया जायेगा। राष्ट्रीय सम्पत्ति, सामाजिक, शैक्षणिक और अन्य सेवाओं का जो श्रम करते हैं उनमें उपभोग के लिए समान वितरण की व्यवस्था होगी। समाज में कोई विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग नहीं होगा। सभी की स्वतन्त्रता होगी। जमींदारों, राजकुमारों एवं पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त किया जायेगा। सम्पूर्ण भूमि का पुनः वितरण किया जायेगा। जयप्रकाश नारायण के सपनों के भारत के बारे में इस प्रकार " मेरे सपनों का भारत एवं ऐसा समुदाय है जिसमें हरेक साधन, निर्बल की सेवा के लिए समर्पित अन्तोदय तथा निर्बल और असहाय की बेहतरी को समर्पित समुदाय। ऐसा वह समुदाय है जिसमें मानवता की कद्र है। जिसमें सबको बराबर के अवसर प्राप्त हैं। वह समुदाय, जिसमें शक्तिशाली बहुसंख्यक स्वयं ही निर्बल वर्ग अल्पसंख्यकों की बाधाओं को समझते हैं, वह एक ऐसा समुदाय है जिसमें हरेक साधन जनता की आवश्यकता की पूर्ति में लगा है। उन्हें पर्याप्त, भोजन, कपड़ा, मकान और पीने का पानी मुहैया करने में।

4.11 समाजवाद: जयप्रकाश नारायण एवं गाँधी

जयप्रकाश नारायण गाँधीजी के परम सहयोगी थे। वे गाँधीजी के सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता व सरलता से प्रभावित हुए। वे अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों जब वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे तब गाँधीजी के विचारों की आलोचना करते थे। 1947 के आते-आते गाँधीजी के विचारों की ओर झुकने लगे।

जयप्रकाश नारायण और महात्मा गाँधी के समाजवाद सम्बन्धी विचारों पर निम्न आधारों पर तुलना की जा सकती है। दोनों समाजवाद में राज्य की भूमिका (गाँधीजी राज्य की भूमिका को नगण्य मानते हैं जबकि जयप्रकाश नारायण राज्य की भूमिका का आवश्यक मानते हैं) के आधार पर तुलना की जा सकती है। समाजवाद लाने के साधन (ट्रस्टीशिप और सत्याग्रह) इनके लिए साधन साध्य की पवित्रता की बात की है जबकि जयप्रकाश नारायण समाजवाद लाने के लिए लोकतान्त्रिक एवं शान्तिपूर्ण साधनों, सर्वोदय और भूदान ग्रामदान की बात करते हैं।

4.12 सारांश

जयप्रकाश नारायण की विचारधारा में कई मोड़ आये। उनके विचारों में स्थायित्व का अभाव है। वे निरन्तर बदलते रहे। "वे समाज को व्यक्तियों का समूह न मानकर समुदायों का समूह मानने लगे थे। न तो समाज व्यक्तियों का समूह और न वर्ग हितों का समूह है अपितु व्यक्ति एवं वर्गहित की दृष्टियों से एक समुच्चय है सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया का नेतृत्व राज्य नहीं करेगा क्योंकि व्यक्ति की समाज में भूमिका स्वेच्छित

होगी, न कि बलात। राज्य के नेतृत्व करने पर व्यक्ति की इच्छा स्वेच्छित नहीं रहेगी। जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तो विचारों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

जयप्रकाश नारायण का समाजवादी चिन्तन मार्क्सवाद से आरम्भ हुआ जिसमें उन्होंने मार्क्सवाद के सिद्धान्त के प्रति विश्वास प्रकट किया। कालान्तर में उनके विचार लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर झुके और अन्त में उनके विचार गाँधीवाद की ओर दिखायी देते हैं। जयप्रकाश नारायण ने 'सर्वोदय' को समाजवाद का सर्वाधिक यथार्थ और शुद्ध स्वरूप बताया और यह माना कि सर्वोदय केवल समाजवाद की वैकल्पिक पद्धति ही नहीं है बल्कि एक नवीन मानवीय संस्कृति का आरम्भ माना। उन्होंने सर्वोदय "लोक समाजवाद" की स्थापना करने के लिए एवं मानव की समस्त समस्याओं की मुक्ति करने के लिए तथा नवीन सामाजिक दर्शन के लिए गाँधीवादी सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया।

4.13 अभ्यास प्रश्न

1. समाजवाद की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए।
2. जयप्रकाश नारायण के समाजवाद सम्बन्धी विचार किन-किन से प्रभावित हैं, स्पष्ट कीजिए?
3. भारतीय समाजवाद पर जयप्रकाश नारायण के विचारों को समझाइये।
4. जयप्रकाश नारायण एवं गाँधी के समाजवाद सम्बन्धी विचारों को समझाइए।
5. सामुदायिक समाजवाद की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ दीक्षित, गाँधीजी की चुनौती कम्यूनिजम को (नवजीवन प्रकाशन मन्दिर) अहमदाबाद, 1974
2. रामजी सिंह, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1986
3. देव, नरेन्द, समाजवाद का मूल आाधार मानवता, पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1946
4. धर्माधिकारी, दादा, सर्वोदय दर्शन, अखिल भारतीय सेवा संघ,काशी, 1957
5. लोहिया, राम मनोहर, मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिस्म, नवहिन्द, हैदराबाद, 1938.
6. नम्बूदरीपाद, ई.एम., द महात्मा एण्ड इज्म, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, 1959
7. प्रसाद, उपेन्द्र, गाँधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2007

इकाई – 1

गाँधी एवं लोहिया

इकाई रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सामाजिक परिवर्तन

5.3 गाँधी के प्रति दृष्टिकोण

5.3.1 सत्याग्रह और गाँधी एवं लोहिया

5.3.2 साधन-साध्य का सिद्धान्त और गाँधी एवं लोहिया

5.3.3 छोटी-मशीनी-तकनीक और गाँधी एवं लोहिया

5.3.4 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और गाँधी एवं लोहिया

5.4 गाँधी एवं लोहिया के विचारों में अन्य अंतर

5.4.1 आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों के संबंध में विचार

5.4.2 धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण के संबंध में विचार

5.4.3 संस्था बनाम व्यक्ति का महत्व

5.4.4 कृषकों-मजदूरों द्वारा सत्याग्रह

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास प्रश्न

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे:-

- गाँधी एवं लोहिया के राजनीतिक विचार
- गाँधी एवं लोहिया के आर्थिक व्यवस्था संबन्धी विचार
- गाँधी एवं लोहिया के सामाजिक और धर्म संबन्धी विचार

5.1 प्रस्तावना

राम मनोहर लोहिया का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के अम्बेडकर नगर जिला स्थित अकबरपुर गांव में 23 मार्च 2010 को हुआ। उनके पिता का नाम हीरालाल और माँ का नाम चंदा था। अपने पिता के सानिध्य में लोहिया ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना प्रारम्भ किया। उनके पिता हीरालाल महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त थे और एक मीटिंग के अवसर पर, जहाँ महात्मा गाँधी भी आने वाले थे, वे राम मनोहर लोहिया को साथ ले गये। यहीं राम मनोहर लोहिया गाँधी से इतना ज्यादा प्रभावित हुए कि उन्होंने महात्मा गाँधी का अनुयायी बनने का निर्णय लिया। तब वे लगभग दस वर्ष के थे और तभी से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने लगे। इसी दौरान वे नेहरू के संपर्क में आए और उन दोनों में प्रगाढ़ मित्रता विकसित हुई।

बनारस हिन्दू विश्विद्यालय से इंटरमीडियेट पास कर उन्होंने बी. ए. कल्कत्ता विश्विद्यालय से पूरा किया और बाद में जर्मनी के बर्लिन विश्विद्यालय दर्शन शास्त्र के अध्ययन हेतु गए। लोहिया ने अपनी पी.एच. डी. महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ नमक आंदोलन पर किया जिसमें उन्होंने गाँधी के सामसजिक-आर्थिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला।

जर्मनी से लौटने के बाद वे पुनः स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय हुए। समाजवादी विचारों से प्रभावित, लोहिया ने समाजवादी कांग्रेस पार्टी की नीव 1934 में डाली। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ करने के हरिजन मे छपे लेख के लिए उन्हे बन्दी बनाया गया। महात्मा गाँधी ने उनके लिए कहा था " मै अब तक उससे ;लोहियाद्ध ज्यादा निडर और सरल व्यक्ति को नही जानता। उन्होंने कभी भी हिंसा का प्रचार नहीं किया। दन्होंने जो कुछ भी किया ;हरिजन मे छपा उक्त लेखद्ध ने उनका मान-सममान बढ़ाया ही है।" 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में बहुत सक्रिय भूमिका निभायी और कांग्रेस के शीर्ष नेताओं के बन्दी बनाये जाने पर स्वतंत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाया।

वे महात्मा गाँधी की तरह न केवल हिंसा के विरूद्ध और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे बल्कि भारतीय ग्रामों को सशक्त बनाकर एक सुदृढ़ भारत निर्माण करने के पक्षधर थे। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक और और भारत विभाजन योजना के विरोधी थे। गाँधी की तरह ही जब भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ तो लोहिया भी भारत में फैले भीषण साम्प्रदायिक दंगों को रोकने और अहिंसा और अमन स्थापित करने के लिये गाँधी के साथ अथक प्रयास में संलग्न थे।

युवाओं से विशेष स्नेह और उन्हें निरन्तर देश-प्रेम और सेवा के लिए प्रेरित करना लोहिया की विशेष रूची थी। वे जीवन भर अविवाहित रहे और धन और उपभोगतावादी प्रवृत्तियों से प्रथक रहे। 12 अक्टूगर 1967 को उनका दिल्ली में निधन हुआ और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने न तो कोई सम्पत्ति छोड़ी और न ही किसी बैंक में उनका खाता था जिसमे पैसा जमा हो।

5.3 गाँधी के प्रति दृष्टिकोण

लोहिया गाँधी से बहुत प्रभावित थे। सन् 1920 में लोहिया ने गाँधी के असहयोग आन्दोलन के आव्हन् पर स्कूल छोड़ दिया था। लोहिया ने लिखा है: सन् 1919-20 में गाँधी की पहली असहयोग की पुकार पर मेरी उम्र के 9 या 10 वर्ष के विद्यार्थियों ने स्कूल छोड़ दिया था। मेरे पिता मुझे गाँधी के पास ले गये, उस घटना के सम्बन्ध में मुझे इतना याद है कि मैंने उनके पैर छूए और उन्होंने मेरी पीठ थपथपायी।.........मैंने गाँधीजी के सिवाय अपने परिवार के बाहर वाले व्यक्तियों में कभी किसी के पांव नहीं छूए।"

लोहिया के अनुसार वर्तमान सदी में दो बड़े मौलिक आविष्कार हुए। एक महात्मा गाँधी का उद्गम तथा दूसरा अणुबम की खोज। किन्तु उन्होंने अणुबम की अपेक्षा गाँधी को अधिक महत्व दिया, क्योंकि गाँधी केवल अन्याय का प्रतिकार है, वहां अणुबम अन्याय का प्रतिकार भी है और अन्याय करने वाला भी है, अर्थात अणुबम सकारात्मक भूमिका के साथ नकारात्मक भूमिका भी निभाता है, जबकि गाँधी में सकारात्मक भूमिका प्रमुख है। किन्तु लोहिया ने चेतावनी दी गाँधी का नाम आज धूमिल होता जा रहा है तथा उसके सिद्धान्त लोकजीवन से दूर होते चले जा रहे हैं। अगर यही प्रक्रिया चलती रही तो भारत पाश्चात्य तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं की प्रतिलिपि मात्र रह जायेगा और एक "निजी भारतीय" समाजवादी व्यवस्था, जिसका कि आधार गाँधीवाद हो सकता है, का निर्माण कर पाना असंभव होगा। लोहिया ने पुरजोर शब्दों में मांग की कि भारत के समाजवाद का यह प्रमुख कृत्य है कि वह गाँधी के परिष्कृत सिद्धान्तों को वैचारिक एवं व्यावहारिक आधार के रूप में अपनाये। लोहिया ने गाँधी के चिन्तन के चार प्रमुख मुद्दों-सत्याग्रह, साधन-साध्य का सिद्धान्त, छोटी-मशीनी-तकनीक तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण-में अपनी सहमति व्यक्त की।

5.3.1 सत्याग्रह और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह के सिद्धान्त में लोहिया ने विश्वास प्रकट किया। लोहिया के अनुसार यूरोप परिवर्तन के केवल दो प्रकार के साधनों-संसदीय साधन तथा क्रान्तिकारी साधन-से ही परिचित है। लोहिया के अनुसार गाँधी ने हमें सत्याग्रह के रूप में तीसरा विकल्प सुझाया। इस संदर्भ में गाँधीवाद की देन का विवेचन करते हुए, लोहिया ने लिखा है: ‘‘बुराई के विरोध के लिए जनता के सिद्धान्त के रूप में पूरे इतिहास में गाँधी-वाद की कोई सानी नहीं है। सिविल-नाफरमानी व्यक्तिगत आदत और एक सामूहिक निश्चय में, दोनों ही रूपों में एक सशक्त विचार है, इसके अतिरिक्त और कोई भी चीज या तो एक कमजोर विचार है अथवा अनुचित शक्ति। यह सिविल-नाफरमानी गाँधीजी की मानवता की एक देन है।’’ लोहिया ने संसदीय तथा क्रान्तिकारी साधन-दोनों प्रकार के साधनों की अपूर्णता का उल्लेख किया। संसदीय साधनों की अपूर्णता का विवेचन करते हुए लोहिया ने कहा: ‘‘मेरा विश्वास है कि संसद हमेशा ही परिवर्तन की संतोषजनक ऐजेन्सी सिद्ध नहीं हो सकती। विशेषकर तीसरी दुनिया में जहाँ दो-तिहायी जनता दुःख दारिद्रय से जकड़ी हुयी है। वहां संसदीय तरीके अक्सर अपर्याप्त ही होंगे।’’ जहाँ तक क्रान्तिकारी साधनों का प्रश्न है लोहिया ने उसको भी उतना ही निरर्थक माना। खूनी क्रान्ति द्वारा न परिवर्तन स्थायी होता है और न ही परिवर्तन का उपयुक्त लक्ष्य प्राप्त कर सकते है।लोहिया ने अन्यायपूर्ण कानूनों तथा समाज में व्याप्त अत्याचारों का विरोध करने के लिए गाँधी द्वारा रखे गये अहिंसात्मक नागरिक अवज्ञा के सिद्धान्त को स्वीकृति दी।

गाँधी के सत्याग्रह के सिद्धान्त पर लोहिया की सैद्धान्तिक सहमति होते हुए भी दोनों की चिन्तन संरचनाओं में दो तात्विक अन्तर दिखायी देते है। प्रथम, गाँधी ने अपने सत्याग्रह दर्शन को नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने सत्याग्रह का आधार ईश्वर, सत्य तथा धर्म को माना। सत्य के संदर्भ में उन्होंने कहा: ‘सत्याग्रह का आधार सत्य है। वह एक ऐसा अस्त्र है, जिसका प्रभावकारी उपयोग केवल वे ही कर सकते है, जो कभी रक्तपात पर विश्वास नहीं रखते।’’ गाँधी के अनुसार सत्याग्रही के पीछे ईश्वर की शक्ति हैं, जिसके कारण ही वह अत्याचारी तथा आततायी की निर्दय शक्ति को सहन करता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी कि जो सत्याग्रही सत्य, ईश्वर तथा धर्म में विश्वास नहीं करेगा, उसे अन्ततः असफलता ही हाथ लगेगी। गाँधी के शब्दों में: ‘सत्याग्रही का बल ईश्वर ही है.........वह बाहरी बल पर भरोसा नहीं रखता, ईश्वर पर विश्वास भीतरी शक्ति है। इसलिए जो उसे नहीं मानता, वह अंत में हारेगा।’’दूसरी तरफ लोहिया ने सत्याग्रह-सिविल-नाफरमानी-के प्रति कोई नैतिक आग्रह प्रकट नहीं किया और न ही यह माना कि इसकी असफलता का कारण ईश्वर, सत्य तथा धर्म में विश्वास का न होना हैं। लोहिया ने सिविल-नाफर-मानी के सिद्धान्त की पूर्ण निरपेक्ष अर्थ में व्याख्या की। द्वितीय लोहिया ने सिविलनाफरमानी-नागरिकअवज्ञा-अहिंसात्मक हड़ताल तथा धरना आदि में तो आस्था प्रकट की, किन्तु उपवास-जिसे कि गाँधी की सत्याग्रह योजना में एक महत्वपूर्ण साधन माना गया-में लोहिया का कोई विश्वास नहीं था। गाँधी ने उपवास को ‘सत्याग्रह का आग्नेय अस्त्र’ कहा, जो कभी निष्फल नहीं जा

सकता।" हालाकि गाँधी ने माना कि उपवास का उद्देश्य स्वयं सत्याग्रही की आत्मशुद्धि भी हैं। उपवास द्वारा अपने को कष्ट देकर सत्याग्रही स्वयं अपने दोषों तथा अपनी भूलों को सुधार सकता है।परन्तु उपवास के प्रति उनका आग्रह सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक अत्याचार के विरूद्ध सत्याग्रह के साधन के रूप में ही था। उपवास की प्रभावशीलता के विषय में अपने व्यक्तिगत अनुभावों का उल्लेख करते हुए गाँधी ने लिखा: "भारत और दक्षिणी अफ्रीका में मेरा बार-बार यही अनुभव रहा है कि यदि उपवास का सही ढंग से प्रयोग किया जाये तो यह सर्वाधिक प्रभावशाली उपाय है। साधारण लोग केवल हृदय की भाषा ही समझते हैं और पूर्णतः निस्वार्थ होकर किया गया उपवास हृदय की भाषा है।"

लोहिया की उपवास में कोई आस्था नहीं थी तथा इस प्रश्न पर अशोक मेहता तथा आचार्य नरेन्द्र देव भी लोहिया के निकट हैं, किन्तु जय-प्रकाश नारायण ने उपवास में पूर्ण सैद्धान्तिक व्यक्त की। 14 जुलाई 1952 को अपने तीन सप्ताह के अनशन को समाप्त करते समय अपने अनशन पर टिप्पणी करते हुए जयप्रकाश ने कहा: "जैसे-जैसे उपवास के दिन गुजरते गये, उपवास आत्मशुद्धि के बलिदान के रूप में विकसित होता गया और प्रतिदिन नयी आन्तरिक शक्ति मिली तथा कभी-कभी अप्रत्याशित अनुभव हुए। प्रारम्भ में मैं आत्मशुद्धि के रूप में कोई कार्य करने का दावा करने से हिचकिचाता था। अपना व्यक्तित्व इतनी कमियों और बुराइयों से भरा हुआ था कि कम से कम सार्वजनिक रूप से आत्म-शुद्धि की बात करना आत्म-श्लाघा प्रतीत होती थी। लेकिन मुझे इसमें राव साहब, अच्युत पटवर्धन और डॉ. दिनेश मेहता के द्वारा मार्ग दर्शन और प्रोत्साहन मिला...........मैं यह कह दू कि उपवास मेरे लिए आत्म-शुद्धि का अनुभव रहा।" दूसरी तरफ लोहिया ने गाँधी तथा जयप्रकाश द्वारा किये जाने वाले अनशनों की आलोचना की तथा स्पष्ट शब्दों में कहा कि राजनीतिक उद्देश्य प्राप्ति के साधन के रूप में हम उपवास को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि इसके द्वारा होने वाला लाभ साधन की शुद्धता के आधार पर नहीं बल्कि जनता द्वारा अपनी स्वस्थ इच्छाओं को दबाकर किये गये सहयोग के कारण होता है। बम्बई के कपड़ा मजदूरों की मांगों के समर्थन में जयप्रकाश द्वारा किये गये अनशन पर लोहिया ने अशोक मेहता के साथ एक संयुक्त वक्तव्य में कहा: "हमने जुलाई 1942 में गाँधी के प्रस्तावित अनशन और उसकी गलती के सम्बन्ध में गाँधीजी से तीन बार भेंट की थी। बिना उपवास के आध्यात्मिक या राजनीतिक उपयोग को स्वीकार किये ही हम गाँधीजी को एक तर्क बताना चाहेंगे कि अगर उनके अनशन का फल लाभप्रद हुआ तो वह उनकी व्यक्तिगत योग्यता के कारण नहीं वरन् जनता से मिलने वाले सहयोग के कारण होता है..........जयप्रकाश कहते हैं कि उनका उपवास पूर्णतः व्यक्तिगत प्रश्न है। लेकिन शरीर को होने वाली हानि को देखकर जनता अपनी स्वस्थ भावनाओं को दबाकर ही अविचलित रह सकती है।" हालांकि लोहिया का उपवास में सैद्धान्तिक विश्वास नहीं था किन्तु उन्होंने कभी भी बल-प्रयोग का समर्थन नहीं किया। किन्तु उनसे भिन्न नरेन्द्र देव ने अनशन की अपेक्षा बल प्रयोग को ज्यादा प्रभावशाली साधन बताया। उन्हीं के शब्दों में: "मैं सामान्यतः अनशन का विरोधी हूं। अनशन की अपेक्षा बल प्रयोग मैं कहीं ज्यादा अच्छा समझता हूं। ऐसे बहुत कम अवसर हैं, जब अनशन का प्रयोग ठीक समझा जा सकता है। पार्टी के लोग बहस करते समय तो कहेंगे कि

अनशन का मार्क्सवाद में स्थान नहीं है किन्तु अवसर आने पर जिसको देखिये वही अनशन कर बैठता है और पार्टी को परेशानी में डाल देता है कि यह चीज हवा में है और हवा से बचना मुश्किल है।” ये दो तत्व हैं, जो सत्याग्रह के प्रश्न पर गाँधी तथा लोहिया के चिन्तन में कुछ अन्तर ला देते है। अतः स्पष्ट है कि लोहिया द्वारा गाँधी के सत्याग्रह को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उसे भिन्न रूप दिया।

5.3.2 साधन-साध्य का सिद्धान्त और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी द्वारा प्रस्तुत साधन-साध्य-सातत्य सिद्धान्त में लोहिया की पूर्ण आस्था थी। जौन बोन्दुरां के शब्दों में: “गाँधी का सबसे बड़ा आग्रह लक्ष्यों और साधनों में उचित सम्बन्ध की स्थापना करने पर है।” गाँधी के अनुसार यदि हम अच्छे लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं तो बुरे साधनों के द्वारा उन्हें कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे साधन होंगे वैसी ही लक्ष्य की प्राप्ति होगी। उन्हीं के शब्दों में, जैसे साधन होंगे वैसी ही उपलब्धि होगी। साधनों और परिणामों के बीच उन्हें एक दूसरे से अलग कर देने वाली, कोई दीवार नहीं है...........अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति ठीक उसी मात्रा में होती है, जिसमें अच्छे साधनों का प्रयोग किया जाये। यह एक ऐसा सत्य है, जिसका अपवाद हो ही नहीं सकता।” साधन-साध्य के सम्बन्ध में गाँधी बार-बार यह दोहराते थे कि मेरे जीवन में साधन-साध्य पर्यायवाची शब्द है। गाँधी के पूर्ण समान रूप से लोहिया ने भी यही माना कि साधन-साध्य अन्तर्परिवर्तनिय है। थोड़े समय के लिए साधन, साध्य होते हैं, तथा लम्बे समय में साध्य, साधन बन जाते हैं। लोहिया ने पूर्णतः गाँधी की भाषा में बोलते हुए कहा कि जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। बुरे साधनों द्वारा अच्छे साध्य की कल्पना नहीं कर सकते। लोहिया के शब्दो में:”सत्य की विजय झूंठ से, स्वास्थ्य की प्राप्ति हत्याओं से, एक राष्ट्र द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति दूसरे राष्ट्र की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को खत्म करके, प्रजातन्त्र की प्राप्ति तानाशाही द्वारा कदापि संभव नहीं हैं।”

प्रत्येक कार्य के औचित्य सिद्ध करने वाले तथा भविष्य को वर्तमान से जोड़ने वाले गाँधी के “वन स्टेप इनफ् फॉर मी” के सिद्धान्त में लोहिया ने विश्वास प्रकट किया। लोहिया ने उन लोगों की आलोचना की, जो तात्कालिकता के सिद्धान्त को अस्वीकार करके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते हैं, अर्थात् तात्कालिक साधन के औचित्य की अपेक्षा दूरवर्ती लक्ष्य को तरफ देखते हैं। उनके अनेसार “आज विश्व भविष्य के बारे में काफी सोचने लगा है, भविष्य के बारे में लक्ष्य चाहे कुछ भी निर्धारित किये जायें, किन्तु वर्तमान का बलिदान अवश्य हो जाता है। व्यक्ति अपने द्वारा तुरन्त उठाये जाने वाले कदमों की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं देता है, अतः सामूहिक जीवन में कुछ सदेहास्पद स्थिति पैदा हो जानी है। जब यह पूछा जाता है कि एक तत्कालीन तथा विशेष कार्य लक्ष्य से किस प्रकार जुड़ा हुआ है तो बताया जाता है कि “अगले कार्य तक इंतजार करों”, जब वह अगले कार्य तक इन्तजार करता है तो उससे फिर कहा जाता है “फिर अगले कार्य तक इन्तजार करों”, इस तरह कार्यों की श्रृंखला बढ़ती जाती है और एक कार्य भी अपने आप में औचित्यपूर्ण नहीं होता। इनका औचित्य निरन्तर आगे आने वाले कार्यों से सिद्ध किया जाता है जो कभी आता ही नहीं और इस तरह श्रृंखला

बढ़ती चली जाती है। सत्य व विश्वशान्ति के नाम पर दुष्टता, भ्रष्टता अपना घेरा बनाती जाती हैं।" लोहिया के अनुसार सुन्दर भविष्य की प्राप्ति के लिए वर्तमान को अस्वीकार कर देना भ्रम है। अतः लोहिया ने गाँधी द्वारा व्याख्यापित "वन स्टेप इनफ् फॉर मी" के सिद्धान्त पर जोर दिया, जो कि भविष्य को वर्तमान से अर्थात् साध्य को साधन जोड़ता है।

5.3.3 छोटी-मशीनी-तकनीक और गाँधी एवं लोहिया

गाँधी के चिन्तन का तृतीय पक्ष जिसे कि लोहिया ने सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया, छोटी-मशीनी-तकनीक था। लोहिया का मानना था कि भारत जैसे अविकसित देश में जहाँ मानव-शक्ति की बहुल्यता तथा लागत पूंजी की कमी है, वहां छोटी-मशीनी-योजना पर ही देश विकास कर सकता है। किन्तु इस संदर्भ में लोहिया का दृष्टिकोण गाँधी से कहीं ज्यादा उदार था। गाँधी की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु-चरखा था। उनके अनुसार वृहद् उद्योगों का आधार शोषण है। अतः शोषणमुक्त व्यवस्था स्थापित करने में प्रधान वस्तु चरखा है और उसी को धुरी बनाकर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जगह-जगह दूसरे उद्योग चलाये जाये। हिन्द स्वराज्य में गाँधी ने हर तरह की मशीनों का विरोध किया। दूसरी तरफ लोहिया ने गाँधी से भिन्न लघु-मशीनों को तेल तथा विधुत शक्ति से संचालित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। छोटी-इकाई-सिद्धान्त के बारे में गाँधी से तुलना करते हुए लोहिया ने कहा:"हम महात्मा गाँधी का भूत नहीं चाहते, उसका सिद्धान्त चाहते हैं।" गाँधी की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए लोहिया ने कहा: "गाँधीवाद की ....आर्थिक विचारधारा ने विश्व के किसी भी तबके को विशेष प्रभावित नहीं किया है। पिछड़े हुए देशों के लोगों के लिए यह एक उपहास है और विकसित लोगों के लिये एक मजाक। लोहिया ने माना कि हांलाकि भारतीय अर्थव्यवस्था में चरखे के महत्व को अस्वीकार नहीं कर सकतें, किन्तु उसे औद्योगिक व्यवस्था का आधार नहीं कह सकते। लोहिया के शब्दों में:"यद्यपि चरखा क्षण-भंगुर नहीं है, फिर भी यह शाश्वत तो नहीं। आवश्यकता है कि गाँधीजी की विचारधारा को तत्काल क्रिया के लिए पूर्ण समर्थ, इस तरह का बनाया जाये कि दीर्घकालीन-क्रियात्मकता को भी उतना ही योग दे सके।

5.3.4 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और गाँधी एवं लोहिया

अन्तिम सिद्धान्त जिसे कि विचारधारा के आधार पर लोहिया ने गाँधीवादी से स्वीकारा है, राजनीतिक सत्ताका विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त है।गाँधी का मानना था कि केन्द्रीकरण का तात्पर्य हिंसा की क्रियान्विति है। अहिंसा व्यावहारिक रूप में तभी प्रभावकारी रह सकती है, जबकि विकेन्द्रीकृत व्यवस्था हो। केन्द्रीयकृत व्यवस्था में मानव गौण पड़ जाता है तथा उसकी स्वतन्त्रता एवं प्रतिष्ठा गिर जाती है। गाँधी ने कहा: "राज्य वह सबसे अच्छा है, जहाँ शासन कम से कम होता है।" गाँधी की भांति लोहिया ने भी माना कि केन्द्रीयकरण

प्रशासकीय क्षमता के प्रतिकुल है। विकेन्द्रीकरण प्रशासकीय शाखाओं में नयी शक्ति भर देता है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व की वृद्धि के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करता है।

5.4 गाँधी एवं लोहिया के विचारों में अन्य अंतर

जैसा कि पीछे संकेत दिये जा चुके है, ऐसा नहीं है कि लोहिया ने गाँधी के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता अर्थात् अन्धभक्ति का प्रदर्शन किया हो। बहुत से ऐसे मुद्दे है, जिन पर लोहिया ने गाँधी से भिन्न मत अपनाया:-

5.4.1 आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों के संबंध में विचार

गाँधी के चिन्तन में आध्यात्मिक तथा पारलौकिक तत्वों-ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म आदि-की प्रमुखता है। ईश्वर की उपस्थिति को उन्होंने विश्व रचनामूलक, कारणमूलक तथा प्रयोजनमूलक व्यक्तियां देकर सिद्ध करने की कोशिश की। ईश्वर के सम्बन्ध में अपने मत को स्पष्ट करते हुए गाँधी ने कहा: "मैं स्पष्ट देखता हूं कि जहाँ मेरे चारों तरफ प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील है, सदा मृत्य है, जो सबको एक साथ पकड़े हुए है, जो रचना करती है, विनाश करती है और पुनः निर्माण करती है। वह सर्वात्तर निर्मात्री शक्तियाँ आत्मा ईश्वर है।" ईश्वर की भांति गाँधी ने आत्मा की अमरता, कर्मवाद तथा पुनः जन्म में भी विश्वास व्यक्ति किया। दूसरी तरफ जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, लोहिया का ईश्वर, आत्मा तथा पूर्नजन्म में कतई विश्वास नहीं है, जो कि गाँधी के चिन्तन के मुख्य आधार हैं। एक बार गाँधी ने लोहिया से पूछा था कि क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो? इस बात पर लोहिया ने उत्तर "नहीं" में दिया था। तब गाँधी ने शंका व्यक्त करते हुये कहा कि तुम (लोहिया) कभी भी अच्छे सत्याग्रही नहीं बन सकते। हांलाकि लोहिया ने राम, कृष्ण, शिव, गणेश आदि पौराणिक तत्वों का प्रयोग अवश्य किया, किन्तु गाँधी की भांति उन्होंने उन्हें केवल भारतीय समाजवादी मानस को विकसित करने के प्रतीक रूप में ही स्वीकार किया।

5.4.2 धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण के संबंध में विचार

गाँधी ने धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण पर जोर दिया। उन्होंने धर्म और राजनीति में कोई अन्तर नहीं माना। गाँधी के शब्दों में: "मेरा जीवन धर्म के सहारे चल रहा है। मैं कह चुका हूं कि मेरी राजनीति का उद्गम स्थल भी धर्म ही है। मेरी राजनीति और धर्मनीति में कोई अन्तर नहीं"। विश्व का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि राजनीति सदैव छल, कपट, हिंसा, क्रुरता, अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि दुर्गुणों पर आधारित रही हैं। अच्छा राजनीतिज्ञ उसे माना जाता है, जो उचित-अनुचित साधनों द्वारा अपने देश के हित की रक्षा कर सके। किन्तु गाँधी राजनीति को सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का एक साधन बनाना चाहते थे। केवल स्वार्थ पर आधारित राजनीतिज्ञ उसे माना जाता है, जो उचित-अनुचित साधनों द्वारा अपने देश के हित की रक्षा कर सके। किन्तु गाँधी राजनीति को सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का एक साधन बनाना चाहते थे। केवल स्वार्थ पर

आधारित राजनीति को वे धर्म के विरूद्ध मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि इस प्रकार की राजनीति अन्ततः मानव-जाति के लिए घातक होगी। इसी कारण व्यापक अर्थ में धर्म को राजनीति के लिए अनिवार्य मानते हुए गाँधी ने कहा: "मैं यह नहीं मानता कि धर्म का राजनीति से कोई वास्ता नहीं है। धर्म रहित राजनीति शव के समान है, जिसे दफना देना ही उचित है। सच तो यह है कि आप अपने तरीके से चुपचाप राजनीति को काफी प्रभावित करते हैं और मुझे ऐसा लगता है कि यदि राजनीति को धर्म से विच्छिन्न कर देने का प्रयत्न नहीं किया गया होता, जैसाकि आज भी किया जा रहा है, तो जिस हद तक राजनीति का पतन हुआ दिखाई पड़ रहा हैं, वह उस हद तक न गिरती।"

जहाँ तक लोहिया का सम्बन्ध है, उनके चिन्तन में भी धर्म की अवधारणा को काफी महत्व मिला है। लोहिया ने माना कि दोनों की-धर्म और राजनीति की-जड़ एक ही है। धर्म दीर्घकालीन राजनीति है, राजनीति अल्पकालीन धर्म है। किन्तु गाँधी से पूर्णतः भिन्न उन्होंने राजनीति है, राजनीति तथ धर्म के सम्मिश्रण को कभी भी स्वीकार नहीं किया। लोहिया ने कहा कि धर्म तथा राजनीति के मिलन से उसका सैद्धान्तिक पक्ष तो नष्ट हो जाता है तथा व्यावहारिक रूप से वह साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेता है। उन्हीं के शब्दों में: "धर्म और राजनीति के दायरे अलग रखना अच्छा है।............धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं। किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति से कभी नहीं मिलाना चाहिए। इसी से साम्प्रदायिक कट्टरता जनमती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और कट्टरता से बचें।" लोहिया के अनुसार धर्म का उद्देश्य अच्छायी तथा राजनीति का बुराई का अन्त करना होता है। किन्तु दोनों स्थितियों में फर्क है। धर्म तथा राजनीति के मिश्रण के फलस्वरूप यह फर्क बढ़ जाता है तथा एक दूसरे से सम्रपक टूट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न सामाजिक प्रश्नों के प्रति धर्म यथास्थिति का समर्थक बन जाता है तथा राजनीति का स्वरूप झगड़ालू बन जाता हैं।

5.4.3 संस्था बनाम व्यक्ति का महत्व

लोहिया ने संस्था की कीमत पर कभी भी मनुष्य को अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना। जबकि दूसरी तरफ, गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बहुत सी बार ऐसे हस्तक्षेप किये जो यह प्रमाणित करते हैं कि उन्होंने स्वयं संस्था को कोई महत्व नहीं दिया। उदाहर्णार्थ सन् 1939 में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी के सम्मुख गाँधी द्वारा तैयार किये गये अन्य प्रस्तावों के साथ दक्षिणी अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा गया। लोहिया ने इस प्रस्ताव में दो संशोधन पेश किये-प्रथम, दक्षिणी अफ्रीका में "ब्रिटिश भारतीय" की अपेक्षा भारतीयों को केवल भारतीय ही कहा जाये, चाहे वे दक्षिणी अफ्रीका में रहें या भारत में। द्वितीय, दक्षिणी अफ्रीका में सभी शोषित वर्गों का एक संयुक्त मोर्चा कायम हो, चाहे वे भारतीय, नीग्रों, अरब तथा अन्य देशों के गरीब लोग हों। इन प्रस्तावों पर कांग्रेस-कार्यकारिणी ने स्वीकृति दे दी। किन्तु, गाँधी ने इन पर "वीटो" कर दिया और कांग्रेस द्वारा दुबारा उसी मूल प्रस्ताव को पास करा लिया गया। चूंकि लोहिया का आग्रह किसी खास व्यक्ति विशेष की

अपेक्षा संस्था पर अधिक था, अतः उन्होंने नेहरू की इस राय की सशक्त शब्दों में आलोचना की कि, “गाँधी की सम्मति का आदर करना चाहिए।” इसके विपरीत गाँधी ने कांग्रेस कार्यकारिणी को उनकी व्यक्तिगत राय मान लेने के लिए धन्यवाद दिया।

ट्रस्टीशिप आर्थिक सिद्धान्त

गाँधी के आर्थिक सिद्धान्तों में ट्रस्टीशिप की मान्यता को प्रमुख स्थान मिला है। जैसा कि स्वयं गाँधी ने लिखा है कि “मेरा ट्रस्टीशिप या संरक्षणकर्ता का सिद्धान्त कोई चीज नहीं है, जो काम निकालने के लिए आज घड़ लिया गया हो। अपनी मंशा को छिपानें के लिए खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगिज नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे, तब भी यह रहेगा।” पूंजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित है, इसका एक विकल्प यह भी हो सकता है कि सम्पत्ति को सरकारी नियन्त्रण में रखा जाये। किन्तु गाँधी के अनुसार यह समस्या का उचित समाधान नहीं है, क्योंकि राज्य का आधार हिंसा पर आधारित है। अतः विकल्प यही है कि पूंजीपति लोग स्वेच्छा से अपनी पूँजी के न्यासधारी बन जायें, ताकि समाज के निम्न वर्गो की भलाई और कल्याण हो सके। गाँधी के अनुसार ट्रस्टीशिप के आधार पर एक तरफ पूंजीवादी शोषण से बच सकते हैं तथा दूसरी तरफ हिंसायुक्त सरकारी नियन्त्रण से। गाँधी के शब्दों में: “जितना धन फालतू है उस सबको स्वेच्छा से समर्पित कर देने के अलावा पूंजीपतियों के पास कोई चारा भी नहीं है, जिससे उन्हें एक ओर सबकी असली खुशी हासिल हो सके और दूसरी और वह उस आसन्न अराजकता को रोक सके जो समय रहते न जगाने के कारण करोड़ों अज्ञ और भूखे लोगों के उठ खड़े होने पर सारे देश में छा जायेगी और जिसे देश की शक्तिशाली सरकार की सेनायें भी नहीं टाल सकेंगी।” दूसरी तरफ लोहिया ने ट्रस्टीशप के सिद्धान्त में कोई विश्वास व्यक्त नहीं किया। प्रथम, लोहिया ने माना कि गाँधीजी का यह सिद्धान्त नैतिक उपदेश से ज्यादा नहीं है। व्यवहार में यह कदापि संभव नहीं है कि पूंजीपति स्वेच्छा से अपनीपूंजी का त्याग कर देंगे। “किसी नैतिक उपदेशक की अपील चाहे वह कितनी ही प्रभावी क्यों न हो, इसका सार्थक परिणाम नहीं निकल सकता.................हजारों, लाखों पूंजीपतियों को अपनी सम्पत्ति के ट्रस्ट के रूप में नहीं बदल सकते।” द्वितीय, लोहिया के अनुसार, ट्रस्टीशिप के द्वारा गाँधी की आर्थिक समानता की कल्पना भी सार्थक नहीं हो सकती। इस दृष्टि से गाँधीजी की ट्रस्टीशिप का मूल्यांकन करते हुए लोहिया ने लिखा है: “सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार नष्ट करने वाला मार्ग कई बातों की वजह से वास्तविकवादिता है। प्रथम तो आम लोगों को इसके कारण बहुत आशायें रहती हैं। वे एक ऐसे समय की आशा करने लगते हैं जब मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण न हो सकेगा। इसकी वजह से वे मौजूदा वक्त के शासक समाज से डरते नहीं। ट्रस्टीशिप के तरीके से जनता के दिल में न तो ऐसी आशा ही पैदा हो सकती है और न ऐसी निर्भीकता, क्योंकि ट्रस्टी या संरक्षक उसकी निगाह में एक ऊंचा आदमी और मालिक के समान रहेगा ही। ऊंचे या मालिक की भावना के कारण मनुष्य की शक्तियां पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं रह सकेंगी............ दूसरे, सम्पत्तिशालियों से संघर्ष करने वाला मार्ग मानव समाज और उसकी प्रकृति से ऐक्य

रखता हैं। यह गैर मुमकिन है कि सम्पत्तिशाली मनुष्य ट्रस्टीशिप-केवल संरक्षक बने रहने-के लिए राजी किये जा सकें और फिर उनके विरूद्ध अहिंसात्मक लड़ाई से तो उनको और भी अनेक कारण मिल जायेंगे।............तीसरे, सम्पत्ति से निजी स्वामित्व का अंत और उसके सामूहित स्वामित्व का उद्देश्य हमारे सामने भावी समाज का एक ठीक-ठीक स्वरूप दर्शित करता हैं। इसके जरिये हम एक ऐसे समाज के विषय में अच्छी तरह विचार कर सकते हैं कि वह समाज कैसे अपने उत्पादन के तरीकों को जारी रखेगा। इस स्कीम में एक ऐक्य है, जबकि गाँधीजी को ट्रस्टीशिप, जो कि छोटी और बड़ी अनेक तरह की होगी, हमारे सम्मुख एक ऐसे समानताहीन समाज और कार्यों की तस्वीर लाता है, जिसके अनेक स्वरूप होंगे।"

5.4.4 कृषकों-मजदूरों द्वारा सत्याग्रह

लोहिया ने कहा कि गाँधी ने कृषकों-मजदूरों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया। इसी करण गाँधी ने इस वर्ग को सत्याग्रह का अधिकार नहीं दिया। हालांकि इस सदर्भ में गाँधी का कहना था कि किसानों-मजदूरों को सत्याग्रह प्रयोग का अधिकार दिये बिना ही इनमें इसके प्रति जागरूकता तथा इसके प्रशिक्षण की बात करना गलत है। लोहिया के अनुसार गाँधी को अपने सत्याग्रह के अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों के घेरे में किसानों-मजदूरों को भी सम्मिलित करना चाहए। तभी यह संभव होगा कि समाज के सभी वर्गों में गत्यात्मकता पैदा की जाये। जैसा कि लोहिया ने लिखा है कि: "गाँधीजी और समाजवादीयों की नीति में अन्तर है। दोनों ही जनता की लड़ाई के पक्ष में हैं, लेकिन दोनों सत्याग्रहों के बीच में गाँधीजी अनेक रचनात्मक कार्यक्रमों से-जैसे चरखा, गांव के उद्योग-धन्धे, हरिजनोद्वार आदि में-जनता को संगठित और मजबूत करेगें। इसके विपरीत समाजवादी किसानों और पहले से ज्यादा मजदूरों की मांगों को मनवाकर-जनता को अधिक शक्तिशाली बनायेंगे। ये दो तरह के कार्यक्रम अभी तक विरोधी समझे गये हैं और अपना-अपना प्रचार करने के लिए लोगों ने एक की निन्दा की है और दूसरे की प्रशंसा। लेकिन दोनों ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं और देश में अपनी जड़े जमा चूके हैं। क्या यह बिल्कुल असंभव है कि हम उन्हें एक दूसरे के पूरक समझें? बहुत सी गलतियों और सोचने-विचारने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि वे एक दूसरे के पूरक हैं और इससे संयुक्त मोर्चा ही मजबूत न होगा, बल्कि देश व्यापी आन्दोलन को भी सहायता मिलेगी।"

5.5 सारांश

राम मनोहर लोहिया गाँधी के अनुयायी थे। परन्तु गाँधी और लोहिया की चिन्तन संरचनाओं में कुछ अन्तर हैं, जो सिद्ध करते हैं कि लोहिया ने गाँधी के प्रति कभी अन्धभक्ति का प्रदर्शन नहीं किया। हालांकि लोहिया ने अपने भारतीय समाजवाद के आधार के रूप में गाँधीवाद को स्वीकारा, किन्तु वे उसे गाँधीवाद की प्रतिलिपि नहीं बनाना चाहते थे। अतः गाँधीवाद से कुछ तत्व स्वीकार करते हुए भी लोहिया ने अपना मौलिक स्वरूप बनाये रखा।

लोहिया ने पूंजीवाद तथा मार्क्सवाद से भिन्न अपनी एक निजी वैचारिक व्यवस्था विकसित करने का प्रयत्न किया। लोहिया ने पूँजीवाद तथा मार्क्सवाद-दोनों ही व्यवस्थाओं की निरर्थककता सिद्ध करके समाजवाद को एक नया आधार प्रदान किया। हालांकि लोहिया ने उदारवाद से स्वतन्त्रता की धारण, मार्क्सवाद से "रोटी की पूर्ति" की धारणा तथा गाँधीवादी से विकेन्द्रीकरण और छोटी-मशीनी-तकनीकी, आदि तत्वों को लिया। किन्तु उन्होंने इन वैचारिक व्यवस्थाओं से ये तत्व निर्देशन रखाओं के रूप में ही लिये, जबकि उनका रूपान्तरण पूर्णतः निजी-भारतीय परिवेश के अनुकुल था। लोहिया का प्रयास तो एक ऐसी व्यवस्था का सृजन करना रहा, जो कि विश्व की दो-तिहायी जनता के लिए आधार बन सके तथा उन्हें "समानता तथा समृद्धि" की और ले जा सके। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या लोहिया इस तरह की व्यवस्था विकसित करने में सफल हो पाये? इस संदर्भ में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनकी वैचारिक व्यवस्था की सैद्धान्तिक प्रस्थापनायें, जिन पर वह आधारित है, औचित्यपूर्ण सिद्ध होती हैं, साथ ही तीसरे विश्व, विशेषकर भारतीय व्यावहारिक स्थिति में भी सार्थक सिद्ध हो सकती हैं।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. लोहिया के गाँधीवादी विचारों का परीक्षण कीजिए।
2. राजनीतिक विचार के क्षेत्र में लोहिया और गाँधी के विचारों का नुल्नात्मक परीक्षण कीजिए।
3. आर्थिक और सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र संबंधी विचारों में लोहिया और गाँधी कहाँ तक वैचारिक मतैकता रखते हैं?

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन: दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थोट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

इकाई – 6

भीमराव अम्बेडकर

इकाई रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जीवन परिचय

6.3 सामाजिक विचार

6.4 धार्मिक विचार

6.5 राजनीतिक विचार

6.5.1 राज्य एवं शासन का स्वरूप

6.5.2 लोकतंत्र

6.5.3 राष्ट्रवाद

6.6 आर्थिक विचार

6.6.1 जातिगत व्यवसायों का विरोध

6.6.2 राज्य समाजवाद

6.6.3 सामुदायिक खेती

6.6.4 औद्योगीकरण

6.7 अम्बेडकर और गाँधी

6.8 सारांश

6.9 अभ्यास प्रश्न

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- अम्बेडकर का जीवन तथा कृतित्व।
- अम्बेडकर के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक विचार।
- जाति प्रथा तथा अस्पृश्यता उन्मूलन के प्रति लिये अम्बेडकर का योगदान।
- गाँधी तथा अम्बेडकर के विचारों में समानता और अंतर।

6.0 प्रस्तावना

भारत में प्राचीन काल से ही समय-समय पर समाज तथा धर्म सुधार आन्दोलन होनते रहे है। जिसका नेतृत्व बुद्ध महावीर या मध्यकालीन संतों ने किया। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप एक बार फिर धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों का दौरा शुरू हुआ। ब्रिटिश काल में हुये सुधारकों में भीमराव अम्बेडकर एक ऐसे चिन्तक थे जिन्होंने भारतीय समाज की जाति व्यवस्था तथा दलित समस्या को नये आयाम दिये।

यहां हम भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन के विभिन्न पक्षों से परिचित होंगे लेकिन विशेष तौर पर हम यह जान पायेंगे कि किस प्रकार उन्होंने राजनैतिक आजादी के समानान्तर सामाजिक समानता तथा न्याय के प्रश्न को प्रासंगिक और ज्वलन्त बनाया। अम्बेडकर ने सामाजिक समाज एवं हिन्दू धर्म में व्याप्त विषमताओं को न स्वयं भोगा था अपितु इसका गंभीर, तार्किक एवं विवेकपूर्ण अध्ययन कर इसके उद्भव एवं कारणों को खोजकर, निदान प्रस्तुत किया था। जाति व्यवस्था में सुधार ही नहीं इसकी समाप्ति को ही वे प्रजातांत्रिक समाज की आधारशिला मानते थे।

हम अम्बेडकर के धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विचारों की प्रासंगिकता को समझेंगे। अम्बेडकर के समान ही गाँधी भी अस्पृश्यता को समाप्त कर समरस समाज के निर्माण में विश्वास करते थे किन्तु दोनों चिन्तकों में

गहरे मतभेद थे। दोनों के विचारों के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में हम समानता तथा प्रजातंत्र पर आधारित समाज की स्थापना के प्रयासों के बारे में इस इकाई के अन्तर्गत हम अध्ययन कर सकेंगे।

6.1 जीवन परिचय

बीसवीं सदी के प्रमुख समाज सुधारक, राजनेता तथा दलितमुक्ति के दार्शनिक भीमराव अम्बेडकर का जन्म 1891 में महाराष्ट्र की अस्पृश्य महार जाति में हुआ था। उन्होंने निःषक्तजनके सामाजिक तथा धार्मिक अधिकरों के लिए संघर्ष के साथ सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। 1927 में पानी के सार्वजनिक उपयोग के लिए उन्होंने महाड सत्याग्रह किया और 1928 में भारत आये, साइमन कमीशन से दलितों के लिए शैक्षणिक सुविधाओं की मांग की। 1930 में अम्बेडकर ने दलित नेता के रूप में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया और 1932 में दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल की मांग पर महात्मा गाँधी के साथ पूना समझौता किया। समानता पर आधारित समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत अम्बेडकर ने 1938 में मुम्बई विधान सभा में खोती (जमींदारी प्रथा) की समाप्ति के लिए विधेयक पेश किया। वे स्त्री तथा श्रमिकों के अधिकारों के लिए भी प्रयत्नशील रहे।

संविधान प्रारूप लेखन समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में आपने "हिन्दू कोड बिल" प्रस्तुत किया, लेकिन कट्टवादियों के विरोध के कारण असफलता मिली जिसके परिणास्वरूप मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। दलितों के प्रति सवर्णों के दृष्टिकोण में अपेक्षित बदलाव न पाकर 1956 में हिन्दू धर्म छोड़कर अम्बेडकर ने अपनी मृत्यु से पूर्व बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

6.2 सामाजिक विचार

19 वीं सदी से ही भारतीय समाज सुधार के लिये प्रयास किये जा रहे थे, लेकिन अम्बेडकर के प्रयास इन सबसे भिन्न थे। अम्बेडकर ने सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन का विकल्प दिया। समाज सुधार को वे दो अर्थों में देखते थे। पहला - पारिवारिक सुधार तथा दूसरा समाज का पुनर्गठन। विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि पारिवारिक सुधार की श्रेणी में आते हैं तो ऊंच-नीच , छूआछूत , वर्णभेद एवं जातिभेद मिटाना समाज सुधार की श्रेणी में। उनका मानना था कि समाज सुधार के बिना सच्ची राष्ट्रीयता का उदय सम्भव नहीं है। वे सामाजिक अत्याचार की तुलना में राजनीतिक अत्याचार को नगण्य मानते थे और समाज का विरोध करने वाले समाज सुधारक को सरकार का विरोध करने वाले राजनीतिज्ञ को ज्यादा साहसी। इसीलिए उन्होंने समाज सुधार बनाम राजनैतिक चेतना के पुराने सवाल को उठाया जिसको लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में दो धड़े रहे थे और कांग्रेस में समाज सुधार वाले पक्ष की पराजय को वे दुर्भाग्यपूर्ण मानते थे।

अम्बेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त - जातिवाद, ब्राह्मणवाद, छूआछूत आदि पर तीखे प्रहार किये और कहा कि समाज व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करने के लिए सामाजिक सुधार मात्र नहीं, समाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। जातिप्रथा उन्मूलन, दलितोत्थान तथा अस्पृश्यता निवारण अम्बेडकर के सामाजिक विचार के केन्द्र में है।

जीवन के कटु अनुभवों से अम्बेडकर ने सीखा था कि भारत में सामाजिक असमानता की जड़ जाति व्यवस्था है। जाति व्यवस्था से स्वयं पीड़ित अम्बेडकर ने उसके उद्गम स्वरूप तथा नष्ट करने के उपायों पर शोधपूर्ण आंकलन प्रस्तुत किया। अम्बेडकर का मानना था कि समाज व्यक्तियों से नहीं वर्गों के मिलने से बनता है और जब समूह के बाहर विवाहों के स्थान के अन्दर असगोत्र विवाह की प्रणाली चलने लगती है तो वर्ग जाति में बदल जाते है। भारत में भी इतिहास के किसी युग में पुरोहित वर्गों ने अपने को समाज से अलग एक जाति में बन्द कर लिया जिसका अन्य वर्गो ने भी अनुसरण किया और परिणामस्वरूप कई जातियों का जन्म हुआ। वे इस धारणा में विश्वास नहीं करते थे कि जाति प्रथा के उद्गम का उद्देश्य प्रजाति तथा रक्त की शुद्धता की रक्षा करना था, क्योंकि उनके अनुसार भारत की विभिन्न प्रजातियों के रक्त और संतति के आपस में मिलने के बहुत बाद में जाति प्रथा का जन्म हुआ। अम्बेडकर इस बात को नहीं मानते थे कि विधि व्यवस्था के प्रणेता मनु ने जाति व्यवस्था का निर्माण किया। उनका कहना था कि कोई व्यक्ति चाहे कितना ही शक्तिशाली हो, जाति व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सकता था। हाँ मनु ने जाति के विद्यमान नियमों को संहिताबद्ध करके उन्हें धार्मिक तथा दार्शनिक आधार अवश्य प्रदान किया।

अम्बेडकर का मानना था कि वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज रचना हिन्दू धर्म द्वारा स्वीकृत है क्योंकि यह व्यवस्था इस सिद्धान्त पर आधारित है कि ईश्वर ने मानव को अपने भिन्न-भिन्न अंगों से पैदा किया है। ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से तथानिशक्तजनपैरों से पैदा हुआ है। ईश्वरीय शरीर के अंगों की प्रतिष्ठा के अनुसार ही वर्ण एवं जाति की सामाजिक प्रतिष्ठा होती है। उनका कहना था कि हिन्दू समाज इसी आधार पर जाति व्यवस्था की इस्पाती चैखट में बंधा हुआ है जिसमें एक जाति सामाजिक प्रतिष्ठा में दूसरी से नीचे है और अपने स्थान के अनुपात में प्रत्येक जाति के विशेषाधिकारी निषेध और असमर्थतायें है। अम्बेडकर के अनुसार जाति का आधार जन्म होने के कारण व्यक्ति के कार्य एवं योग्यता का कोई स्थान नहीं है अतः ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति समानता तथा न्याय की उम्मीद नहीं कर सकता।

अम्बेडकर के अनुसार जाति का आधार जन्म होने के कारण व्यक्ति के कार्य एवं योग्यता का कोई स्थान नहीं है अतः ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति समानता तथा न्याय की उम्मीद नहीं कर सकता। समुदाय विशेष के व्यक्ति को छूने मात्र को पाप समझने वाले हिन्दू धर्म पर कटाक्ष करते हुये उन्होंने कहा था कि हिन्दू अपनी मानवतावादी भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है और प्राणी मात्र के प्रति उनकी आस्था अद्भुत है। कुछ लो ग तो विषैलें सांपों को

भी नहीं मारते। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि जो हिन्दू पशु पक्षियों सहित प्राणिमात्र के प्रति उदार है, वे मनुष्यों (दलितों) के प्रति इतना अनुचित तथा निर्दयता पूर्ण व्यवहार क्यों करते हैं?

निःषक्तजन के साथ पूरे देश में सवर्णों द्वारा किये गये अमानवीय व्यवहार के कई शब्दचित्र अम्बेडकर ने उकेरे। जैसे पेशवा के शासन काल में निःषक्तजन को उस सड़क पर नहीं चलने दिया जाता था जिस पर सवर्ण आते जाते थे ताकि उनक साये से सवर्ण का धर्म भष्ट न हो जाय। पेशवाओं की राजधानी पूना में निःषक्तजन को अपनी कमर में झांडू बांध कर चलना पड़ता था ताकि जिस जमीन पर वे चलें, वह झांडू से साफ होती रहे और सवर्ण हिन्दू उस पर चल कर भ्रष्ट न हो। इसी प्रकार इन्दौर राज्य में निशक्तजन बलाई जाति की स्त्रियों को सोने के आभूषण, रंगीन या फैंसी बोर्डर वाली धोती पहनने की मनाही थी क्योंकि इससे संवर्ण जातियों का अपमान होता था।

निःषक्तजन की उपरोक्त दशा के लिये अम्बेडकर की निगाह में ब्राह्मणवाद भी उतना ही जिम्मेदार था जिसने कि हिन्दू धर्मशास्त्र। उनका मत था कि समाज की सारी गतिविधियों के संचालन का सर्वाधिकार अपने पास सुरक्षित रखकर बाह्मणों ने सारे विशेषाधिकारों को अपने लिये सुरक्षित रख लिया और समाज के अन्य वर्गों का क्षैतिजी आधार पर वर्गीकरण करके शूद्रों को सारे अधिकारों से वंचित कर दिया।निशक्तजनको सम्पति अर्जित करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि वे सवर्णो पर निर्भर न रहे, उन्हें विद्या प्राप्त करने से रोका गया कि कहीं ऐसा ना हो कि अपने हितों के प्रति सजग हो जएं। उसके लिये शस्त्र धारण करना निषिद्ध था कि कहीं ऐसा न हो कि वह उनकी सता के विरूद्ध विद्रोह करने में समर्थ हो जाय। उनके मानस में कूट-कूट कर यह भरा गया था कि निशक्तजन के रूप में जन्म लेना ही उनके भाग्य में लिखा था।

ब्राह्मणों द्वारा संचालित एवं नियंत्रित जाति व्यवस्था में निःषक्तजन के लिये किये गये विधान तथा उसके परिणामस्वरूप उनकी जो उपराक्त दयनीय स्थिति हुई, उसकी के कारण अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद को मानवता के दमन की तकनीक तथा षड़यत्र कहा था।

अम्बेडकर ने तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट कर किया कि जाति प्रथा ने भारत की बहुत बड़ी संख्या को स्थायी रूप से अपाहित बना दिया था। दलित समस्या से व्यथित और आन्दोलित उनके मननशील मन को एक सवाल हमेशा मथना रहता था कि दुनिया के दूसरे देशों में दमन तथा शोषण के विरूद्ध क्रान्तियाँ हुयी लेकिन भारत में क्यों नहीं हुयी? अपने इस सवाल का उसके पास जवाब भी था, और वह यह कि चतुर्वर्ण व्यवस्था के कारण निम्न जातियां शक्तिहीन हो गयी थीं। शिक्षा शास्त्र, शस्त्र, संस्कृति एवं सम्पति से वांछित यह वर्ग विद्रोह नहीं कर सकता था।

प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित नवीन भारतीय समाज के निर्माण के लिए वे जाति एवं छूआछूत प्रथा को समूल नष्ट करने का आहवान करते थे। इसके लिए उन्होंने बहुआयामी प्रयास किये। सर्वप्रथम वे चाहते थे कि दलित समुदाय स्वयं अपने उत्थान के लिए सुधार, प्रयास, संघर्ष और संगठन का परिचय दे।

उन्होंने निःषक्तजनको वे सब काम करने की मनाही की जो वे हजारों सालों से करते आ रहे थे लेकिन जिन्हें अपवित्र माना जाता था जैसे मरे हुये पशुओं को फेंकना, उनकी खाल निकालना, उनका मांस खाना, सवर्ण स्त्रियों की प्रसूति करना तथा गंदे कपड़े धोना, मलमूत्र साफ करना आदि। उन्होंने दलितों को धार्मिक कर्मकाण्ड, पाखण्ड तथा भाग्यवादी सोच त्याग कर कर्मठ एवं संघर्षशील बनने की प्रेरणा दी।

उनका मत था कि निःषक्तजनसे हिन्दूओं को किसी प्रकार का कोई डर नहीं है और न ही अस्पृश्यता को समाप्त करने से उन्हें कोई लाभ हो सकता है अतः शूद्रों के उत्थान के लिए बहार से किये गये प्रयासों का उन्होंने सदैव शंका की दृष्टि से देखा। उनका कहना था कि स्वयं के विरूद्ध होने वाले अन्यायों की समाप्ति तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए दलितों को स्वयं के विरूद्ध होने वाले अन्यायों की समाप्ति तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए दलितों को स्वयं भय रहित तथा एकजुट होकर संघर्ष करना होगा।

बहिकृत हितकारिणी सभा नामक संस्था की शुरूआत अम्बेडकर ने रचनात्मक कार्यों से की लेकिन आगे चलकर उन्होंने इसे दलितोत्थान के लिए विरोध, आन्दोलन तथा सीधी कार्यवाही का मंच बना दिया। दलितों को सार्वजनिक सुविधाओं (तालाब, कुँआ आदि) के उपयोग तथा मंदिर प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए महाड़ सत्याग्रह एवं अम्बादेवी मंदिर (अमरावती) कालामंदिर (नासिक) प्रवेश हेतु आन्दोलन किये।

वे जानते थे कि सदियों से विशेषाधिकारों का उपयोग करने वाले सवर्ण हिन्दू स्वेच्छा से दलितों को समानता का अधिकार नहीं देगें अतः वे स्वतंत्र भारत के संविधान में ऐसे प्रावधान चाहते थे जिनसे जातिगत विभेद एवं अस्पृश्यता पर आधारित दमन एवं शोषण पर रोक लगायी जा सके तथा पीड़ित वर्ग अत्याचारों से अपनी रक्षा कर सके। उल्लेखनीय है कि अम्बेडकर को अपने इन प्रयासों में महत्वपूर्ण सफलता मिली।

दलितों के समान ही भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति भी दासों जैसी थी। उनका कहना था कि स्त्रियों के पतन के लिए सतीप्रथा, बालविवाह कन्या वध, विधवा विवाह, निषेध जैसी कुप्रथाओं को जिम्मेदार मानना समस्या को सतही तौर पर देखना है। वे इन सारी समस्याओं की जड़ जाति प्रथा एवं ब्राह्मणवाद को मानते थे। उनका मत था कि जिस जाति में बाल विवाह, कठोर वैधव्य और सती प्रथा का जितना अधिक प्रचलन होगा, उनका स्तर उतना ही ऊँचा माना जायेगा। इसी दृष्टि से पेशवा के शासन काल में महाराष्ट्र में पठारे, प्रभु समुदाय ने विधवा विवाह पर पाबन्दी लगाकर अपनी जाति का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास किया तो पेशवाओं ने ऐसा न करने के लिए हस्तक्षेप किया था।

वे स्त्री तथा दलित दोनों को ब्राह्मणवादी दमन चक्र का शिकार मानते थे जिसे आगे चलकर मनु ने राज्य कानून के रूप में बदल दिया। जो लोग चातुर्वण्य के आधार पर भारतीय समाज का पुनर्गठन करना चाहते थे उनसे अम्बेडकर का यही सवाल था कि क्या वर्ण विभाजन स्त्रियों पर भी लागु होगा? वे ऐसे प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना चाहते थे जिसमें मानव मात्र को गरिमा, सम्मान और समानता के आधार पर जीवन यापन का हक हो। यही कारण है कि उन्होंने दमित मानवता के उत्थान का बीड़ा उठाया, फिर वह निशक्तजन हो या स्त्री। वे दलित महिला की इस पीड़ा के कर्म को भी समझते थे कि वह दोहरे शोषण का शिकार है -एक स्त्री होने के कारण और दूसरा-दलित होने के कारण।

अम्बेडकर जानते थे कि पुरातनपंथी समाज स्वेच्छा से स्त्रियों को समानता का दर्जा नहीं देगा अतः दलितों के समान ही वे कानून द्वारा स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे। आजाद भारत में इसी उद्धेश्य से उन्होंने कानून मंत्री की हैसियत से "हिन्दू कोड बिल" प्रस्तुत किया। इस विधेयक में विवाह की आयु सीमा बढ़ाने, स्त्रियों को तलाक का अधिकार देने, मुआवजा तथा विरासत के अधिकार के साथ-साथ दहेज को स्त्रीधन मानने को सुझाव दिये गये थे किन्तु राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में कटट्रवादियों के विरोध के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका और अम्बेडकर ने विधि मंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए मनुवादी व्यवस्था में बदलाव न कर पाने के बावजूद न्याय पर आधारित समाज की रचना के लिए अम्बेडकर का नारा था - एकता, शिक्षा और आन्दोलन। साथ ही उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों के सहयोग के बिना एकता अर्थहीन है, स्त्रियों की शिक्षा के बिना शिक्षा फलहीन है और स्त्रियों की शक्ति के बिना आन्दोलन अधूरा है।

अम्बेडकर इस बात को जानते थे कि राज्य द्वारा समानता का अधिकार प्रदान कर देने के बावजूद यदि दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति उदासीन बना रहा तो सामाजिक न्याय का सपना कागजी तथा कानूनों में ही बना रहेगा, यथार्थ नहीं बन पायेगा। वे औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा द्वारा दलित वर्ग में जागृति तथा आत्मबल पैदा करना चाहते थे, ताकि दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति व्यग्र हो उठे।

उनके लिए शिक्षा केवल साक्षरता का नाम अपितु सामाजिक परिवर्तन का हथियार थी। वे जन्माधारित वर्ण-जाति, सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों, गरीबी की भाग्यवादी अवधारणा आदि को समाप्त करने के लिए ऐसे व्यक्तियों के समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे जो प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण तो करे लेकिन तर्क की कसौटी पर कसने के बाद।

उनका मत था कि अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना राज्य का दायित्व है। अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होने पर ही साधन-सुविधा तथा सम्पत्तिहीन दलित को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सकता है। वे शिक्षा को ऐसा औजार मानते थे जिसकी मदद से दासता की जड़ों को काटकर सामाजिक

समानता, आर्थिक उन्नति एवं राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की जा सकती है। दलितों को शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्होंने 'पिपुल्स एजुकेशन सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की थी। उनका कहना था कि शिक्षा ही निःषक्तजनमें सवर्णों के समकक्ष खड़ा होने का साहस पैदा कर सकती है।

6.4 धार्मिक विचार

अम्बेडकर मानव जीवन में धर्म तथा नैतिकता के महत्व को स्वीकार करते थे। लेकिन भारतीय सामाजिक संरचना जिसे धर्मशास्त्रों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी थी उस भारतीय समाज में धर्म के नाम पर समाज में व्याप्त असमानता, अत्याचार, छूआछूत तथा पाखण्डों के वे विरोधी थे। इसी संदर्भ में उन्होंने एक सामाजिक क्रान्तिकारी के रूप में प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना के लिए हिन्दू धर्म को समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुता के अनुरूप बदलने की अपील की।

धर्म के सम्बन्ध में अम्बेडकर की अपनी कुछ मान्यतायें थी। उनके अनुसार एक नैतिक बोध होने के कारण धर्म प्रत्येक समाज की नियामक सिद्धान्त होना चाहिये अर्थात् धर्म एवं नैतिकता पर आधारित होना चाहिए और विवेक विज्ञान का ही दूसरा नाम है। उनका आग्रह था कि धर्म के नाम पर प्रचलित अंध विश्वासों तथा परस्पराओं को तर्क की कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

उनका तर्क था कि धर्म के मूल्य तथा सिद्धान्त सार्वभौमिक होते हैं, वे अपने अनुयायियों में भेद नहीं करते। लेकिन हिन्दू धर्म शास्त्रों द्वारा मान्यता प्राप्त अस्पृश्यता का प्रतिकार करते हुये उन्होंने कहा कि धर्म नैतिक संहिता में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातत्व के मूल सिद्धान्तों को शामिल किया जाय अन्यता धर्म दण्ड का प्रतिरूप बन जायेगा। वे धर्म को ऐसे जीवन मूल्य के रूप में स्थापित करना चाहते थे जो व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच सम्मान तथा गरिमामय सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हो और वह सिद्धान्तों पर आधारित हो सके तथा नियमों पर नहीं, क्योंकि उनके अनुसार, सिद्धान्त निरपेक्ष, दायित्व बोध से युक्त एवं विवेक सम्मत होते हैं जबकि नियम सापेक्ष, व्यावहारिक एवं परम्परा पर आधारित होते हैं।

अम्बेडकर का मत था कि आध्यात्मिक सिद्धान्त के रूप में धर्म शास्त्रों ने एक ओर जाति भेद तथा अस्पृश्यता के नाम पर बड़ी संख्या में मनुष्यों को वंचित, अपेक्षित और दास बना दिया है वहीं दूसरी ओर, एक अन्य वर्ग, ब्राह्मण को सर्वाधिकार सम्पन्न बना दिया है। इसी आधार पर उनका मानना था कि हिन्दू धर्म स्वयं समाज में एकता के स्थान पर अलगाव को प्रोत्साहन देता है। जो धर्म मानव मानव के बीच भेद करता है, अपने ही अनुयायियों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के अधीन रहने के लिए बाध्य करता है, वह धर्म नहीं अपितु मानवता का अपमान है।

हिन्दू धर्म में व्याप्त कमजोरियों तथा बुराईयों को दूर कर अम्बेडकर एक जीवन्त तथा समता मूलक धर्म के रूप में संगठित करना चाहते थे। वे बर्फ के इस कथन से सहमत थे कि सच्चा धर्म समाज की बुनियाद होता है जिसके आधार पर सच्ची हूकूमत बनती है तथा जनता एवं सरकार दोनों फूलती-फलती हैं। इसके लिए उन्होंने हिन्दू धर्म के विद्यमान स्वरूप पर पुनर्विचार कर उसके विवेक सम्मत पुनर्गठन का प्रस्ताव किया। उनके द्वारा सुधार के लिए निम्न सुझाव दिये गयेः

1. हिन्दू धर्म का युगानुरूप कोई सैद्धान्तिक आधार हो जो समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुता के अनुरूप हो। इसके लिए उपनिषदों के चिन्तन को आधार बनाया जा सकता है।

2. हिन्दू यह पता लगाने का प्रयास करें कि संसार में किस प्रकार की नैतिकता, आस्था तथा दृष्टिकोण वाले लोगों ने उन्नति और दृढ़ता हासिल की है।

3. यह विचार किया जाय कि हमें अपनी सम्पूर्ण सामाजिक धरोहर सुरक्षित रखनी है या उसमें जो उपयोगी हो उसे चुनकर भावी पीढ़ियों को सौंपा जाये।

4. अतीत के समस्त आदर्शों की आंख मूंद कर पूजा करने के बजाय वर्तमान युग में उत्तम उपयोगी एवं उन्नति के शिखर पर ले जाने वाले आदर्शों का पूजा जाय।

5. हिन्दूओं को मान लेना चाहिए कि संसार में कुछ भी स्थिर, शाश्वत अथवा सनातन नहीं है। व्यक्ति तथा समाज के लिए परिवर्तन जीवन का नियम है अतः बदलते हुये समय में पुराने मूल्यों में सतत तथा क्रान्तिकारी बदलाव आना चाहिए।

उनका मानना है कि हिन्दू धर्म को सर्वाधिक नुकसान ब्राह्मणवाद ने पहुँचाया है जो जन्म तथा जाति भेद पर आधारित है अतः हिन्दू धर्म में वांछित बदलाव तथा सुधार के लिए वे पुरोहितशाही पर नियंत्रण चाहते थे। उनके अनुसार पुरोहित एक व्यवसाय मात्र है और किसी व्यवसाय का नियंत्रण होना उसकी उन्नति का द्योतक है। हिन्दू पुरोहित परम स्वतंत्र है, उस पर कोई पाबंधी नहीं है। मूर्ख , कदाचारी, नशेबाज और जुआरी होने पर भी वह पवित्र संस्कार कराने तथा देव पूजा के योग्य समझा जाता है। उनकी एक मात्र योग्यता है ब्राह्मण के घर जन्म लेना। वह राज अथवा समाज नियम के अधीन नहीं होता अम्बेडकर ऐसी पुरोहित शाही को समाज एवं धर्म के लिए हानिकारक मानते थे। इसलिए उनका विचार था कि न केवल कानून द्वारा पुरोहिती के व्यवसाय पर नियंत्रण स्थापित किया जाय बल्कि इस पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को समाप्त कर निश्चित योग्यता के आधार पर इसके द्वारा सब लोगों के लिये खुले जाये। ऐसा होने पर ही हिन्दू धर्म जाति एवं ब्राह्मणवाद से मुक्त प्रजातांत्रिक धर्म बन सकता है।

अम्बेडकर का दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू समाज में विद्यमान असमानता, शोषण दमन तथा जातिभेदकारी व्यवस्था की जड़ में धार्मिक मान्यताएं है अतः उन्होंने जीवन के लम्बे दौर में इन बुराईयों से संघर्ष किया। उन्होंने विवेक, तर्क तथा मानवता के आधार पर हिन्दू धर्म एवं समाज का पुनर्गठन करने के लिए अथक प्रयास किये किन्तु सवर्णों के दृष्टिकोण में उन्हें कोई प्रभावकारी असर दिखाई नहीं दिया। अब उन्हें हिन्दू समाज में प्रजातांत्रिक आधार पर बदलाव की कोई उम्मीद नहीं दिखाई दे रही थी। इसीलिये उन्होंने धर्म परिवर्तन के निश्चित की घोषणा कर दी।

उनका बौद्ध धर्म के इन तीन सिद्धान्तों में विश्वास था - प्रज्ञा (विवेक), समता तथा करूणा या प्रेम। उनका मानना था कि भारतीय हिन्दू धर्म में ये तीनों सिद्धान्त दृष्टिगत नहीं होते, जो समानता पर आधारित हैं अतः बौद्ध धर्म में ही दलितों को सम्मान तथा समानता का दजौ मिल सकता है। लम्बे विचार के बाद अक्टूबर 1956 में बौद्ध धर्म अंगीकर करने की घोषणा करते हुये अम्बेडकर ने कहा था कि असमानता तथा दमन पर आधारित अपने पुराने धर्म को त्याग कर वे दुबारा जन्मे हैं।

6.5 राजनीतिक विचार

मूलतः अम्बेडकर सामाजिक न्याय के पुरोधा थे। उन्होंने राज्य सम्बन्धी सैद्धान्तिक पक्षों पर विस्तृत और व्यवस्थित विचार नहीं रखें, तथापि वे एक उदारवादी नेता थे। उन्होंने राज्य, शासन, व्यक्ति एवं अधिकार आदि के विषय में जो विचार दिये वे उनके स्पष्ट तथा सटीक दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं।

अम्बेडकर ने राज्य के अस्तित्व के प्रयोजन पर उदारवादी दृष्टि से विचार किया। वे यह तो मानते थे कि राज्य एक अनिवार्य एवं उपयोगी संस्था है लेकिन वे उसकी शक्तियों को सीमित तथा मर्यादित रखना चाहते थे। वे चाहते थे कि राज्य एवं सरकार दलित, शोषित तथा असहाय लोगों के उत्थान के लिए कदम उठाकर, समानता एवं न्याय पर आधारित समाज की स्थापना में योगदान दे।

शासन प्रणाली रूप में उन्होंने संसदीय प्रणाली का समर्थन किया। वस्तुतः वे ऐसी शासन प्रणाली के पक्ष में थे जिसमें कार्यपालिका समक्ष होने के साथ ही संवेदनशील हो, जो व्यवस्थापिका के नियंत्रण एवं निर्देशन में काम करें तथा जिसमें बहुमत अल्पमत के हितों की उपेक्षा न करें। उन्होंने अपने ग्रंथ स्टेट्स एण्ड माइनोरिटीज में निम्न संस्थागत एवं प्रक्रिया सम्बन्धी शासन व्यवस्था का उल्लेख किया है:

1. बहुमत को अल्पमत पर अपनी इच्छा थोपने का अधिकार नहीं हो।
2. बहुमत की कार्यपालिका में अल्पसंख्यकों का भी प्रतिनिधित्व हो।

3. कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का नियंत्रण सैद्धान्तिक एवं वास्तविक दोनों प्रकार का हो ताकि वह उसके निर्देशों व निर्णयों की अवहेलना नहीं कर सकें।

4. अवरोध तथा संतुलन के सिद्धान्त की व्यवस्था हो ताकि शासन के विभिन्न अंग स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे पर नियंत्रण व संतुलन बनाये रख सकें।

5. कार्यपालिका की स्थिरता को सुनिश्चित किया जाय ताकि दक्षतापूर्ण शासन संचालन किया जा सके।

अम्बेडकर प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक थे लेकिन पश्चिमी विद्धानों के समान वे इसे शासन की केवल एक पद्धति मात्र नहीं मानते थे अपितु वे इसे एक जीवन पद्धति के रूप में देखते थे। उनके अनुसार प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली ही ऐसी प्रणाली है जिसमें समाज की आर्थिक-सामाजिक संरचना में जाति रंग, लिंग, सम्पति तथा धर्म के भेदभाव के बिना शान्तिपूर्ण ढंग से क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जा सकते है। लोकतांत्रिक पद्धति में वे दो तथ्यों का समावेश आवश्यक मानते थे - पहला, विधि का शासन तथा दूसरा - सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन द्वारा न्यायपूर्ण समाज की स्थापना। यद्यपि वे संसदीय प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक थे किन्तु उसके निर्णयों में होने वाली देरी के प्रति सचेत थे।

भारत में संसदीय प्रजातंत्र को लागू करने से पहले वे संवैधानिक प्रावधानों द्वारा शासन को सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के प्रति वचनबद्ध बनाना चाहते थे ताकि सामाजिक न्याय की स्थापना कार्यपालिका की स्वेच्छा पर निर्भर ना होकर दायित्व बन जाय। संविधान की प्रस्तावना तथा नीति निर्देशक तत्वों में अम्बेडकर उपरोक्त आग्रह साकार हुये हैं। भारत के लिए लोकतांत्रिक पद्धति का श्रेष्ठ मानते हुए भी वे जानते थे कि यहां सामाजिक संरचना लोकतंत्र के अनुकूल नहीं है अतः उन्होंने लोकतंत्र की सफलता के लिए कुछ पूर्व शर्तों का आवश्यक बताया -

1. राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए सामाजिक धरातल पर समानता अर्थात् सामाजिक लोकतंत्र होना आवश्यक है। जिस समाज के एक वर्ग के हाथों में केवल विशेषाधिकार हों और उसका दूसरा वर्ग प्रतिबन्धों के बोझ से दबा पड़ा हो वहां लोकतंत्र नहीं पनप सकता। इसलिए वे दलित वर्ग को कानूनी संरक्षण द्वारा सामाजिक समानता का दर्जा प्रदान करना चाहते थे।

2. लोकतंत्र के लिए वे बहुदलीत शासन प्रणाली तथा सशक्त विपक्ष को भी आवश्यक मानते थे उनका मानना था कि जब तक जनता के सामने एक दल को हटाकर दूसरे दल को दता सौंपने का विकल्प नहीं होगा, लोकतांत्रिक शासन सार्थक नहीं हो सकता। इसी प्रकार लोकतंत्र की सफलता में समक्ष विपक्ष होना भी आवश्यक है जो कि शासन की कमजोरियों को उजागर कर जनहितों का प्रहरी बन जाता है।

3. लोकतंत्र की सफलता के लिए वे तटस्थ तथा कुशल नौकरशाही का होना भी जरूरी मानते थे। उनका मत था कि सरकार के बदलाव के साथ प्रशासनिक शाखा बनाया जाय तथा यह सुनिश्चित कियका जाए कि उसके सदस्य सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के प्रति निष्ठा रखने के बजाय विधि के प्रावधानों के प्रति निष्ठावान रहें।

4. अम्बेडकर के अनुसार संविधान में की गई घोषणाओं मात्र से किसी देश का शासन आदर्श स्वरूप प्राप्त नहीं कर लेता अपितु इसके लिए राजनैतिक क्रिया किलापों और शासन में भाग लेने वाले लोगों में संवैधानिक मूल्यों व नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना होना आवश्यक है।

5. वे जागरूक जनता को भी लोकतंत्र की आवश्यक शर्त मानते थे, क्योंकि जागरूक जनता ही लोकतंत्र की रक्षक भी होती है।

6 लोकतंत्र दलित तथा शोषित वर्गों के लिए संवैधानिक तथा कानूनी संरक्षणों को सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि इन संरक्षणों के आधार पर दलित संविधान द्वारा दिये जाने वाले मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होंगे। इसी आधार पर वे 1935 के अधिनियम में दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व का प्रावधान कराने में सफल रहे। 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट में दलित वर्ग को हिन्दू समुदाय से पृथक समुदाय के रूप में मान्यता दी गयी थी, जिसे बाद में गाँधी के साथ समझौते के बाद पुना पैक्ट में संशोधित किया गया और जिसके अनुसार हिन्दू समुदाय के ही एक अंग के रूप में दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया, तथा स्वतंत्र भारत के संविधान में भी दलित वर्ग के आरक्षण की व्यवस्था की गई।

स्वतंत्रता संघर्ष की मुख्य धारा का नेतृत्व करने वाले गाँधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से मतभेद एवं कई मुद्दों पर विरोध के कारण कई लोग अम्बेडकर को राजनैतिक प्रतिक्रियावादी एवं साम्राज्यवाद का समर्थक मानते थे किन्तु उनकी देशभक्ति कांग्रेस के नेताओं की देशभक्ति से किसी प्रकार कम न थी। केवल उनकी प्राथमिकतायें भिन्न थी। वे दो हजार साल से चले आ रहे सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार से लड़ना चाहते थे। उन्होंने बम्बई विधान सभा में कहा था कि - मेरे अपने हित और देश के बीच टकराव होगा तो मैं देश के हित को तरजीह दूंगा लेकिन यदि देश के हित और दलित वर्गों के हित में टकराव होगा तो मैं दलित वर्गों के हित प्राथमिकता दूंगा।

वस्तुतः अम्बेडकर के विचार और व्यक्तित्व को समझने के लिए उनकी परस्पर विरोधी प्रेरणाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। वे सच्चे अर्थों में भारतीय थे लेकिन भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक अन्याय को भी समाप्त करना चाहते थे। इन्हीं दो इच्छाओं के बीच उनमें एक सतत् एवं सृजनात्मक तनाव दिखाई देता है। उन्हें जाति एवं अस्पृश्यता उन्मूलन का संघर्ष न केवल स्वतंत्रता की लड़ाई का पूरक लगता था बल्कि कई बार यह

संघर्ष स्वराज प्राप्ति से भी कठिन लगता था। उनका मानना था कि स्वराज्य के लिए संघर्ष में सारा राष्ट्र आपके साथ संघर्ष करता है लेकिन जब आप-पाँत के विरूद्ध लड़ते हैं तो आपके ही राष्ट्र के साथ लड़ना पड़ता है। उनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू समाज से जातिभेद के महारोग के विनाश से ही उसमें अपनी आजादी की रक्षा करने की शक्ति पैदा होने की उम्मीद की जा सकती है। इस आन्तरिक ताकत के बिना हिन्दुओं के लिए स्वराज्य, केवल गुलामी की ओर एक कदम होगा।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति भी उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था। वे ब्रिटिश शासन के सकारात्मक प्रभावों को स्वीकार करते थे किन्तु उसके आर्थिक शोषण के भी स्पष्ट आलोचक थे। वे भारत की सामाजिक आजादी के योद्धा थे और इसीलिए उनका राष्ट्रवाद का सपना न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना के संकल्प में अभिव्यक्त हुआ।

6.6 आर्थिक विचार

सामाजिक क्रान्ति का परचम उठाने वाले अम्बेडकर एक अर्थशास्त्री भी थे। अमेरिका तथा लन्दन में उच्च शिक्षा ग्रहण करते समय उन्होंने जितने भी शोध पत्र या निबन्ध लिखें, उनका सम्बन्ध अर्थशास्त्र के किसी न किसी पक्ष से था। वे तत्कालीन भारत की आर्थिक समस्याओं से भलीभांति अवगत थे। उनकी सामाजिक न्याय की अवधारणा निश्चित आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित थी।

अम्बेडकर का मानना था कि भारत में आर्थिक असमानताओं की जड़ जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता है जिसमें नियोजित षड्यन्त्र द्वारा निःषक्तजनके अन्य व्यवसाय अपनाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया। वंशानुगत व्यवसायों के नियम का निःषक्तजनके सम्बन्ध में कठोरता से किया गया पालन उनके लिये अभिशाप तथा पतन का मार्ग सिद्ध हुआ। उनका मत था कि अस्पृश्यता एक अर्थव्यवस्था भी है जो दासता से बदतर है। दास प्रथा में मालिक अपने दासों की मूल आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की जिम्मेदारी निभाता था लेकिन सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यों की देखरेख की कोई जिम्मेदारी नहीं लेता। अम्बेडकर अस्पृश्यता को अनियंत्रित शोषण की व्यवस्था मानते थे जिसमें निःषक्तजनको सम्पत्ति के अधिकार से पूर्ण तथा वंचित कर दिया गया था। इसीलिए वे व्यक्ति की प्रतिभा को कुठिंत करने वाले व्यवसायों के विरोधी थे, वे चाहते थे कि जातिगत बाध्यता के बिना व्यक्ति को अपनी क्षमता, प्रतिभा एवं इच्छानुसार व्यवसाय तथा रोजगार चुनने की स्वतंत्रता होगी, तभी आर्थिक असमानता की खाई को कम किया जा सकता है। व्यक्ति के स्तर पर आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिए वंशानुगत व्यवसायों के जाल को काट कर ही न्यायनिष्ठ समाज का निर्माण किया जा सकता है।

न्याय, समानता तथा स्वतंत्रता पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के लिए अम्बेडकर इस क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक मानते थे। उनका कहना था कि जब तब उत्पादन के साधनों का स्वामित्व कुछ ही लोगों के हाथ में रहेगा तब तक समता तथा न्याय पर आधारित अर्थव्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। इसीलिए अम्बेडकर उत्पादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व के पक्ष में थे। उनकी आर्थिक अवधारणा की मुख्य

विशेषता यह है कि उन्होंने व्यक्तिवादी विचार तथा वैज्ञानिक समाजवाद दोनों की पराकाष्ठा की आलोचना करते हुए संयुक्त अर्थव्यवस्था का समर्थन किया। उन्होंने समाज के प्रगतिशील रूपान्तरण तथा सामाजिक आर्थिक असमानाताओं को दूर करने का विचार रखा। उनका मन्तव्य था कि पूंजीपति तथा जमींदार वर्ग अपनी विशाल समपत्ति का दुरूपयोग निम्न श्रमिक, भूमिहीन मजदूर तथा किसान वर्ग पर अत्याचार करने में नही करें तथा सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति के आर्थिक विकास में बाधक नहीं बनें।

राज्य समाजवाद की स्थापना के इस स्वरूप में संसदीय प्रजातंत्र के अन्तर्गत दल बदल के साथ ही परिवर्तन नहीं किया जा सके और समाजवाद, अर्थव्यवस्था का स्थायी आधार बन सके इसके लिए वे संविधान में प्रावधान कराना चाहते थे, लेकिन सरदार पटेल, जे.बी. कृपलानी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं के विरोध के कारण ये प्रावधान मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं किये जा सके। फिर भी आर्थिक प्रजातंत्र का लक्ष्य नीति निर्देशक तत्वों के रूप में संविधान में शामिल किया जाना महत्वपूर्ण है।

अम्बेडकर कृषि के राष्ट्रीयकरण तथा सामुदायिक खेती के पक्षधर थे। उनका कहना था कि चकबन्दी या अन्यभूमि सुधार किसानों तथा दलितों की आर्थिक समस्या को हल नहीं कर सकते। उनके अनुसार आधी बुद्धि तथा आधे मन से लागू किये गये सुधार भूमिस्वामियों को ही लाभ पहुँचाते हैं।

वस्तुतः आर्थिक समानता की स्थापना के लिए वे कृषि को राजय का उद्योग बनाना चाहते थे। उनका विचार था कि राज्य को समस्त प्रकार की कृषि योग्य भूमि अपने अधिकार में लेकर विद्यमान भूमिक मालिकों को उचित मुआवजा दे देना चाहिए। राजय द्वारा समस्त भूमि को अधिगृहीत करने के बाद कृषि व्यवस्था संचालन की रूप रेखा प्रकार हो सकती है।

1. सामूहिक कृषि सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार हो।
2. जाति तथा धर्म का भेद-भाव किये बिना ग्रामीणों में भूमि का इस प्रकार वितरण किया जाए कि उसमें न कोई जमींदार हो, न आसामी और न ही भूमि-हीन मजदूर।
3. सामूहिक खेती के लिए आवश्यक-सिंचाई,जानवर, खाद, बीज तथा उपकरण आदि के लिए वित्त की व्यवस्था सरकार करे।
4. सरकार द्वारा लगाये धन का उचित मूल्य चुकाने के बाद शेष उत्पादन आसामी आपस में बांट लें।

राज्य व सरकार के इस निर्णयकारी हस्तक्षेप की अवधारणा के पीछे अम्बेडकर का मन्तव्य यह था कि भूमि सम्बन्धों पर आधारित परम्परागत वर्चस्व तथा शोषण का तंत्र समाप्त हो और उत्पादन के साधनों में समाज के निम्न तबके की भी भागीदारी हो।

वे भारत की आर्थिक समस्याओं के समाधान तथा दलितों के उत्थान के लिए औद्योगीकरण को एक प्रभावशाली उपाय मानते थे। उनका कहना था कि औद्योगीकरण की धीमी गति के कारण ही कृषि पर अनावश्यक बोझ बढ़ा है। भारत का औद्योगीकरण भारत की कृषिगत समस्याओं का सबसे ठोस निदान हैं औद्यीगीकरण के पक्षधर होते हुए भी अम्बेडकर यह नहीं चाहते थे कि इसके माध्यम से भारत में अनियंत्रित पूंजीवाद का विकास हो। वे उद्योगों के क्षेत्र में भी राज्य समाजवाद के हामी थे जिसके अंतर्गत के उद्योगों को आधारभूत घोषित कर राज्य के अधीन संचालित किये जाने के पक्षधर थे, जैसेः- रेलवे, बीमा आदि। अम्बेडकर का मानना था कि, निजी उद्योगों में भी सरकार का पर्याप्त प्रभाव हो।

औद्योगीकरण के समर्थक होने के साथ-साथ डॉ. अम्बेउकर रमिकों की समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील थे। उन्होंने भारतीय मजदूर दल की सथापना की। उन्होंने कर्नाटक के मजदूरों की बेदखली के खिलाफ तथा अनुचित ईनामदारी प्रथा की समाप्ति के लिए संघर्ष किया। उन्होंने रेलवे तथा सूती कपड़ा मजदूरों के आंदोलन को संगठित किया। उन्होंने मुम्बई विधानसभा में पेश किये गये उस विधेयक का भी विरोध किया था जिसका उद्देश्य मजदूरों के हड़ताल पर जाने क के अधिकार को गैर कानूनी करार देना था।

6.7 अम्बेडकर एवं गाँधी

गाँधी तथा अम्बेडकर दोनों दलित जातियों के उत्थान के लिए समर्पित थे। दोनों मानवीय गरिमा तथा समानता पर आधारित समाज की स्थापना करना चाहते थे। जन्म पर आधिारित अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए दोनों कृत संकल्प थे। दोनों के सामजिक उद्देश्य एक होते हुए भी भारत की ये दो महान् प्रतिभायें साथ नहीं चल सकी। वस्तुतः व्यवहार में गाँधी तथा अम्बेडगर के बीच विद्यमान दूरियां कई बार कटुता की स्थिति तक पहुँच जाती थीं। अमबेडकर का मत था कि भारत में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की तुलना में सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना अधिक महत्वपूर्ण है। उनका गाँधी तथा कांग्रेस के प्रति यह आक्षेप था कि उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के प्रयासों को अपेक्षित प्राथमिकता नहीं दी। गाँधी तथा अम्बेडकर के बीच कई मसलों पर दृष्टिकोण सम्बन्धी भिन्नता भी विद्यमान थी, जिसके चलते दोनों के मध्य दूरियाँ बनी रहीं।

गाँधी वर्ण व्यवस्था को सामाजिक संगठन का स्वाभाविक नियम मानते थे, तथा इसके विद्यमान ऊँच-नीच की भावना को कालान्तर में आयी एक विकृति मानते थे। वे अस्पृश्यता के पाप तथा जाति व्यवस्था की उपयोगिता के बीच कोइ विरोध नहीं देखते थे। जबकि अम्बेडकर का मानना था कि जाति को नष्ट किये बिना अस्पृश्यता को नष्ट नहीं किया जा सकता है, चर्तुवर्ण सिद्धान्त के उन्मूलन के बिना मानव समानता स्थापित नहीं हो सकती। उनका यह मत था कि जाति प्रथा ही अस्पृश्यों की दुर्दशा तथा शोषण के लिए जिम्मेदार है, अतः अस्पृश्यों का उत्थान जाति उन्मूलन के साथ जुड़ा हुआ है।

गाँधी वंशानुगत व्यवसायों के भी समर्थक थे। उनके अनुसार, वर्ण व्यवस्था हमें सिखाती है कि हम सब अपने बाप दादा के पेशों को अपनाते हुये आजीविका का निर्वहन करें। यह हमारे अधिकारों का नहीं, कत्र्तव्यों का निर्धारण करती है। सभी व्यवसाय विधि सम्मत तथा समान हैं। ब्राह्मण तथा निःशक्तजन का व्यवसाया एक समान हैं लेकिन अम्बेडकर ने इसे अस्वीकार करते हुये गाँधी की कथनी व करनी का भेद बताया। उन्होंने गाँधी से सवाल किया कि क्या स्वयं उन्होंने बाप दादों के वकालत का पेशा अपनाया। इसी प्रकार गाँधी ने अन्तरजातीय विवाह तथा सहभोग पर प्रतिबन्ध को उचित बताया जबकि अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे। वे जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अन्तरजातीय विवाह को आवश्यक मानते थे।

गाँधी तथा अम्बेडकर दोनों ही अस्पृश्यता को अनैतिक तथा अमानवीय प्रथा मानते थे तथा दोनों ही इस प्रथा को समूल नष्ट करना चाहते थे लेकिन अस्पृश्यता के कारण और उसके निदान के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण भिन्न थे। गाँधी निःषक्तजनको हिन्दू समाज का अभिन्न अंग मानते थे। उनका कहना था कि निःषक्तजनकी समस्या, हिन्दू समाज की समस्या है तथा यदि हिन्दू समाज को जीवित रहना है तो उसे निःषक्तजनकी समस्या का निराकरण करना होगा। अम्बेडकर की मान्यता इसके विपरीत थी। उनका कहना था कि यदि दलित हिदू होते तो हिन्दू उनके साथ अमानवीय व्यवहार नहीं करते। उन्होंने तीसरे दशक तक दलित समस्या का निदान हिन्दू समाज के दायरे में किये जाने के प्रयास किये और अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सुधारात्मक प्रयासों से इस समस्या को जड़ से मिटाना सम्भव नहीं हैं। अम्बेउकर का कहना था कि हिन्दू जाति और धर्म एक दूसरे के पर्याय है। जाति की जड़ें धर्म में होने के कारण जाति का उन्मूलन संभव नहीं है। इसलिए अम्बेडकर ने अपेन साथियों के साथ अन्ततः बौद्ध धर्म ग्रहरण करने का निर्णय लिया।

गाँधी अस्पृश्यता निवारण एवं व्यवस्था परिवर्तन हेतु सवर्णों तथा पूंजीपतियों का हृदय परिवत्रन करना आवश्यक मानते थे। वे सौहार्द, सामजस्य तथा शान्तिपूर्ण अहिंसातमक तरीकों से समाज में बदलाव लाना चाहते थे, लेकिन अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि व्यवस्था में बदलाव तथा छुआछुत की समापित के लिए संघर्ष जरूरी है। इसलिए उसने दलितों तथा शोषित को संघर्ष के लिए एकजुट होने का आह्वान किया। वे कानून द्वारा समस्या के समाधान को महत्वूर्ण मानते थे। इसी आधार पर उन्होंने सवैधानिक दायरे में दलितों को राजनीतिक शक्ति प्रदान करने के लिए सरकारी सेवाओं तथा विधायकाओं में पृथक प्रतिनिधित्व दिलाने की कोशिश की।

अम्बेडकर की पहल पर ही ब्रिटिश सरकार ने दलितों को सन् 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट के तहत पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया जिसके विरोध में गाँधी ने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। गाँधी की चिनताजनक स्थिति को देखते हुए अम्बेडकर स्वयं गाँधी तथा कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मिले जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों के बीच पूना पैक्ट हुआ। इस समझौते के अनुसार अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग छोड़ दी और गाँधी ने दलितों के लि आरक्षण का प्रावधान स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार गाँधी एवं अम्बेडकर दोनों समानता तथा न्याय पर आधारित समाज की स्थापना के पक्षधर थे, लेकिन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनाये गये साधनों में भिन्नता थी। अम्बेडकर तथा गाँधी भारतीय समाज की दो भिन्न भिन्न पृष्ठभूमि से आये थे, दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता का एक प्रमुख आधार यह पृष्ठभूमि भी थी। हिन्दू समाज के पदसोपानीय विभाजन की पीड़ा को गाँधी ने भोगा नहीं, मात्र देखा था अतः अस्पृश्यता जैसी कुरीति के प्रति एक दृष्टा के भाव से उसे उन्होंने समझने व मिटाने की कोशिश की। अम्बेडकर का संदर्भ बिल्कुल अलग था। उन्होंने जाति व्यवस्था में विद्यमान भेदभाव तथा अस्पृश्यता के दंश को स्वंय झेला था, अतः भुक्त भोगी होने की पीड़ा तथा इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश उनके दृष्टिकोण तथा विचार अभिव्यक्ति में स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने नैतिकता, सदाचार, व्यवसाय सभी का आधार धर्म शास्त्रों द्वारा स्वीकृति और जन्माधारित जाति व्यवस्था को माना। यही कारण है कि वे जाति आधारित किसी भी प्रकार की व्यवस्था तथा व्यवहार के विरोधी थे और इसलिए वे वर्ण एवं जति व्यवस्था को नष्ट करने के बाद भी समता पर आधारित समाज की स्थापना को सम्भव मानते थे।

6.8 सारांक्ष

महाराष्ट्र की महार जाति में जनमें भीमराव अम्बेडकर ने जातिगत अपमान और संघर्ष के साथ अध्ययन कियाथा अतः जाति प्रथा और छुआछुत के प्रतिकार के संकल्प के साथ उन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। जनम जैसे संयोग पर आधारित जाति व्यवस्था तथा अमानवीय छुआछुत प्रथा की समाप्ति को उन्होंने अपने जीवन तथा चिन्तन का साध्य बना लिया। भारतीय इतिहास, हिन्दू धर्म शास्त्रों के अध्ययन तथा जीवन के अनुभवों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जाति तथा अस्पृश्यता के लिए हिन्दू धर्म तथा शास्त्र जिम्मेदार हैं इसलिए उन्होंने ब्राह्मणवाद की समाप्ति तथा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को समता मूलक आधार पर पुनः परिभाषित करने का आहवान् किया।

वे देश की राजनीतिक आजादी से ज्यादा महत्वपूर्ण सामाजिक समता और स्वतंत्रता को मानते थे। वे लोकतंत्र को सामाजिक धरातल पर उतारना चाहते थे और इसके लिए जाति विहीन समाज के पुनर्गठन करना चाहते थे। समाज के संतुलित विकास के लिए राज्य हस्तक्षेप का उन्होंने समर्थन किया। वे जाति-आधारित व्यवसायों को आर्थिक स्वतंत्रता के विरूद्ध मानते थे। प्राथमिकतायें भिन्न होने के कारण गाँधी और अम्बेडकर के विचारों में मतैकता का अभाव दिखता है पतन्तु व्यक्ति के स्वाभिमान सहित जीने और न्याय के उद्देश्य के प्रति दोनों की कटिबद्धता समान थी।

6.9 अभ्यास प्रश्न

1. अम्बेड़कर के राजनीतिक विचारों का परीक्षण कीजिए।

2. जाति व्यवस्था एवं धर्म पर अम्बेड़कर के विचारों का परीक्षण कीजिए।

3. निःशक्तजनों के उद्धार के लिए गाँधी एवं अम्बेड़कर के योगदान का विश्लेषण करो।

4. गाँधी एवं अम्बेड़कर के राजनीतिक और सामाजिक विचारों का तुल्नात्मक परीक्षण कीजिए।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008

2. द्वारका प्रसाद गुप्ता, महात्मा गाँधी और अस्पृश्यता, ज्ञान भारती, दिल्ली, 2008

3. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008

4. बारेन रे (सम्पादित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933-1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996

5. थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय: रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002

6. प्रतिभा जैन, गाँधीयन आइडियास सोशल मूवमेन्टस् एण्ड क्रियेटिविटी, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 1985

7. बारेन रे (सम्पादित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933-1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996

इकाई – 7

जे. सी. कुमारप्पा

इकाई रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 जीवन परिचय

7.3 गाँधीजी एवं कुमारप्पा

7.4 जेल एवं बिहार

7.5 अखिल भारत ग्राम संघ

7.6 सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर दृढ़ विश्वास

7.7 मुद्रा एवं विनिमय पर विचार

7.8 केन्द्रीयकृत नियोजन एवं उत्पादन का विरोध

7.9 कृषि व्यवस्था

7.10 सारांश

7.11 अभ्यास प्रंश्न

7.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे किः

- जे.सी. कुमारप्पा कौन थे ?
- कुमारप्पा का आर्थिक दर्शन एवं गाँधीयन ग्रामीण अर्थशास्त्र पर उनके विचार क्या थे ?
- कुमारप्पा के जीवन पर रूस की क्रान्ति के बाद जन्में विचारों का क्या असर पड़ा?
- भारत के कृषि क्षेत्र विशेष रूप से भूमि सुधारों के बारे में उनकी सोच क्या थी ?
- महात्मा गाँधी के विचारों से उनकी सोच पर क्या प्रभाव पड़ा ?

7.1 प्रस्तावना

गाँधीजी के जीवन काल एवं उसके बाद उनके विचारों के आधार पर गाँधीवादी विचारधारा को जीवन में उतारने वाले अर्थशास्त्रियों में जे. सी. कुमारप्पा का नाम प्रमुख है। गाँधीजी के विचारों को आगे बढ़ाने व उन्हें मूर्त रूप देने के लिए अपना जीवन समर्पण करने वाले प्रमुख विचारक कुमारप्पा के व्यक्तित्व एवं विचारों से इस इकाई में आपका जीवन परिचय कराया जाएगा।

7.2 जीवन परिचय

जे.सी. कुमारप्पा का जन्म 4 जनवरी, 1892 को तंजौर तमिलनाडु के एक मध्यमवर्गीय इसाई परिवार में हुआ। उनके पिता श्री एस.डी. कार्नेलियस तत्कालिक मद्रास सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग में एक अधिकारी थे, एवं माता एस्थर राजनायकम भी इसाई परिवार की एक समझदार गृहणी थी। अपने समय में उपलब्ध तामिल किताबों का उन्होंने काफी अध्ययन किया था, परन्तु उनके पास औपचारिक विश्वविद्यालय की शिक्षा नहीं थी। उनके जीवन में धार्मिक सहिष्णुता एवं सादगी झलकती थी। जीवन में दयाभाव एवं दीन-दुखियों की पड़ोसियों की मदद करना उनका स्वभाव था। माता के सादगीपूर्ण जीवन एवं उनके व्यवहार का पुत्र के विचारों पर स्पष्ट प्रभाव था।

बचपन में जोसफ को पालतू जानवरों से लगाव था। उनकी माता ने उन्हें मुर्गीपालन हेतु प्रेरित किया। वे जब भी बाजार मासिक राशन आदि खरीदने जाती तो जोसफ को साथ ले जाती व उन्हें भी मुर्गीदाना खरीद देती थी। इस प्रकार जोसफ महीने भर मुर्गियों से प्राप्त अण्डों को बेचकर उनसे होने वाली आमदनी का हिसाब रखता और अन्त में हुई आमदनी का हिसाब अपनी माता को देना होता था। इस आय को माता अपने दान दक्षिणा के कामों के लिए एवं अनाथ बच्चों के लिए व्यय करती थी। यह आदत जोसफ के बड़े होने पर भी जारी रही। उनकी माता को उन्हें तिथिज ;जपजीमेद्ध भेजना होता था। एक प्रकार से यह आय का दशमांश हिस्सा था जो वे

भेजते थे, जिससे माता के दान दक्षिणा वाले कार्यों में मदद हो सके। अपनी कमाई के हिस्से के साथ-साथ वह अपने साथियों से भी इसी प्रकार कुछ हिस्सा दान एवं मदद के लिए इकट्ठा कर माता को भेजते थे।

माता के इन नैतिक एवं अध्यात्मिक विचारों के साथ-साथ उनके पिता ने भी उन्हें सामाजिक जीवन के अच्छे संस्कार दिए। पिता अनुशासन प्रिय, एवं समय के बड़े पाबन्द थे। उन्होंने बच्चों को उस वक्त के उपलब्ध अच्छे स्कूलों में पढ़ाया व घर पर भी उनकी पढ़ाई पर घ्यान दिया। इस प्रकार माता-पिता दोनों ने अपने तरीके से अच्छे संस्कार दिये।

जोसफ स्कूल में एक मेघावी छात्र थे। अपनी अच्छी शिक्षा एवं बुद्धि को देखकर उन्हें इन्जिनियर बनने की इच्छा थी परन्तु परिस्थितियाँ उन्हें लेखांकीकी ;।बबवनदजंदबलद्ध की तरफ ले गई। 1913 में जोसफ लन्दन चले गए। वहाँ उन्होंने चार्टड अकाउन्टेट की पढ़ाई की। उन्नीस सौ दस के दशक के वर्षों में पढ़ाई कर, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद वे 1919 में भारत लौटे। ब्रिटेन प्रवास के वर्षों में उनकी भारतीय राजनीतिक परिदृश्य एवं ब्रिटिश राज्य के विरोध में कोई दिलचस्पी नहीं थी। कुमारप्पा ने वापस लौटकर बम्बई में एक ब्रिटिश फर्म में नौकरी की। 1924 में फर्म से अलग होकर स्वयं की प्रेक्टिस प्रारम्भ की।

कई वर्षों की प्रेक्टिस के बाद 1927 में कुमारप्पा अमेरिका गए। वहाँ उन्होंने लेखांकीकी को छोड़कर 1928 में व्यावसायिक प्रशासन में बी.एस.सी. की पढ़ाई की। इसके पश्चात कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सार्वजनिक वित्त में स्नातकोतर की उपाधि प्राप्त की। प्रोफेसर सैलिगमैन ने न्यूयार्क टाईम्स अखबार में जोसफ के द्वारा 18 नवम्बर 1928 को कम्यूनिटी चर्च में दिये गए भाषण "Why then India is Poor" की प्रेस रिपोर्ट पढ़कर इतसे प्रभावित हुवे कि उन्होंने जोसफ को यह सलाह दी कि उन्हें स्नातकोतर शोध प्रबन्ध के विषय "Bombay Municipal Finance" को बदलकर "Causes of Indian Poverty Through PublicFinance" रखना चाहिए। प्रोफेसर सैलिगमैन की राय को मानकर जोसफ ने अपने लेख का विषय बदल लिया। इस अध्ययन के निष्कर्षों से ब्रिटिश शोषण एवं अन्याय के प्रति पूरी तरह आश्वस्त होकर वे राष्ट्रवादी हो गये एवं उन्होंने परिवार का मूल हिन्दू नाम कुमारप्पा अपना लिया। उनके विचारों एवं दृष्टिकोण का परिवर्तन धीरे-धीरे परन्तु दृढ़ तरीके से हुआ। प्रारम्भिक दिनों में उनकी सोच शहरी एवं पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी समर्थक रही। यह सोच ब्रिटेन में रहकर और मजबूत हुई। प्रारम्भिक वर्षों में उनकी माता के संस्कारों से वे मानवता के प्रति नैतिकतावादी दृष्टिकोण रखते थे। परन्तु बड़े होने पर ब्रिटेन में उनकी सोच बदल गई। चार्टड अकाउन्टेट बनने के बाद जिस कार्य में उन्होंने नौकरी की उस फर्म का मालिक कहता था कि हमें ऐसी कोई गलती नहीं करनी चाहिए जिससे अन्य को हानि पहुँचे, अर्थात् व्यक्ति चाहे जो करे परन्तु उसे अपने कार्य अथवा क्रिया का सामाजिक असर अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उन्होंने एक सेमीनार दिया जिसका विषय था “The Economics of Enterprise” सेमीनार की अध्यक्षता प्रोफेसर (डॉ.) डेवनपोर्ट ने की। प्रोफेसर डेवनपोर्ट एडम स्मिथ एवं अन्य अर्थशास्त्रियों की भांति यह मानते थे कि उत्पादन का लक्ष्य लाभार्जन करना है एवं क्रयशक्ति बढ़ाना है। कुमारप्पा को यह दर्शन पूर्ण असत्य लगा। उन्होंने इस विषय पर अपनी पूरी शक्ति से बहस की। प्रोफेसर ने उदारता का परिचय देते हुवे उनके तर्कों को स्वीकार किया व उन्हें A- One ग्रेड दिया।

इस सेमीनार एवं इस पर हुई बहस के बाद कुमारप्पा का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि मानव केवल धन उत्पादन के लिए नहीं बना है बल्कि वह समाज का एक अंग है जिसके कई पहलू - धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिकता भी है। इस दृष्टिकोण के कारण उन्होंने कई लेख लिखे एवं उनका मुख्य लक्ष्य धनार्जन नहीं रहा। उनके कुछ लेखों ने महात्मा गाँधी का ध्यान खींचा।

7.3 गाँधीजी एवं कुमारप्पा

सन् 1929 में कुमारप्पा गाँधीजी से मिले जिन्होंने उनके जीवन में बदलाव किया। गाँधीजी की सलाह पर उन्होंने गुजरात राज्य का आर्थिक सर्वे किया एवं अपनी पुस्तक प्रकाशित की। प्रारम्भ में कुमारप्पा ने जब गाँधीजी के साथ काम करना प्रारम्भ किया तब पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने गाँधीजी की तारीफ करते हुवे कहा कि उन्होंने कुमारप्पा जी को बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया है। जवाब में गाँधीजी ने कहा कि कुमारप्पा को मैंने प्रशिक्षित नहीं किया बल्कि कुमारप्पा उन्हें रेडिमेड मिले हैं। जब 1929 में कुमारप्पा भारत लौटे तो वे अपने शोध “Indian Public Finance” को प्रकाशित करवाना चाहते थे। उनके एक मित्र सी.एच. सुपारीवाला ने उन्हें गाँधीजी से मिलने को कहा। इसके बाद कुमारप्पा ने गाँधीजी से मिलने के लिए प्रयास किये। गाँधीजी के सचिव ने कुमारप्पा को फोन कर बताया कि वह साबरमती आश्रम में किसी भी दिन गाँधीजी से मिल सकते हैं। कुमारप्पा आश्रम पहुँचे एवं अतिथिगृह देखकर हैरत में पड़ गए। वहाँ एक चारपाई के अलावा कुछ भी नहीं था। उन्होंने वहाँ से शीघ्र चले जाने में ही भलाई समझी, गाँधीजी के साथ उनका मिलने का तय समय दोपहर 2 बजे था। उन्होंने इधर-उधर घूमकर समय निकाला एवं तय समय पर गाँधीजी से मिलने पहुँचे। उन्होंने देखा था एक बूढ़ा सा आदमी पेड़ के नीचे फर्श पर बैठा चरखा कात रहा था।

कुमारप्पा इस कार्य को झुककर उत्सुकतापूर्वक देखने लगे। पाँच मिनिट बाद उस बूढ़े व्यक्ति ने मुंह खोला एवं पूछा कि वह कुमारप्पा है। उन्हें तुरन्त ही अहसास हो गया कि यह बूढ़ा व्यक्ति और कोई नहीं महात्मा गाँधी है एवं जवाब में उन्होंने भी पूछ लिया कि वही गाँधी है। बूढ़े व्यक्ति ने जवाब में सिर हिला दिया एवं कुमारप्पा तुरन्त ही अपनी पतलून की परवाह किये बगैर फर्श पर बैठ गए। बैठने की परेशानी को पहचान कर कोई उनके लिए अन्दर से कुर्सी ले आया परन्तु उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि चूँकि गाँधीजी फर्श पर बैठे हैं ऐसे में वह कुर्सी पर नहीं बैठेंगे।

गाँधीजी ने तुरन्त कहा कि वह कुमारप्पा के लेख में रूचि रखते हैं एवं यंग इण्डिया के अंकों में उसे सीरिज के रूप में लगातार प्रकाशित करना चाहते हैं। गाँधीजी ने तुरन्त ही पूछ लिया कि क्या कुमारप्पा उनके प्रदेश गुजरात के गाँवों का सर्वे कार्य करना चाहेंगे? कुमारप्पा ने कहा कि उन्हें गुजराती भाषा नहीं आती। तुरन्त ही गाँधीजी ने कहा वे अर्थशास्त्र विभाग गुजरात विद्यापीठ के सभी प्रोफेसरों एवं विद्यार्थियों को उनकी मदद के लिए लगा देंगे। गाँधीजी ने कुमारप्पा से कहा कि वे विद्यापीठ के कुलपति काका कालेलकर से भी मिल लें जो अभी उनके लिए कुर्सी लेकर आये थे। बाद में वे काका साहेब से मिले। कुमारप्पा की वेशभूषा देखकर उन्हें लगा कि गाँधीजी के बताये गये कार्य के लिए यह उपयुक्त नहीं होंगे। दूसरी परेशानी भाषा सम्बन्धी थी अतः कालेलकर साहब ने कुमारप्पा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया एवं कुमारप्पा गाँधीजी से पुनः मिले बिना ही बम्बई लौट गये। लौटकर उन्होंने गाँधीजी को पत्र लिखा कि उन्हें बताए गये कार्य को करने में खुशी होती परन्तु काका साहेब को ऐसा नहीं लगता कि मैं यह कार्य कर पाऊँगा। जवाब में तुरन्त ही काकासाहेब की चिट्ठी मिली जिसमें उन्होंने लिखा कि गाँधीजी के बताए कार्य को वे स्वीकार करलें तो उन्हें खुशी होगी।

जब कुमारप्पा ने कार्य प्रारम्भ किया तब गाँधीजी अपनी दांडी यात्रा के लिए निकल चुके थे। इस बीच कुमारप्पा के “Public Finance and Our Poverty” लेख प्रकाशित हुए। गाँधीजी ने उन्हें एक किताब के रूप में प्रकाशित करने को कहा। कुमारप्पा ने उस पर गाँधीजी की तरफ से प्रकथन (Foreword) लिखने का आग्रह किया। इस पर बातचीत करने के लिए कुमारप्पा को करड़ी बुलाया जहाँ वे उस समय रूके हुवे थे। कुमारप्पा ने अपनी तरफ से बहुत अच्छा थ्वतमूवतक गाँधीजी के नाम से लिखा एवं गाँधीजी के सामने हस्ताक्षर हेतु आगे कर दिया। गाँधीजी ने उसे हटाकर अलग कर दिया एवं कहा कि मेरा थ्वतमूवतक मैं ही लिखूँगां कोई अन्य नहीं। उन्होंने कुमारप्पा से कहा कि उन्होंने केवल थ्वतमूवतक लिखने पर बात करने नहीं बुलाया बल्कि यह पूछने के लिए बुलाया है कि क्या वे यंग इण्डिया के लिए लिखना चाहेंगे, यदि उन्हें एवं महादेव देसाई को सरकार गिरफ्तार कर लेती है? कुमारप्पा ने कहा कि उन्हें लेखांकीकी की जानकारी है एवं कभी किसी जर्नल के लिए उन्होंने लिखा नहीं है। गाँधीजी ने उत्तर दिया कि उनकी योग्यता को परखने के लिए वे स्वयं सम्पादक के रूप में हैं, अतः निर्णय उन्हें लेना है न कि कुमारप्पा को लेना है एवं मैं तुम्हें इस पत्र में लिखने के लिए आमंत्रित करता हूँ। कुमारप्पा ने यह कार्य स्वीकार कर लिया एवं बाद में जेल चले गए फिर लौटकर वे आडिटर के अपने मूल कार्य के लिए बम्बई नहीं गए।

1930 में उन्होंने गाँधीजी के कहने पर खेडा जिले के मटर (Matar) तालुका में आर्थिक सर्वे का कार्य किया। 1931 में उन्हें पहली बार जेल जाना पड़ा। अहमदाबाद जेल में उन्हें 1 वर्ष 6 माह रखने के आदेश हुए। इसके बाद मार्च 1931 में गाँधी-इरविन पेक्ट में उन्हें जेल से रिहा किया गया। इसी वर्ष कराची अधिवेशन में उन्हें आर्थिक समिति का संयोजक चुन लिया गया। जब गाँधीजी एवं महादेव देसाई गोलमेज सम्मेलन के लिए लन्दन गये तो यंग इण्डिया के सम्पादक का कार्य कुमारप्पा ने सम्भाला। इस अवधि में कुमारप्पा ने एक छोटा

पाठ्यक्रम तैयार किया जिससे लोगों को आर्थिक सिद्धान्तों की सैद्धान्तिक शिक्षा दी जा सके एवं भारत की आर्थिक स्थिति से कार्यकर्ताओं को अवगत कराया जा सके। सामान्य आर्थिक सिद्धान्तों की जानकारी देने के लिए उन्होंने निम्न पाठ्यक्रम रखा-

उत्पादन के साधान

औद्योगिक उत्पादन की अवस्थाएं

श्रम विभाजन

व्यावसायिक संगठन

विपणन

कीमत निर्धारण

मुद्रा एवं बैंकिंग

सार्वजनिक व्यय एवं आय

इसके साथ ही आर्थिक स्थिति की जानकारी देने के लिए निम्नांकित लेख भी प्रकाशित किए-

भारतीय जनता

आर्थिक संगठन (किसान, दस्तकार, व्यापारी)

प्राकृतिक पर्यावरण

व्यावसायिक पर्यावरण (सरकार, शिक्षा बैंक रेल सड़क)

सार्वजनिक वित्त (आय, ऋण पूँजीगत व्यय)

उन्होंने 12 पुस्तकों की सूची भी प्रकाशित की जो उस समय उपलब्ध थी। परन्तु वह पाठ्यक्रम को कभी पढ़ा नहीं पाए। उन्हें 1932 में पुनः जेल भेज दिया गया एवं इस बार कारागृह की अवधि भी 2 वर्ष थी। जेल में रहकार उन्होंने कई पुस्तकों का अध्ययन किया एवं अपने नोट्स तैयार किए।

7.4 जेल एवं बिहार

जेल में रहते हुवे उन्होंने जो नोट्स तेयार किए उनसे तीन का◌ॅपिया भर गई। परन्तु उनकी पहली कॉपी कहीं खो गई। दूसरी व तीसरी कॉपी में कुछ किताबों के नोट्स थे एवं इसके अतिरिक्त बर्ट्रेंड रसल के “Marriage and Morals” पर लेख के नोट्स एवं जेन्स जिन्स के “The Universe Around Us” के नोट्स थे।

1934 में जेल से छूटने के बाद कुमारप्पा के लिए एक दूसरा कार्य इन्तजार कर रहा था। 1934 में भूकम्प के बाद बिहार में निजी रिलीफ वर्क्स बड़े पैमाने पर चलाए जा रहे थे एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के पास कार्य का भार अधिक जानकार गाँधीजी ने जमुना लाल बजाज को उनकी सहायता करने के लिए कहा। इस कार्य के लिए वित्तीय सलाहकार के रूप में जमुना लाल जी ने कुमारप्पा की मांग की। कुमारप्पा को तुरन्त सूचित कर पटना जाने को कहा गया। लेखा सम्बन्धी कार्य को उन्होंने बड़ी ईमानदारी एवं उत्कृष्ता के साथ पूरा किया जिसकी स्वयं डॉ.राजेन्द्र बाबू ने सराहना करते हुए कहा कि कुमारप्पा के कार्य से बिहार का गौरव बच पाया। अनुभव के आधार पर कुमारप्पा ने एक पेम्पलेट तैयार किया जिसका शीर्षक “Organization and Accounts of Relief Works” रखा। रिलीफ कार्य के लिए कुमारप्पा ने कठोर नियमों का पालन किया एवं प्रति कार्यकर्ता खाने पर व्यय को तीन आना तय कर दिया एवं इस नियम का सख्ती से पालन किया। इसी प्रकार मोटर कार के खर्चों को भी उन्होंने सख्ती से सीमित कर दिया। कुछ समय बाद राहत कोष की एक मीटिंग में भाग लेने हेतु जब महात्मा गाँधी पटना आये तो उन्होंने राहत कार्य के कोष से गाँधीजी का व्यय भी स्वीकार नहीं किया एवं महादेव देसाई से कहा कि व्यय की वे स्वयं व्यवस्था करें।

बात गाँधीजी के पास पहुँची तो उन्होंने कुमारप्पा को बुलाया एवं कहा कि वे विशेष रूप से राहत कोष की बैठक में भाग लेने के लिए ही आये हैं ऐसे में मोटरगाड़ी का व्यय नहीं देने के पीछे क्या कारण है? कुमारप्पा ने कठोर अनुशासन के लिए रखी गई तीन आना की व्यय सीमा का नियम बताया एवं कहा कि यह पैसा दान दाताओं का है एवं वे इस नियम को तौड़ना नहीं चाहते हैं। गाँधीजी को बात समझ में आ गई उन्होंने महादेव देसाई को बिल प्रस्तुत करने से मना कर दिया।

एक बार गाँधीजी ने कुमारप्पा को संदेश भिजवाया कि वे पटना आ रहे हैं। वे पटना पहुँचे व उन्होंने राजेन्द्र बाबू से कहा कि कुमारप्पा को सूचित कर दे। राजेन्द्र बाबू ने बताया कि राहत कोष के लेखा में कुछ पैसों का फर्क आ रहा है। यह फर्क आडिटर भी नहीं पकड़ पाए हैं चूँकि अगले दिन मीटिंग है कुमारप्पा ने दो अन्य साथियों के साथ अपने को कमरे में बन्द कर रखा है एवं वह कार्य पूरा करके ही बाहर आयेंगे। गाँधीजी ने कहा ठीक है उनसे सुबह मिलेंगे। अगले दिन गाँधीजी ने कुमारप्पा को देखा व मिलने का समय मांगा कुमारप्पा ने कहा “आज नहीं शायद कल” परन्तु गाँधीजी ने कहा कि वह तो आज रात ही वरधा चले जाएंगे। कुमारप्पा ने कहा तो उन्हें ऐसी स्थिति में बिना मिले ही जाना पड़ेगा। गाँधीजी ने कहा मैं बनारस से केवल तुमसे मिलने

आया हूँ एवं तुम नहीं मिलोगे, इस पर कुमारप्पा बोले किन्तु “आपने मुझसे मिलने का समय पूर्व निर्धारित नहीं किया है” मैं राहत कोष की मीटिंग के कारण बहुत व्यस्त हूँ। गाँधीजी ने महादेव देसाई को निर्देश दिया कि वे उन कागजों को कुमारप्पा को बाद में दिखा दें। कुमारप्पा एक पखवाड़े के बाद वरधा जाकर गाँधीजी से मिले। ऐसी कई घटनाएं है जिनमें उन्होंने अपने सामान्य नियमों को कई बार बड़ी-बड़ी हस्तियों के लिए भी नहीं तोड़ा।

7.5 अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ

27 अक्टूबर, 1934 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ (All India Village Industries Association - AIVIA) स्थापित करने का निर्णय लिया। कुमारप्पा को इस संघ को सचिव बनाना तय हुआ। उन्हें गांधजी के निर्देशन में कार्य करना था। कुमारप्पा ने यह खबर पटना के एक अखबार में पढ़ी। उन्होंने गाँधीजी को लिखा कि इस कार्य हेतु उनकी पूर्व स्वीकृति नहीं ली गई थी। गाँधीजी ने तुरन्त अपनी गलती स्वीकार कर ली एवं कुमारप्पा को कहा कि क्या अब उनकी स्वीकृति ली जा सकती है? कृपया कार्य प्रारम्भ कर दें एवं प्रक्रियात्मक गलती पर ध्यान न दें।

बाद में कुमारप्पा ने पूछा इस कार्य के लिए कोष कहाँ पर है एवं कार्यकर्ता कहाँ है? गाँधीजी ने कहा कोष की परवाह न करें जितना जरूरी होगा मिल जायेगा एवं कार्यकर्ता तो सबसे पहले कार्यकर्ता कुमारप्पा स्वयं है। इसके बाद कुमारप्पा ने AIVIA का कार्य प्रारम्भ कर दिया एवं पूरे देश का भ्रमण किया। वरधा में इसका मुख्यालय रखा गया। संघ को कार्यो को पाँच भागों में बांटा गया -

1. कोष जुटाना
2. शोध करना
3. साहित्य प्रकाशित करना
4. प्रचार
5. प्रशिक्षण, प्रसार एवं संगठन

इसके सदस्यों ने स्थानीय, स्वदेशी निर्मित वस्तुओं जैसे खादी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया व मिल के कपड़े का उपयोग ने करने की पे्ररणा दी गई। गाँव के मिट्टी के बर्तन, नीम व बबूल का दातुन, हाथ का बना कागज, गाँव के मोची के हाथ के बने जूते, गुड़ जैसी स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा देने की नीति अपनाई गयी। अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ की स्थापना के तुरन्त बाद 1934 में गाँधीजी ने लिखा कि ग्रामीण उद्योग संघ की केन्द्रीय प्रबन्ध मण्डल एक प्रशासनिक मण्डल नहीं होगा बल्कि एक सलाहकार मण्डल एवं देखरेख करने वाला संस्थान होगा। हम प्रशासन के केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं है। हम केवल ज्ञान एवं नीति निर्माण का

केन्द्रीकरण चाहते हैं। इसके सदस्य जाति से ऊपर उठकर सभी का सहयोग लेकर कार्य करेंगे। 1936 में AIVIA में एक प्रदर्शनी आयोजित की जिसका उद्घाटन गाँधीजी ने किया। यह प्रदर्शनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ की मीटिंग के अवसर पर लगाई गई थी। इसका लक्ष्य गाँव की वस्तुओं का प्रदर्शन कर उनके लिए मांग उत्पन्न करना न होकर उत्पादन प्रोत्साहन एवं मांग के अनुरूप उत्पादन करना था। जिन कृषि उत्पादनों को इसमें सम्मिलित किया गया उनकी संख्या कुल 60 थी1। इस प्रकार महात्मा गाँधी की इच्छा के अनुरूप AIVIAके गठन का उद्देश्य जनता के साथ अधिक से अधिक जुड़ना था। इसके लिए ग्रामीण उद्योगों का पुनरूद्धार कर उन्हें पुनर्जीवित करना था। हरिजन उद्धार के लिए गाँधीजी की भारत यात्रा के दौरान उन्हें यह अनुभव हो गया कि बड़े पैमाने पर व्याप्त बेरोजगारी का इलाज खादी में निहित है। 1934 में गाँधीजी ने अखिल भारत बुनकर संघ की स्थापना भी की थी एवं उसी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कुमारप्पा जी के सहयोग से अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ बनाया था एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

Venu Madhav Govindu and Deepak Malghan say, "Kumarappa's philosophy represents a sweeping and original analysis of some of the most important constituents of the human economic predicament. He developed an internally consistent teleological framework that delved into such fundamental questions of economic theory and philosophy as the nature of the individual, value theory, nature of work, division of labour, role of the state, right to property and money as a medium of exchange." AIVIA के बनने के दो वर्ष बाद 1936 में कुमारप्पा ने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने अपने ग्राम आधारित स्वदेशी विकास के ग्रामीण उद्योग मॉडल के सैद्धान्तिक आधारों का विवेचन किया। गाँधीवादी आर्थिक विचारों को विस्तृत रूप में उल्लेख्ति करने वाला उनके इस पहले ग्रन्थ का नाम "Why the Village Movement? : A Plea for the Village Centred Economic Order" रखा गया। कुछ वर्षो बाद "भारत छोड़ो" आन्दोलन के दिनों में कुमारप्पा को जेल जाना पड़ा। जेल में उन्होंने दो पुस्तके लिखी। पहली पुस्तक का नाम "Practice and Precepts of Jesus" था। दूसरी पुस्तक का नाम Economy of Permanance : A Quest for a Social Order based on Non-Violence" रखा गया। इस पुस्तक में कुमारप्पा के आर्थिक दर्शन की विवेचना देखने को मिलती है। यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि कुमारप्पा कोई विद्वान दार्शनिक नहीं थे। गाँधीजी की तरह कुमारप्पा भी कार्य करने में विश्वास रखते थे।

7.6 सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर दृढ़ विश्वास

गाँधीजी की ही भांति कुमारप्पा का भी सत्य एवं अहिंसा में दृढ़ विश्वास था। इसी वजह से वे अर्थव्यवस्था को (Natural Order) प्राकृतिक आधार पर आगे बढ़ाना चाहते थे। 1930 में खुलकर कार्यक्रमों में भाग लेने से पूर्व वे अपने इसी सिद्धान्त पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने कहा कि, "मानव संस्थानों के अध्ययन में हमें माँ प्रकृति को कभी नजर अंदाज नहीं करना चाहिये| जो भी हम निर्मत करे, यदि वह उसके (माँ प्रकृति) विरुद्ध हो तो वह

उसे तत्काल या कुछ समय बाद ही बेरहमी से सफाया कर देगी| प्रकृति में मौजूद सब कुछ एक चक्रीय चाल का अनुसरण करते हैं| नदी से पाने भाप के रूप में उठता है और फिर प्रथ्वी पर ताजा वर्षा के रूप में गिरती है और फिर से नदी में लौट जाती है| .... एक राष्ट्र जो संस्थाओं के निर्माण के वक्त उक्त मौलिक प्रक्रिया को लता है या अनदेखी करता है तो वह भीकर जाएगा|"

कुमारप्पा का दृढ़ विश्वास था कि सभी प्राणी प्रकृति के जन्म एवं क्षय तथा पुनर्जन्म रूपी चक्र से नियंत्रित होते हैं। इस चक्र में किसी भी स्तर पर यदि बाधा उत्पन्न होती है तो उसका परिणाम हिंसा होता है। उनके यह विचार विद्यार्थी जीवन से ही थे कोलम्बिया में पढ़ते हुवे भी उनका मानना था कि सार्वजनिक वित्त किसी भी देश की सरकार के हाथ में शक्तिशाली शस्त्र हैं एवं सरकार को इसका प्रयोग देश के प्राकृतिक संसाधनों के हित में इस प्रकार करना चाहिए कि प्रकृति के नियम की रक्षा हो सके। कर (tax) इस प्रकार उन्हीं समूहों पर लगाने चाहिए जो चुकाने के लिए सक्षम है एवं कर देने का उन्हें अहसास ही न हो जैसे समुद्र से पानी भाप बनकर ऊपर उठ जाता है एवं बाद में वर्षा बनकर पुनः आवश्यकतानुसार राहत पहुँचाता है।

इकानोमी ऑफ परमानेन्सः- विश्व युद्ध के दिनों में कुमारप्पा ने जेल में सार्वजनिक चर्चित पुस्तक "Economy of Permenance" लिखी। प्रारम्भिक पृष्ठों पर उन्होंने लिखा स्थायी क्या है? मानव जीवन तो 100 वर्षों का है जबकि प्रकृति स्थायी है और उसका स्थायित्व प्रकृति के चक्र में निहित है। जब तक क्षय व पुनर्जन्म का यह चक्र चलेगा प्रकृति स्थायी रहेगी।

कुमारप्पा का यह विश्वास बड़ा ही दृढ़ था कि भौमिक एवं जैविक चक्र एवं प्रकृति के अनुरूप जीवन (natural order) वस्तुतः सत्य, अहिंसा एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है एवं सभी प्राणी इस चक्र से बंधे होते हैं। उस पर विजय प्राप्त कर उसके विरोध में आचरण नहीं करते। केवल मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी बुद्धि चातुर्य से प्रकृति के इस चक्र के विरूद्ध आचरण करने की क्षमता रखता है अतः मनुष्य मात्र पर प्रकृति के चक्र का पालन करने की बड़ी जिम्मेदारी है। कुमारप्पा सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। वह इस बात पर विचार करते हैं कि प्राकृतिक चक्र में किस प्रकार उद्विकास सम्भव होता है इस प्रकार वह विभिन्न उद्विकास क्रम को पाँच भागों में विभक्त करते हैं :

1. परजीवी अर्थव्यवस्था (Parastic Economy)
2. परभक्षी अर्थव्यवस्था (Predatory Economy)
3. उद्यमशील अर्थव्यवस्था (Economy of Enterprise)
4. मिलनसार अर्थव्यवस्था (Economy of Gregation)
5. सेवा अर्थव्यवस्था (Economy of Service)

प्रथम दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के उद्विकास में किसी भी प्रकार का प्राकृतिक चक्र नहीं होता न कोई अधिकार होते हैं न दायित्व। उद्यमशील व्यवस्था में व्यक्तिगत हित की भी भावना होती है। यह मानव सभ्यता के विकास का प्रथम चरण है। इसमें परोपकार की भावना की कमी से हिंसा की प्रधानता होती है। मिलनसार अर्थव्यवस्था में स्वहित की भावना का स्थान समाज का हित ले लेता है चूँकि उसकी समझ में यह आ जाता है कि मनुष्य केवल स्वहित के आधार पर समाज का निर्माण नहीं कर सकता। इससे मानव के जीवन में कुछ परोपकार की भावना आ जाती है एवं वह समूह के हित की सोच रखने लगता है। व्यक्ति इस अर्थव्यवस्था में मधुमक्खी की भांति व्यक्ति की जगह समाज की सोचने लगता है परन्तु फिर भी हिंसा मुक्त समाज की स्थापना नहीं हो पाती। कुमारप्पा के अनुसार मिलनसार अर्थव्यवस्था में कर्तव्यों और दायित्वों को एक सीमित रूप से परिभाषित समूह द्वारा ही पहचाना जाता है| इस समूह के बाहर अंतर्वैक्तिक सम्बन्धों में वैक्तिक हित के आधार पर संचालित होते हैं|

सेवा अर्थव्यवस्था एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें अधिकार से अधिक दायित्वों को निभाने की भावना मजबूत हो जाती है। यदि अर्थव्यवस्था में दायित्वों के स्थान पर अधिकारों की भावना है तो वह सामाजिक उद्विकास की सेवा अर्थव्यवस्था का चरण नही है। यहाँ पर समाज अथवा देश में उपलब्ध संसाधनों का दोहन भी लाभ के उद्देश्य को रखकर नहीं होता बल्कि उतना ही होता है जितना दीर्घकालिक विकास में बाधा उत्पन्न न करे। कुमारप्पा के मत में संसाधनों के दो भाग है एक जिनका पुनर्भरण हो सकता है एवं दूसरा जिनका पुनर्भरण नहीं होता। जिस समाज में दूसरे प्रकार के संसाधनों का उपयोग होता है वह भी कुमारप्पा के मत में मिलनसार अर्थव्यवस्था ही है| वस्तुतः सेवा अर्थव्यवस्था में मात्र पुनर्भरणयोग्य संसाधनों को ही उपयोग में लिया जाता है। वस्तुतः कुमारप्पा को ही पहले पर्यावरण रक्षक के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए क्योंकि वह प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुंध उपयोग के पक्षधर नहीं थे। कुमारप्पा ने प्रकृति एवं प्राणी से जो चक्रीय कल्पना की वह निम्नांकित चार्ट से दर्शायी जा सकती है:

प्रक्रति (Nature)

परिवर्तनीय/ विनाशकारी (Transient/Destructive)	स्थाई/ सृजनात्मक (Permanent/Creative)
अधिकारों पर आधारित और परोपकारी मूल्यों का अभाव (Based on rights, with the absence of Altruistic values)	कर्तव्यों और परोपकारी मूल्यों पर आधारित (Based on Duties and altruistic Values)
सभी प्राणी (मनुष्य भी सम्मिलित) (All creatures including man)	सुसंस्कृत मनुष्य (Cultured man)

परजीवी अर्थव्यवस्था	परभक्षी अर्थव्यवस्था	उद्यमशील अर्थव्यवस्था	मिलनसार अर्थव्यवस्था	सेवा अर्थव्यवस्था
कोई योगदान नहीं	कोई योगदान नहीं या योगदान में हिस्सा नहीं	योगदान और विवेकसम्मत (sensible) हिस्सा	हिस्से से अधिक योगदान	बिना लाभ प्राप्ति की इच्छा रखते हुए योगदान

सन् 1937 में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया। श्री जवाहर लाल नेहरू के अनुरोध पर गाँधीजी ने कुमारप्पा को इस समिति में कार्य करने को कहा। कुछ समय कार्य करने के बाद कुमारप्पा को ऐसा लगा कि उनके समय का समिति में सद्उपयोग नहीं हो रहा है तो उन्होंने नियोजन समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद केन्द्रीय प्रोविन्स सरकार ने एक औद्योगिक सर्वेक्षण समिति का गठन कुमारप्पा की अध्यक्षता में किया। कुमारप्पा ने यह कार्य स्वीकार कर लिया एवं बताया कि हमारे देश के विकास के लिए किस प्रकार एक केन्द्रीय कार्यक्रम का संचालन किया जाता है। इसके बाद उनकी इस योग्यता के कारण उन्हें ऐसे कई कार्य सौंपे गये। उनके इस कार्य एवं कार्यशैली की काफी सराहना की गई।

7.7 मुद्रा एवं विनिमय पर विचार

कुमारप्पा के मत में वस्तुओं का लेन-देन एवं भौतिक विनिमय नहीं बल्कि नैतिक भी है। उदाहरणार्थ यदि कोई क्रेता ऐसी वस्तु खरीदता है जिसका उत्पादन श्रमिकों के शोषण का परिणाम है तो वह क्रेता भी उस शोषण एवं कार्यदशा के लिए जिम्मेदार है। उत्पादक एवं क्रेता के बीच की दूरी से विनिमय का नैतिक आधार पर मूल्यांकन में बाधा आती है। इसके लिए कुमारप्पा चाहते थे कि उत्पादन विकेन्द्रित हो जिससे क्रेता उन वस्तुओं को क्रय करते समय उन परिस्थितियों को भी देख सके जिनके अन्तर्गत वस्तु विशेष का उत्पादन किया गया है। इस प्रकार गाँधीयन अर्थशास्त्र की विकेन्द्रित उत्पादन के सिद्धान्त का आधार नैतिक विनिमय की जिम्मेदारी है।

मुद्रा का प्रयोग करने के कारण वस्तु के विनिमय का नैतिक मूल्यांकन असम्भव हो जाता है। मुद्रा का उपयोग शोषण एवं असमानता को बढ़ाता है। मुद्रा का भौतिक रूप में उस प्रकार क्षय नहीं होता जैसे भौतिक वस्तुओं का होता है। नाश्वान वस्तुओं के सन्दर्भ में वस्तुओं का क्षय त्वरित होता है। एक केला अथवा मछली बेचने वाले की मोलभाव क्षमता उस व्यक्ति के मुकाबले काफी कम होगी जो स्वर्ण धातु का व्यवसाय करता है। अतः कुमारप्पा बहुउद्देशीय सहकारी समिति बनाना चाहते थे जिससे मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार रोका जा सके। वे मुद्रा व्यवस्था के भी विकेन्द्रीयकरण के पक्षधर थे। मुद्रा आधारित विनिमय व्यवस्था को वे प्रकृति व्यवस्था के विपरीत मानते थे। हिंसा एवं शोषण के द्वारा ही बड़े पैमाने पर संचय होता है। अतः कुमारप्पा मुद्रा के प्रयोग से विनिमय के पक्षधर नहीं थे। वे उत्पादन के केन्द्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे।

7.8 केन्द्रीयकृत नियोजन एवं उत्पादन का विरोध

रूस के क्रांति के बाद जन्मी समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधाराओं में केन्द्रीयकृत उत्पादन एवं नियोजन प्रणाली की सफलता से कई भारतीय नेता भी भारत को तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग पर ले जाना चाहते थे। वे उत्पादन के साधनों का नियंत्रण राज्य के हाथों में देना चाहते थे परन्तु कुमारप्पा समाजवादी केन्द्रीय नियोजन एवं संसाधनों पर सामूहिक स्वामित्व के पक्षधर नहीं थे। उनका मत था कि दोनों ही प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में चाहे वह पूँजीवाद हो अथवा साम्यवाद सत्ता एवं राज्य अधिकारों का संचालन कुछ हाथों तक सिमट जाता है एवं इन व्यवस्थाओं में आम जनता का कल्याण नहीं हो पाता। इसलिये कुमारप्पा ग्राम उद्योग संघ के माध्यम से उत्पादन की विकेन्द्रित व्यवस्था लागू करना चाहते थे।

सोवियत रूस के आर्थिक विकास माडल का विरोध करने के कारण जयप्रकाश नारायण ने एक पर्चा छपवाकर इसका भारी विरोध किया। केन्द्रीय नियोजन प्रणाली में आर्थिक विकास की गति अवरूद्ध हो जाती है। वे जानते थे कि कुछ क्षेत्र जैसे यातयात (रेल्वे) विद्युत उत्पादन आदि उद्योगों में प्राकृतिक रूप से एकाधिकार विद्यमान होता है ऐसी स्थिति में राज्य को संसाधनों का नियंत्रण जनता के हाथ में लेकर ग्रामीण उद्योगों को समर्थन देना चाहिए। इस प्रकार कुमारप्पा को ग्राम विकास कार्यक्रमों की बड़ी समझ थी एवं उनके विचार गाँधीजी के विचारों से मेल खाते थे। उनकी योजनाओं का अक्सर गाँधीजी की सहमति मिल जाती थी।

7.9 कृषि व्यवस्था

कृषि व्यवस्था के तीव्र औद्योगीकरण के समर्थन की बजाय कुमारप्पा की समझ में कृषि को भारतीय सन्दर्भ में समझना अधिक आवश्यक था। उन्होंने कहा कि कृषि एक उद्योग की भांति भी है तो एक व्यवसाय भी। इसलिये पश्चिमी देशों की औद्योगिक कृषि जहाँ पूँजी की प्रचुरता एवं श्रम की कमी है के स्थान पर वे कृषि को जीवन निर्वाह के एक व्यवसाय के रूप में विकसित देखना चाहते थे। ग्राम उद्योग पत्रिका में उन्होंने लिखा कि "उद्योग के रूप में कृषि के सिद्धांतों और व्यवसाय के रूप में उसके सिद्धांतों में अंतर है|" जहाँ श्रम बहुतायत में मौजूद हो और पूँजी का अभाव, वहाँ कुमारप्पा पूंजीवादी सिद्धांतों के अनुसरण का विरोध करते थे| कुमारप्पा ने बताया कि कृषि के तीन प्रमुख अंग है- भूमि, मानव, श्रम एवं सरकार। हमारी तत्कालिक आवश्यकता खाद्यान्न पूर्ति के साथ ही कृषि का दीर्घकालीन विकास भी हमारा लक्ष्य होना चाहिए। कुमारप्पा अपने तर्क देकर प्रकृति व्यवस्था के आधार पर भूमि की उर्वरता के रक्षण के प्रबल पक्षधर थे। उर्वरता की रक्षा के लिए देसी खाद व कम्पोस्ट खाद का उपयोग करने की सलाह देते हैं। क्योंकि उर्वरकों के उपयोग से भूमि की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है एवं प्राकृतिक व्यवस्था भी गड़बड़ा जाती है। जिस भूमि की उर्वरा शक्ति कमजोर है, उनका वैज्ञानिक समाधान खोजा जाय। भूमि की उर्वरा शक्ति का परीक्षण किये बिना उन्होंने कहा रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

कुमारप्पा ने संतुलित खेती के बारे में अपनी योजना जून 1946 में ग्राम उद्योग पत्रिका के अंक 8(6) में प्रकाशित की। एक लाख व्यक्तियों की एक क्षेत्र विशेष की इकाई को आधार मानकर 2800 कैलोरी भोजन एवं कपड़े की आवश्यकता के आधार पर उन्होंने यह योजना तैयार की एवं इसके क्रियान्वयन में राज्य की एक निश्चित भूमिका का भी उल्लेख किया। कुमारप्पा कृषि के लिए एक निश्चित सरकारी नीति लागू करना चाहते थे जिसमें कृषि उपज किसान की स्वेच्छा पर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के आधार पर होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1949 में काँग्रेस ने कृषि सुधार पर एक समिति कुमारप्पा के निर्देशन में बनाई जिसमें जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की। समिति ने विस्तृत भ्रमण कर किसानों की स्थिति उनकी ऋणग्रस्तता पर भी रिपोर्ट दी। 1950 तक भारत में प्रभावी भूमि सुधार लागू नहीं किये जा सके। इसके साथ ही विनोबाभावे के सर्वोदयी विचार एवं भूदान आन्दोलन भी प्रारम्भ हुये। कुमारप्पा ने संतुलित खेती ;ठंसंदबमक ब्नसजपअंजपवदद्ध के बारे में अपनी योजना जून 1946 में ग्राम उद्योग पत्रिका के अंक 8(6) में प्रकाशित की। एक लाख व्यक्तियों की एक क्षेत्र विशेष की इकाई को आधार मानकर 2800 कैलोरी भोजन एवं कपड़े की आवश्यकता के आधार पर उन्होंने यह योजना तैयार की एवं इसके क्रियान्वयन में राज्य की एक निश्चित भूमिका का भी उल्लेख किया। कुमारप्पा कृषि के लिए एक निश्चित सरकारी नीति लागू करना चाहते थे जिसमें कृषि उपज किसान की स्वेच्छा पर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के आधार पर होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1949 में काँग्रेस ने कृषि सुधार पर एक समिति कुमारप्पा के निर्देशन में बनाई जिसमें जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की। समिति ने विस्तृत भ्रमण कर किसानों की स्थिति उनकी ऋणग्रस्तता पर भी रिपोर्ट दी। 1950 तक भारत में प्रभावी भूमि सुधार लागू नहीं किये जा सके। इसके साथ ही विनोबाभावे के सर्वोदयी विचार एवं भूदान आन्दोलन भी प्रारम्भ हुये।

7.10 सारांश

कुमारप्पा एक विचारक विद्वान एवं गाँधीवादी विचारों के नेता थे जिनका जन्म 1892 में तमिलनाडु राज्य में हुआ। इसाई परिवार में जन्मे कुमारप्पा का नाम जोसफ था। जोसफ विद्यार्थी जीवन से ही एक मेधावी बालक थे। ये इन्जिनियर बनना चाहते थे परन्तु इन्हें परिस्थितियां एकाउन्टेसी की तरफ ले गई। इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गाँधीजी के साथ कार्य किया। इन्होंने अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ की स्थापना की। सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर इनका अटूट विश्वास था। इन्होंने अपने आर्थिक विचार इकानोमी ऑफ परमानेन्स नामक पुस्तक में व्यक्त किए।इनका दृढ़ विश्वास था कि जीवन प्रकृति के अनरूप होना चाहिए। कुमारप्पा मुद्रावादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर नैतिक मूल्य आधारित विनिमय प्रणाली लागू करना चाहते थे। 1937 में राष्ट्रीय नियोजन समिति के सदस्य बने। कुमारप्पा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे। इनका मत था कि कृषि विकास से ही भारत का आर्थिक विकास सम्भव है। कृषि में कुमारप्पा उर्वरकों का उपयोग करना नहीं चाहते थे। कृषि

जीवन निर्वाह का साधन है। 1949 में कृषि सुधार समिति के अध्यक्ष के रूप में कुमारप्पा ने जमींदारी व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की।

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लिंडले, मार्क, जे. सी. कुमारप्पा : महात्मा गाँधीस इकॉनोमिस्ट, पॉपुलर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007
2. जे. सी. कुमारप्पा, इकोनोमी ऑफ पर्मानेंस, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1984
3. जे. सी. कुमारप्पा, वाई दी विल्लेज मूवमेंट, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी,1958
4. जे. सी. कुमारप्पा, कॉव इन अवर इकॉनोमी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1963
5. जे. सी. कुमारप्पा, गाँधीयन इकॉनोमिक थोट, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी,1962
6. जे. सी. कुमारप्पा, स्वराज फॉर थे मास्सेस, हिन्द किताब लि. बम्बई 1948
7. जे. सी. कुमारप्पा, यूरोप थ्रू गाँधीयन आईस, मगनवाडी, वर्धा, 1948
8. जे. सी. कुमारप्पा, पीस एंड प्रोस्पेरिटी, मगनवाडी, वर्धा, 1948
9. जे. सी. कुमारप्पा, लेस्संस फ्रॉम यूरोप, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वर्धा 1954

इकाई – 8

भारत में गाँधीवादी आन्दोलन

इकाई रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 व्यवहार में गाँधी

8.3 गाँधीवादी आंदोलन

8.3.1 चिपको आन्दोलन

8..3.1.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

8.3.1.2 दार्शनिक आधारशिला

8.3.1.3 चिपको एवं सर्वोदय

8.3.2 ’सेवा’ आन्दोलन

8.3.2.1 दार्शनिक आधारशिला

8.3.2.2 लक्ष्य

8.3.2.3 उपलब्धियां

8.3.2.4 वैश्वीकरण की चुनौतियां

8.3.3 खादी आन्दोलन

8.3.3.1 पृष्ठभूमि

8.3.3.2 प्रोग्राम एवं उद्देश्य

8.3.3.3 उपलब्धियां एवं महत्व

8.3.4 भूदान-ग्रामदान आन्दोलन

8.3.4.1 दर्शन एवं लक्ष्य

8.3.4.2 उपलब्धियां एवं सीमाऐं

8.4 सांराश

8.5 अभ्यास प्रश्न

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् भारत में संचालित किये जाने वाले विभिन्न गाँधीवादी शांति आन्दोलन के बारे में जान पायेंगे। इसमें:-

- आप चिपको आन्दोलन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, दार्शनिक आधार और कार्यो के बारे में जान पायेंगे।
- आप सेवा आन्दोलन के दार्शनिक आधार, लक्ष्य, उपलब्धियाँ तथा चुनौतियों की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- आप खादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, उद्देश्य, कार्य, उपलब्धियाँ तथा महत्व की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- आप भूदान एवं ग्रामदान का अर्थ, लक्ष्य, उपलब्धियाँ, चुनौतिया एवं सीमाओं की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

8.1 प्रस्तावना

शान्ति आन्दोलन के बारें में बातचीत करने से पूर्व यह अपरिहार्य सा लगता है कि शान्ति की बात की जाए। शान्ति एक लचीला शब्द है। एक ऐसा शब्द है जिसका ओर-छोर नहीं मालूम पड़ता। इसलिए इसके सही अर्थ को पता लगाना मुश्किल है। यह अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग अर्थ रखता है तथा विभिन्न

परिस्थितियों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। यह स्वास्थ्य की भांति है जिसको कि समग्रता मे समझ पाना निहायत ही मुश्किल कार्य है। तथापि इन सारी बातों को देखते हुए शान्ति की एक निष्चित परिभाषा न सिर्फ संभव नहीं बल्कि शायद आवश्यक भी नहीं है। शान्ति के स्वरूप को सामान्य तौर पर समझने हेतु एवं शान्ति आन्दोलन को विशेष रूप से समझने के लिए यद्यपि इसे परिभाषित करना अपरिहार्य हो जाता है। आधुनिक समय में जोहान गाल्तुंग नामक वैज्ञानिक ने शान्ति पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। वह गाँधी से अत्यंत प्रभावित रहा है। उसने शान्ति के दो आयामों की चर्चा की है।

एक, नकारात्मक शान्ति जिसका कि अर्थ है युद्ध एवं वास्तविक हिंसा की अनुपस्थिति एवं दूसरी, सकारात्मक शान्ति जिसका अर्थ है मानव समाज का एकीकरण। इस दूसरे आयाम को पुनर्परिभाषित करते हुए उसने शान्ति को भौतिक एवं संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति एवं मानव समाज के एकीकरण के साथ साथ मानव परिपूर्णता से जोड़ा। इस तरह से गाल्तुंग शान्ति को ऐसी स्थिति के समान मानता है जहाँ पर कि अस्तित्व की आवश्यकताएं (यथा सुरक्षा, स्वतंत्रता, कल्याण एवं अस्मिता) पूर्ण हो सके। गाल्तुंग के अनुसार समाज में शान्ति को चार प्रकार के खतरे हैं यथा हिंसा, दमन, तंगहाली एवं अलगाव।

एक मत के अनुसार, सभी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में तथा सभी काल में शान्ति के तीन विभिन्न अर्थों ने समानान्तर रूप से अपना महत्व दिखाया है। इन तीनों अर्थों को एक पिरामिड में व्यवस्थित किया जा सकता है। शान्ति की सबसे सामान्य स्थिति को पिरामिड की सबसे निचली पायदान पर रखा जा सकता है। यह शान्ति का सबसे संकीर्ण एवं नकारात्मक अर्थ है जिसके अनुसार शान्ति का अर्थ है परम्परागत या आण्विक, छोटे या बड़े युद्ध या इनकी सम्भावना की अनुपस्थिति। दूसरे स्तर पर, शान्ति पहली स्थिति से अधिक व्यापक एवं सकारात्मक है। जहाँ पर शान्ति का अर्थ प्रत्यक्ष हिंसा (तथा इनकी संभावना/आशंका) की अनुपस्थिति के साथ-साथ अप्रयत्क्ष एवं संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति है। यह मत न सिर्फ आण्विक युद्ध की आशंका के खतरों को रेखांकित करता है बल्कि यह धीमी गति के युद्ध, जो गरीबी, भुखमरी ओर शोषण के रूप में विश्व के विभिन्न हिस्सों में चल रहे हैं, उनकी ओर इशारा करता है। शान्ति का तीसरा अर्थ है जो कि इस पिरामिड के शीर्ष पर है। यह सबसे अधिक व्यापक एवं महत्वाकांक्षी है। इसे गाँधी जैसे दार्शनिक एवं नानक, बुद्ध तथा महावीर जैसे पैगम्बरों से जोड़ा गया है। इसके अनुसार शान्ति मानवीय मन की आंतरिक स्थिति है, जो व्यक्ति एवं समूह के शान्तिपूर्वक एवं अहिंसक व्यवहार के बाहरी पहलू एवं अभिव्यक्ति से अभिन्न रूप से जुडा है। पूर्वोत्य और पश्चिमी सभ्यताओं में, प्राग-औद्योगिक, औद्योगिक एवं उत्तर-औद्योगिक समाजों में इन तीनों ही छवियों ने समान रूप से अपना अस्तित्व बनाए रखा है और ये आज भी अलग-अलग अंश में उपस्थित हैं। हां, ये जरूर है कि धनाढ्य देशों एवं समाजों में नकारात्मक शान्ति का आर्थिक महत्व दिखता है क्योंकि वहां व्यक्ति/समाज की सामान्य, भौतिक आवश्यकताए पूरी हो चुकी होती हैं जबकि सकारात्मक शान्ति, विकासशील एवं पिछड़े समाजों में, जहाँ बाहरी एवं भीतरी शोषण अधिक तीक्ष्ण है, में अधिक महत्व रखती है।

8.2 व्यवहार में गाँधी

गाँधी की बात की जाए तो हम यह पाते है कि गाँधी कोई आदर्शवादी विचारक नहीं थे। संसार के अनेकं दार्शनिकों के विपरीत, वे अपने प्रधान विचारों को व्यवहार में सफलता पूर्वक परिवर्तित कर लिया करते थे उनके लिए शब्दों एवं कर्म (कथनी व करनी) में कोई भी अंतर नहीं था। व्यवहार और आदर्श के मध्य उनहोंने अद्भुत सामंजस्य बिठाया जो कि उनके व्यापक विश्व दर्शन से उत्पन्न होता है। उनके विचारों से कई आंदोलन प्रस्फुटित हुए। उनके जीवित रहते हुए एवं उनके गुजरने के पश्चात भी नये आंदोलन अभियान एवं नागरिक समाज मंच, उदय होकर उनके विचारों एवं आदर्शों की प्रांसगिकता को पुनस्थापित करते हैं।

जैसा कि सर्वविदित है, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन महात्मा गाँधी के नेतृत्व से अतरंगता से प्रभावित था। इस आंदोलन ने न सिर्फ भारतवर्श को राजनीतिक स्वतंत्रता दिलवाई बल्कि 36 करोड़ भारतवासियों का उस समय, एवं आज 1 अरब से ऊपर लोगों को शान्ति के वृहत अर्थ (जिसमें न्याय, समता एवं सर्वकल्याण हो) के आधार पर नेतृत्व प्रदान किया। उनहोंने अपना जीवन और कर्म पूर्णतः सत्य अंहिसा और नैतिक आदर्शो को समर्पित कर दिया था। उनहोंने सत्याग्रह नामक विशुद्ध नई तकनीक को प्रयोग में लिया जो हिंसा के तौर-तरीकों एवं प्रयोग से दूर, सत्य और अहिंसा की पद्धतियों पर आधारित है।

गाँधी के नेतृत्व की ये विशेषता थी कि वे किसी भी प्रतिरोध आंदोलन को न्याय एवं शान्ति के आंदोलन में परिवर्तित कर दिया करते थे, जिसमें विरोधियों एवं प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति संवदेना की उपस्थिति रहती थी। उनके अनुसार शान्ति अपने अर्थ में अनिवार्यतः सर्वोदय यानि 'सभी का कल्याण' की भावना समेटती है। ये बेन्थम के 'सर्वोच्च संख्या के सर्वोच्च भले' से आगे की सोच है।

गाँधीवादी सोच ने शासन, प्रशासन, विकेन्द्रीकरण नीति, राजनीति में नैतिकता, शिक्षा, ग्रामीण एवं राष्ट्रीय विकास, आत्मनिर्भरता, स्वेच्छावाद, जाति व अस्पृष्यता जैसे क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान दिया है। समूहों व आन्दोलनों में इसकी लोकप्रियता का कारण भी इसका प्रकृति एवं मानवीय क्रिया कलापों के मध्य सामंजस्य बैठना रहा है। राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक उत्पादन के विकेन्द्रीकरण को आधार बनाकर एक शान्तिपूर्ण समाज की स्थापना ही इसका मूल ध्येय भी है।

8.3 गाँधीवादी आंदोलन

भारत में आज मुख्यतः दो प्रकार के शांति आंदोलन सक्रिय हैं। एक, वे स्वतंत्र, स्वायत्त आंदोलन जो प्रतिक्रियात्मक हैं और विकास के हमारे चुने हुए रास्ते के फलस्वरूप जो रूग्णता पैदा हुई है, उस कारण से सक्रिय हुए है जैसे, विद्यार्थी समूह, महिला संगठन, धार्मिक संस्थाऐं, पर्यावरण कार्यकर्ता, कलाकार, शिक्षाविद्, नागरिक अधिकार कार्यकर्ता एवं पत्रकार, इत्यादि। दूसरा, वे आन्दोलन जो अहिंसावादी है, गाँधीवादी हैं व

शान्ति एवं विकास के वैकल्पिक रास्ते पर आधारित हैं। इन दोनों ही धाराओं में ये सोच समान गंभीरता से व्याप्त हैं कि भारतीय पश्चिमी देशों में शान्ति के खतरों के जो कारण हैं, वे भारतीय लोगों पर बराबरी से लागू नहीं होते। भारत में शांति का सार्थक अर्थ केवल युद्ध की अनुपस्थिति नहीं हो सकती। यहां दैनिक जीवन में शांति अपनी सार्थकता एवं परिपूर्णता से तभी स्थापित हो सकेगी, जब आम आदमी को रोजी-रोटी, शोषण, दमन एवं अत्याचार से मुक्ति, अस्तित्व के संसाधनों तक पंहुच, सांस्कृतिक स्वायत्ता, एवं राज्य व शक्तिशाली की हिंसा से राहत मिले। इस प्रकार भारत में शान्ति आन्दोलन आधार एवं परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से पश्चिम के शांति आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न कहे जा सकते हैं। स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान व स्वतंत्रता पश्चात के कई आन्दोलनों पर गाँधीवादी प्रभाव देखने को मिलता है। निम्न आन्दोलनों के माध्यम से सत्याग्रह के गाँधीवादी दर्शन के तरीकों, लक्ष्यों, अनुरोधों, पहुँच और सफलता के विभिन्न पहलूओं का पता लगाया जा सकता है।

8.3.1 चिपको आन्दोलन

पूरे भारतवर्ष में ग्रामीण जनता के लिए वन एक महत्वपूर्ण संसाधन है। इससे खाना, ईधन व चारा तो मिलता ही है इसके अलावा मिट्टी और पानी के संसाधनों को स्थिर करने में विशेषकर पहाड़ी, एवं पर्वतीय क्षेत्रों में ये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। परन्तु वाणिज्य एवं उद्योग के निरन्तर फैलाव से वन सिकुड़ने लगे हैं। इससे सामान्य ग्रामीण जनजीवन बुरी तरह से प्रभावित होने लगा है। अपनी आजीविका की रक्षा हेतु भारतीय ग्रामीणों ने सत्याग्रह जैसे अहिसंक प्रतिरोध के गाँधीवादी तरीकों को अपनाया है।

1970 और 1980 के दशक में वनों के विनाष का ये प्रतिरोधी आन्दोलन व्यस्थित होकर पूरे देश में फैल गया । यह आन्दोलन 'चिपको' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये मूलतः एक पर्यावरण आन्दोलन था जो उत्तरांचल के सुदूर क्षेत्र से पनपा। वहां के लोगों ने 'विकास' के एजेंटों द्वारा पर्यावरण को लीलने के षड्यंत्र को समझते हुए अनेक प्रकार के प्रतिरोधी तकनीकों को विकसित किया जिन्हें सामान्य तौर पर चिपको नाम से जाना जाता है। 'चिपको' का शाब्दिक अर्थ है सीने से लगाना। संक्षेप में, चिपको एक प्रकार का विद्रोह था, उन बाहरी एजेन्सियों के विरूद्ध जो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पहाड़ों के पारिस्थितिकी सन्तुलन को बिगाड़ने पर आमादा थे। जब इनके पेड़ काटे जाने लगे, तो गढ़वाल के लोग विरोध में उठ खड़े हुए। इनके बचाव के लिए उनहोंने एक नायाब तरीका निकाला। यह तरीका था काटे जाने वाले पेड़ से स्वयं चिपक जाना और इस तरह से पेड़ों की जगह अपने को कटवा देने का साहस जुटाकर वनों की रक्षा करना।

पहाड़ों में वन आजीविका के मुख्य स्रोत होते हैं क्योंकि वहाँ खेती दुष्कर होती है। इस आंदोलन में स्थानीय स्वयंसेवी संस्था - दशोली ग्राम स्वराज्य संघ तथा क्षेत्र की महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रही। आंदोलन से जुड़े मुख्य व्यक्तित्व श्री चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में लोग वनों में प्रवेश कर पेड़ों को घेर लिया करते थे और पेड़ों को कटने से बचाने का प्रयास करते थे। कर्मशील, अनपढ़ महिलाओं को जंगल एवं वृक्षों के कटने के

नुकसान का भली भांति ज्ञान था, इसलिए उनहोंने आंदोलन को सक्रिय बनाने में भरपूर सहयोग दिया। इस प्रतिरोध आंदोलन ने देश के दूसरे भागों में अपने तरह के कई आंदोलनों को जन्म दिया। इस स्वतः प्रवर्तित प्रतिरोध ने, जिसने उतर प्रदेश के हिमालय में जन्म लिया, जल्दी ही आग की भांति उत्तर में हिमाचल, दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में राजस्थान, पूर्व में बिहार एवं मध्य भारत में विन्ध्य में अपने पैर जमाने शुरू कर दिये। इस आंदोलन के फलस्वरूप पश्चिमी घाट और विन्ध्य में पेडों की कटाई जबरदस्त ढंग से रूक गई एवं इसने जनता की पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील प्राकृतिक संसाधन नीति के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण दबाव बनाया।

8.3.1.1 ऐतिहासिक परिदृष्य

प्रकृति के निकट रहने वाले अधिकांश समुदाय इसकी रक्षा को कटिबद्ध रहते हैं। राजस्थान का विश्नोई सम्प्रदाय इन्हीं में से एक है कई वर्षां पूर्व राजस्थान के सुदूर पश्चिमी भाग में चिपको का असली रूप देखने को मिला था जब अमृता देवी नामक ग्रामीण विश्नोई महिला के नेतृत्व में 84 गाँवों के कई लोगों ने पेड़ों की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। जोधपुर के राजा को इसके कारण प्रदेश के संपूर्ण विश्नोई बाहुल्य गाँवों में पेड़ों को नष्ट नहीं करने के कड़े निर्देश देने पड़े थे।

8.3.1.2 दार्शनिक आधारशिला

ऐतिहासिक दार्शनिक एवं सांगठनात्मक तौर पर चिपको आंदोलन, परम्परागत गाँधीवादी सत्याग्रह का विस्तार है। इसका विशेष महत्व इस बात में है कि इस आंदोलन का जन्म स्वतंत्र भारत में हुआ। पारिस्थितिकीय स्थायित्व संतुलन एवं न्याय पर आधारित विकास के गाँधीवादी दर्शन से लैस इस आंदोलन ने सहज भाव से उतर प्रदेश के पर्वतीय इलाको में महिला शक्ति एवं पर्यावरण चेतना को महत्वपूर्ण ढंग से आगे बढ़ाया। गाँधीवादी की दो यूरोपीय शिष्याओं (मीराबेन एवं सरलाबेन) का भी इस संघर्ष की धरोहर पर गहरी छाप रही है। उन्होनें पहाड़ों में गाँधीवादी कार्यकर्ताओं की एक नई पौध को जन्म दिया, जिन्होने चिपको आंदोलन की आधारशिला रखी।

चिपको आंदोलन एक प्रकार से क्षेत्र में की गई कई विकेंद्रित स्वायत्त स्थानीय पहल का नतीजा है। इसके नेता एवं कार्यकर्ता मुख्य तौर पर ग्रामीण महिला हैं जो अपने समुदाय एवं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं, पुरूषों का भी इसमें महत्वपूर्ण सहयोग एवं सक्रिय भागीदारी आवश्यक रूप से है ही। प्रमुख चिपको व्यक्तित्वों में गाँधीवादी कार्यकर्ता एंव विचारक सुंदरलाल बहुगुणा है। 1981-1983 में 5000 कि.मी लम्बी हिमालय पद-यात्रा ने चिपको के संदेश को प्रचारित-प्रसारित किया। बहुगुणा ने नारा दिया “पर्यावरण ही स्थायी अर्थव्यवस्था है।” इनके अलावा चण्डी प्रसाद भट्ट आंदोलन के शुरूआती दौर के सक्रिय कार्यकर्ता रहे, जिन्होंने ने स्थानीय हित के लिए वन सम्पदा के संरक्षण एवं अविच्छिन्न प्रयोग की आवश्यकता पर बल देते

हुए स्थानीय उद्योग एवं उद्यमों का बढ़ावा दिलवाने का प्रयास किया। धूमसिंह नेगी ने बचनी देवी एवं अन्य महिलाओं के साथ मिलकर सर्वप्रथम पेड़ोंसे चिपक कर उनकी रक्षा की उनहोंने नारा भी दिया जिसका कि अर्थ था वनों से हमें मिट्टी, पानी और शुद्ध हवा मिलती है यानि हमें जीवन मिलता है।

8.3.1.3 चिपको एवं सर्वोदय

चिपको आंदोलन उत्तराखण्ड के लोगों की शांतिपूर्ण प्रतिरोध की अविरल परंपरा की ही समसामयिक अभिव्यक्ति है। उतर-स्वाधीनता काल में यहां के गाँधीवादी समर्थकों एवं कार्यकत्ताओं ने 1961 में उत्तराखण्ड सर्वोदय मंडल की स्थापना की। ये सर्वोदय आंदोलन चार मुख्य बिन्दुओं पर केन्द्रित रहा:-

1. महिलाओं को संगठित करना
2. शराब खोरी के विरूद्ध संघर्ष
3. वन अधिकारों के लिए संघर्ष
4. स्थानीय वन आधारित लघु उद्योगों की स्थापना

साठ एवं सत्तर के दशक में यह धारणा मजबूत होती जा रही थी कि वनों से लाभ उठाने की प्रवृत्ति एवं सोच की एक पारिस्थितिकीय सीमा होती है जिसका अनुमान अभी तक लगाया नहीं जा सका है। वनों के निरंतर कटाव से पर्यावरण पर खतरे बनने लगे जोकि महिलाओं के आम जीवन एवं स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने लगे। महिलायें ही मोटे तौर पर चारा इकटठा करना एवं पानी लाने का काम करती थीं। इसी प्रकार अन्य समस्याऐं भी पैर पसारने लगी थीं। वनों के संकट से निजात दिलाने हेतु शासन व नौकरशाही कितनी भी सक्षमता व संवेदनशीलता से कार्य क्यों न कर ले, सभ्यता की सहज प्रतिक्रिया का विकल्प नहीं हो सकते। आन्दोलन से जुड़े गाँधीवादी कार्यकर्ता अपने जमीनी कार्यों में दक्षता हासिल कर परिपक्व होने लगे थे। चिपको की सफलता के अनेको उदाहरण गढ़वाल के सामने हिमालय में आने लगे। अडवानी, अमरसर और बदियारगढ़ ऐसे ही कुछ नाम हैं। हालांकि वे यह भी महसूस करने लगे थे कि स्थानीय लघु उद्योगों के लिए वन उत्पाद की आपूर्ति का प्रश्न अब उतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया था। इसका स्थान, पानी एवं चारा की आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए वनों के संसाधन पर पारिस्थितिक नियंत्रण की नई मांग ने ले लिया था।

1990 के दशक में भारत में पर्यावरण चेतना नाटकीय ढंग से बढ़ी और इसके साथ ही साफ एवं स्वच्छ पर्यावरण की वकालत करने वाली व्यवस्थित लॉबीज़ की संख्या भी। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने प्रदूषण नियंत्रण के नए कानून भी बनाए यद्यपि इन्हें लागू करने के प्रभावी तरीके मोटे तौर पर अनुपस्थित ही रहे। 'चिपको' के समर्थकों ने अगस्त 1994 में टिहरी के बांध के निर्माण का पुरजोर विरोध किया था। इसके निर्माण

से पेड़ों के सामूहिक कटाव एवं बाढ़ की भयानक स्थिति उत्पन्न हो सकती है। आज राज्य के अनेक विधायकों एवं दलों का सम्मान चिपकों कार्यकर्ताओं एवं आन्दोलन को प्राप्त है। आज भी 'पेड़ को हृदय से लगाने वाले' सक्रिय हैं। अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पर्यावरण और विकास में कोई अन्तविरोध नहीं है। वास्तव में, ये आन्दोलन इस बात में गहराई से विश्वास करता है कि पारिस्थितिकी रक्षण या पर्यावरण का बचाव विकास के रास्ते पर ही जाता है, भले ही आम धारणा इसके विपरीत हो। चिपको का ये दार्शनिक एवं अस्तित्ववादी पहलू गाँधीवादी दर्शन से सार्थक रूप से प्रभावित है और इसलिए 'व्यवहार में गाँधी' का एक अद्भुत उदाहरण है।

8.3.2 'सेवा' (SEWA) आन्दोलन

'सेवा' यानि (Self Employed Women Association) जिसका अर्थ है स्वनियोजित महिला संघ। 'सेवा' एक श्रमिक संघ है जो 1972 में पंजीकृत हुई। यह गुजरात की स्वनियोजित महिला मजदूरों का संगठन है। इसकी सदस्यता लगभग सात लाख से अधिक है। ये महिलाएं अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के ग्रामीण और शहरी कार्य क्षेत्रों से जुड़ी हुई हैं। ये महिलाएं अपनी आजीविका छोटे मोटे धंधे करके या मजदूरी करके प्राप्त करती है। उद्योग के संगठित क्षेत्र के श्रमिकों की भाँति इन्हें नियमित व वैतनिक रोजगार मुहैया नहीं होता।

'सेवा' की स्थापना 1920 में अनुसुईया साराभाई नामक महिला द्वारा हुई। टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (TLA) नाम, भारत के सबसे पुराने एवं सबसे बड़े कपड़ा मजदूर संघ को इसका मूल संघ माना जाता है।

'सेवा' एक ही समय में संगठन तथा आन्दोलन दोनों ही माना जाता है। एक आन्दोलन के रूप में यह तीन विभिन्न आन्दोलनों का संगम है। श्रमिक आन्दोलन, सहकारी आन्दोलन और महिला आन्दोलन। पर इसके साथ ही यह स्वनियोजित मजदूरों का भी आन्दोलन है। महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण के आन्दोलन के रूप में यह एक अनूठी मिसाल है। अपने ही आन्दोलन के माध्यम से महिलाऐं सबल एवं दृष्टिगोचर होती है, एवं समाज को उनके आर्थिक एवं सामाजिक योगदान की पहचान बनती है।

8.3.2.1 दार्शनिक आधारशिला

सामाजिक परिवर्तन के लिए संगठित 'सेवा' की गरीब, दुर्बल, स्वनियोजित महिलाओं का मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्रोत गाँधीवादी दर्शन ही है। गाँधी के सत्य, अहिंसा, सर्वधर्म और खादी के सिद्धान्तों का इसमें अनुकरण किया गया है। महात्मा गाँधी ने 1917 में कपड़ा मजदूरों की एक हड़ताल को अहमदाबाद में सफल नेतृत्व प्रदान किया था। उनका मानना था कि मजदूरों में चेतना जागृत करने से सकारात्मक संगठित बल की रचनात्मक सृजना सम्भव थी, एकता और व्यक्तित्व को विकसित करके नियोक्ता या राज्य की निरंकुशता से बचा जा

सकता था। इस बल का विकास, श्रमिक के पारिवारिक व कार्यस्थल के सभी पहलुओं को समेटने वाले श्रमिक संघ/संगठन से सम्भव हो सकता था।

8.3.2.2 लक्ष्य

'सेवा' के मुख्य उद्देश्य महिला मजदूरों को पूर्व रोजगार/व्यवसाय दिलाना है। पूर्ण रोजगार का अर्थ है वह रोजगार जिससे मजदूरों को कार्य सुरक्षा, आय सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा (स्वास्थ्य, बाल सुरक्षा, एवं आश्रय) मिले।

8.3.2.3 उपलब्धियां

1. जनचेतना व जागृति अभियान

ये अभियान न सिर्फ आवश्यक मुद्दों को विशिष्टता प्रदान करते हैं बल्कि 'सेवा' आन्दोलन को भी बल देते हैं। महिलाऐं व स्थानीय अगुआ ऐसे मुद्दों की पहचान करते हैं जो बड़ी संख्या में मजदूरों और जनता को प्रभावित करते हैं और इन मुद्दों को जनचेतना व जागृति अभियान के केन्द्र में रखा जाता है। इस अभियान के अन्तर्गत मोहल्ला या गांव के स्तर पर लगातार बैंठकें रखी जाती हैं जिनमें जनता का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व रखा जाता है, जैसे कि ग्राम सभा। ये अभियान मुद्दों के अनुसार, सारे क्षेत्रों एवं धंधों /व्यवसायों को छूते हैं। पिछले वर्षों में कई अभियानों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जबकि कुछ को लम्बे संघर्ष करने पड़े। पर कुल मिला कर, इन अभियानों में बड़ी संख्या में श्रमिकों/मजदूरों ने भाग लिया है, अपने सृजनात्मक सुझाव व विचार दिए हैं, तथा इन्हें मजबूती प्रदान की है। कई बड़े नेताओं का जन्म इन अभियानों के माध्यम से हुआ है, कुछ मुख्य अभियान इस प्रकार से हैं:-

गृह आधारित श्रमिक अभियान, विक्रेता अभियान, वन श्रमिक अभियान, निर्माण श्रमिक अभियान, जल अभियान, खाद्य सुरक्षा अभियान, बाल सुरक्षा अधिकार अभियान, दाइयों को मान्यता देने हेतु अभियान, न्यूनतम मजदूरी अभियान।

2. 'सेवा' आन्दोलन

राज्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी संघ एवं अन्य संघ के माध्यम से ये संचालित हो रहे है:-

सहकारी समूह- सामाजिक, बचत व ऋण समूह।

राज्य संघ

गुजरात राज्य महिला 'सेवा' सहकारी संघ, बनासकान्था ड्वाक्रा महिला 'सेवा' संस्था, कच्छ शिल्प संस्था, खेड़ा जिला महिला बचत व साख संस्था, अहमदाबाद जिला सब्जी उत्पादक व विक्रेता संस्था, सुखी महिला मंडल, सांबर कान्था, खेड़ा मण्डल, सुरेन्द्रनगर जिला महिला व बाल विकास मंडल, श्री महिला 'सेवा' अनुसूया ट्रस्ट, गुजरात महिला गश्ह 'सेवा' ट्रस्ट, 'सेवा' ग्राम महिला हाट, गुजरात शिशु संघ, 'सेवा' बीमा, इत्यादि।

राष्ट्रीय संघ

राष्ट्रीय श्रमिक केन्द्र, नेशनल एलायंस ऑफ स्ट्रीट वेन्डर्स ऑफ इन्डिया ;छ।ैटप्द्ध, और

अन्तर्राष्ट्रीय संघ

होमनेट, स्ट्रीटनेट, दक्षिण अफ्रीका में 'सेवा' आन्दोलन यमन में 'सेवा' व तुर्की में 'सेवा'

8.3.2.4 वैश्वीकरण की चुनौतियां

भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज पर भूमंडलीकरण का विशिष्ट प्रभाव विभिन्न तरीकों से देखने को मिल रहा है। 'सेवा' एक तरह से भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था का ही एक लघु रूप है 'सेवा' के सदस्यों के जीवन में आते हुए बदलाव का अध्ययन करके राष्ट्रव्यापी स्तर पर नीति। निर्माण में महत्वपूर्ण संशोधन किए जा सकते है। 'सेवा' ने इस परिवर्तित समय में गाँधीवादी सिद्धान्तों को कहीं अधिक प्रासंगिक एवं प्रभावशाली पाया है। इस परीक्षा की घड़ी में गाँधी दर्शन प्रेरणा के स्रोत के रूप में खरा उतर रहा है, जो गाँधीवादी सिद्धान्तों की प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं।

इस तरह से 'सेवा' एक ऐसी संस्था का जीता-जागता उदाहरण है, जो समानता, न्याय जैसे गाँधीवादी मूल्यों को आगे बढ़ाते हुए शान्ति को उस के सकारात्मक स्वरूप में प्रसारित कर रहा है जो कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्[a] के लिए अति आवश्यक भी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'सेवा' को भारत में गाँधीवादी शांति आंदोलन के एक प्रभावशाली स्तम्भ के रूप में देखा जाना चाहिए।

8.3.3 खादी आन्दोलन

खादी, जिसे खद्दर के नाम से सामान्यतः जाना जाता है, आज की पीढी के दिल को सम्भवतः उतना नहीं छूता जितना उन पीढियों को जिन्होने ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्रता संग्राम के दौरान लोहा लिया। भारतीय स्वतन्त्रता से पूर्व यह आर्थिक स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता व भारतीय एकता का प्रतीक था। खादी आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अभिन्न व महत्वपूर्ण अंग था। गाँधी जी के हाथों में यह एक सशक्त शस्त्र के रूप में

सिद्ध हुआ, जिसने भरतीय भूमि से औपनिवेशक ताकतों को बाहर खदेड़ा। गाँधीवादी चिंतन से प्रभावित महत्वपूर्ण शांन्ति आंदोलनों में खादी आंदोलन उन शुरूआती आंदोलनों में से है जिन्हे गाँधी ने खुद सींचा था।

8.3.3.1 पृष्ठभूमि

औद्योगिक क्रांति ने कपड़ा मिलों में बिजली करघा पैदा कर दिया था और बिजली करघों ने भारतीय वस्त्र मिलों को सुखा के रख दिया। कानून द्वारा पारित ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति ने भारत में उत्पादित सूत का इंग्लैण्ड को सस्ती दरों पर निर्यात एंव ब्रिटिश मिलों के कपडों का भारतीय बाजार में प्रवेश तथा स्थानीय लोगों द्वारा खरीदा जाना, आवश्यक बना दिया। लाखों की संख्या में भारतीय बुनकर तथा जुलाहे अपना काम खो बैठे। हाथ से बना एवं बुना हुआ कपड़ा जो भारत की शान था, मृतप्रायः हो गया और इसके साथ ही भारतीय वस्त्र से जुड़े बहुमूल्य परम्परागत ज्ञान के भंडार का भी अंत होने लगा।

3.3.3.2 आन्दोलन के कार्यक्रम एवं उद्देश्य

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गाँधीजी ने खादी को एक नये ब्राण्ड, नये दर्शन और नये कार्यक्रम के साथ पुनः आविष्कार किया।

भारतीय खादी का सामान्य अर्थ है हाथ से बुना हुआ सूती कपड़ा। वैसे खादी का कच्चा माल सूती, रेशमी या ऊनी हो सकता है जिसे चरखे पर कातकर बुना जाता है। अपने देश के लाखों नागरिकों को विदेशी सामान के बहिष्कार, स्वदेशी खादी कपड़े के उपयोग एवं चरखा कातने की प्रेरणा देकर वे न सिर्फ भारतीय विरासत एवं हस्तकला में खोऐ हुए गर्व को पुनः स्थापित कर रहे थे बल्कि औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ वातावरण तैयार कर रहे थे। खादी एक सामाजिक आर्थिक वक्तव्य भी था। लाखों ग्रामीण दस्तकार, कारीगरों एवं षिल्पकारों को रोजगार देने के साथ-साथ उनका यह कार्यक्रम संपत्ति के समान वितरण, विकेन्द्रीकरण एवं शोषण को हटाने की तरफ लक्षित था। गाँधी जी के इस आह्वान से असंख्य भारतीय, जिसमें बुद्धिजीवी वर्ग, मध्यम वर्ग, सामान्य व्यक्ति, गरीबी रेखा से नीचे ग्रामीण जनता शामिल हैं, प्रभावित हुए और चरखा चलाने को प्रेरित हुए। खादी की लहर समूचे देश में दौड़ गई। 1921 में प्रथम खादी निर्माण केन्द्र का उद्घाटन हुआ और लाखों चरखों के चलने के साथ भारतीय खादी का पुनर्जन्म हुआ।

8.3.3.3 उपलब्धियां एवं महत्व

खादी आंदोलन ने न सिर्फ स्वदेशी एजेंडे को आगे बढ़ाया बल्कि रोजगार भी पैदा किए। गाँधी जी जनता द्वारा उत्पादन चाहते थे न कि जनता के लिये उत्पादन (फैक्ट्रियों द्वारा)। वे लोगों में स्वयं की उत्पादन की संभावना के प्रति जागृति पैदा करना चाहते थे, जो आर्थिक सरंचना पर नियत्रंण करने में सहायक हो सकता था। उनका मानना था कि स्वदेशी के बिना स्वराज खोखला था। अगर स्वदेशी स्वराज की जान था तो खादी

स्वदेशी की जान। खादी हाथ से बने कपड़े से कहीं अधिक था। ये स्वराज तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का सूचक था।

खादी आंदोलन अपने दृष्टिकोण में, विशिष्ट रूप से, अहिंसा पर आधारित था। लेखक गोल्डस्टन के अनुसार इस आंदोलन से किसी भी कानून का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन नहीं हो रहा था, पर ब्रिटिश राज अपनी ताकत शनैः शनैः खोता जा रहा था।

आज खादी वैश्वीकरण के दौर में तथा नव उपनिवेशवाद की मार के आगे फिर से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। खादी भावुकता के आधार पर जीवित नहीं रह सकेगा। आज के युग में इसे जीवित रहने के लिए प्रतिस्पर्धी बनना होगा। फैशन डिजायनर की पसन्द बनने के पश्चात् ही इसकी भारतीयता इसकी विशिष्टता बन पायेगा।

खादी आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए नयी पीढ़ियों को भी खादी के सही अर्थों से अवगत कराना आवश्यक है। सरकार द्वारा खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना एवं उसका व्यवस्थित संचालन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा है। इ.एफ. शूमाकर के ‘‘छोटा सुन्दर है’’ की तर्ज पर खादी, गाँधी के सपनों के भारत की धुरी बन चुका है व पुनः उस स्थिति में आने में सक्षम है। आज की पीढ़ियो के समक्ष उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण ;स्ण्च्ण्ळण्द्ध की चुनौतियों से लड़ने का भी यह एक सशक्त माध्यम है। इस लड़ाई के माध्यम से वे गाँधी की धरोहर को एक सच्ची श्रद्धांजलि भी दे सकेंगे।

8.3.4 भूदान और ग्रामदान आन्दोलन

आजादी मिलने के बाद भारत में गाँधीजी के सिद्धान्तों को अपनाने में उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। अहिंसा का स्थान भारत की सशस्त्र सेनाओं ने ले लिया। भारी एवं बड़े उद्योगों को ‘आधुनिक भारत के मन्दिर’ की संज्ञा दी गई। स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने गाँधीजी के सपनों का भारत, जो स्वायत्त और आत्मनिर्भर गाँवों के विकेन्द्रित समाज पर आधरित था, का पूर्ण तिरस्कार कर दिया। पश्चिम के अंधानुकरण के फलस्वरूप भारतीय नेतृत्व एक शक्तिशाली, केन्द्रीय शासन एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था की पुरजोर वकालत में लग गया।

परन्तु भारत में सभी की सोच ऐसी हो, ऐसा नहीं है, सभी ने गाँधी को नहीं भुलाया है। गाँधी के ‘‘रचनात्मक कार्यकर्ता’’, विकास विशेशज्ञ और समुदाय आयोजकों ने विभिन्न माध्यमों से, जो गाँधी के स्वयं द्वारा स्थापित हुए थे, उनके दर्शन के भारत को साकार करने का बीड़ा उठाया। गाँधी की ही भांति, उनके शिष्य विनोबा ये मानते थे कि भारत के समाज के पतन एवं इसके निष्क्रिय होने का मुख्य कारण इसके समाज के हिस्सों में गहरी असमानता है। विनोबा के अनुसार भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जब स्वराज का लक्ष्य प्राप्त हो चुका था,

गाँधीवादी शक्तियों का लक्ष्य अब ऐसा समाज होना चाहिए जो 'सर्वोदय' को समर्पित हो। 'सर्वोदय' का अर्थ है- 'सभी का कल्याण' ।

भूदान और ग्रामदान, वास्तव में, सर्वोदय के दर्शन के ही व्यावहारिक प्रयोजन है। इन्हें संकलित रूप में 'व्यवहार में न्यासिता' कहा जा सकता है। भूदान और ग्रामदान से ही जुडे कई अन्य कार्यक्रम भी थे, जिनमें कुछ मुख्य इस प्रकार से हैं:-

सम्पत्ति दान, श्रम दान, शान्ति सेना, सर्वोदय पात्र एवं जीवन दान।

8.3.4.1 दर्शन एवं लक्ष्य

विनोबा ने सर्वप्रथम, इस अभूतपूर्व एवं असाधारण आन्दोलन की शुरूआत की, जो भूदान आन्दोलन कहलाया गया। तत्पश्चात ग्रामदान आंदोलन का भी पटाक्षेप उन्हीं के हाथों हुआ। लगभग 20 वर्ष तक वे भारतवर्ष में भ्रमण करते रहे। उनके प्रभाव से जमींदारों एवं भूस्वामियों ने गरीब व जरूरतमंदों में चालीस लाख एकड़ भूमि दान की। अप्रेल 18, 1951 को शुरू हुए आन्दोलन ने पूरे विश्व के मानचित्र पर भारत को केन्द्र में खड़ा कर दिया। प्रसिद्धि व ख्याति से दूर विनोबा ने न्यायप्रिय एवं समतामूलक समाज के निर्माण के लिए अपना अभियान जारी रखा। 1954 के पश्चात् विनोबा ने भूदान के स्थान पर ग्रामदान का अभियान तेज कर दिया। ये नई अवधारणा नहीं थी। अगर भूदान के माध्यम से जनता को अहिंसक क्रांति के लिए तैयार किया जा रहा था, तो विनोबा के लिए ग्राम दान अपने आप में ही क्रांति थी।

ग्रामदान भूदान से अधिक क्रांतिकारी कार्यक्रम था। एक ग्रामदानी गांव में यह सारी भूमि को सामूहिक मानने का कार्यक्रम था। एक ग्रामदानी गांव में सारी भूमि का सामूहिक स्वामित्व कानूनी तौर पर पूरे गांव का होता था, परन्तु वे आवश्यकतानुसार हर परिवार को आवंटित कर दी जाती थी। चूंकि परिवार भूमि को स्वयं बेच नहीं सकते थे, किराये पर नहीं दे सकते थे या गिरवी नहीं रख सकते थे इसलिये वे 'अपनी' भूमि से कभी 'बेदखल' नहीं हो सकते थे - जैसा कि सामान्यतः भूमि सुधार कार्यक्रम के समय मिली भूमि गरीबों के संकट के समय बेचनी पड़ जाती थी।

गांव के मसलों के लिए गांव के वयस्क सदस्यों की एक ग्राम समिति बनाई जाती थी जो सर्वसम्मति से निर्णयों पर पहुँचती थी यानि हर व्यक्ति की सहमति से ही कोई निर्णय हो पाता था। ऐसा इसलिए किया गया ताकि सभी का सहयोग बना रहे एवं दूसरों की कीमत पर किसी व्यक्ति को लाभ की स्थिति न बने।

विनोबा का मानना था कि समान भू-स्वामित्व एवं सहकारी निर्णय-निर्माण से आवश्यक एकता को प्राप्त किया जा सकता था। एक बार ये प्राप्त हो जाने पर "जनता की शक्ति" द्वारा समाज में वांछित परिवर्तन संभव हो सकते थे।

8.3.4.2 उपलब्धियां एवं सीमाऐं

सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1970 तक लगभग 1,60,000 गांव ग्रामदानी घोशित हो चुके थे। पर शीघ्र ही ये दिखने लगा था कि ग्रामदान (भूदान इसमें बाद में शामिल सा ही माना जा सकता है) को घोषणाऐं जितनी सहजता से होती थी, उन्हें व्यावहारिक तौर पर ग्रामदानी बनाना आसान नहीं था। 1970 की शुरूआत तक बहुत से गाँवों का भू-स्वामित्व ग्राम समिति को नहीं सौंपा जा सका था। जल्द ही ग्रामदान एक आंदोलन के रूप में समाप्त सा हो गया।

फिर भी, ग्रामदान आंदोलन की उपलब्धियों को कम नहीं आंका जा सकता। भूमि सुधार कानून से जो प्राप्त किया जा सका था उससे कहीं अधिक इस आंदोलन ने कर दिखाया था। इसकी विशेषता यह भी थी कि ये सारा अहिसंक एवं शांतिपूर्ण ढंग से संपादित हुआ था। इस आंदोलन ने बहुत सारे ऐसे ग्रामदानी केन्द्र बना दिये थे, जहाँ इसका प्रभाव लम्बे समय तक रहा था व जहाँ गाँधीवादी कार्यकर्ता लम्बे विकास के कार्यक्रमों को चलाने हेतु बस भी गये। ये केन्द्र आज भारतीय गाँधीवादी शांति आंदोलन के ऊर्जा-स्त्रोत है। यहां गाँधीवादी कार्यकर्ता सक्रिय ढंग से गाँधीवादी तरीकों से सामुदायिक कार्यक्रम चला रहे हैं व अन्याय के विरूद्ध अहिंसक अभियान छेड़े हुए हैं। विचारों के फैलाव के साथ वास्तविक परिवर्तन से लोगों के विचारों पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है।

भारत की मूल आर्थिक समस्याओं यथा भू-संग्रहण एवं उनका भूमिहीनों के मध्य समतापूर्ण वितरण गाँधीवादी विचारों से किया जाना इस आंदोलन द्वारा संभव हो सका। इस प्रकार गाँधी के विचारों को पुनर्जीवित करने में यह आंदोलन सफल रहा। इसने कई तरह से भारतीय एवं विदेशियों के मन में, गाँधी के विचारों व उनकी प्रासंगिकता के प्रति संवेदना जगाने का कार्य भी किया।

8.4 सांराश

इस प्रकार हमने यह देखा कि गाँधी दर्शन भारतीय जन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त होते हुए कई पकार के शांति आन्दोलनों को जन्म देता है जिनको वर्णन उपर किया गया है, उनके अलावा कई अन्य प्रकार के शांति आन्दोलन यथा पंचायती राज आंदोलन, नशाबंदी आन्दोलन, आदिवासी आन्दोलन भी उल्लेखनीय है जो भारत में उपस्थित रहे हैं. ये सभी अलग अलग एवं सामूहिक रूप से शांति की स्थिति पैदा करके उसे बनाते एवं पोषित करते हैं, और इसलिए शांति आंदोलन के नाम से जाने जाते हैं।

8.5 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीवादी शांति आंदोलन से आप क्या समझते हैं?

2. भारत के शांति आंदोलनों की चर्चा कीजिए।

3. चिपको आन्दोलन व खादी आंदोलन की उपलब्धियों एवं सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

4. भूदान, ग्रामदान आंदोलन व 'सेवा' आंदोलन की प्रासंगिकता पर निबन्ध लिखिए।

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मणिवन्नन, आर., "एन इन्ट्रोडक्शन टू द पीस मूवमेंट्स इन इण्डिया" गाँधी मार्ग, गाँधी पीस फाउन्डेशन, नई दिल्ली, अप्रैल -जून 1986

2. उम्मन, टी.के. प्रोटेस्ट एण्ड चेंज: स्टडीज इन सोशल मूवमेंट्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990

3. बरोज़, राबॅर्ट जे. , द स्ट्रेटजी ऑफ नॉन वायलेन्ट डिफेन्स: ए गाँधीयन अप्रोच, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू योर्क प्रेस, अल्बानी, 1996

इकाई – 9

सर्वोदय आंदोलन

इकाई रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सर्वोदय की अवधारणा

9.3 सर्वोदय के आयाम

9.3.1 नैतिक आयाम

9.3.2 आर्थिक आयाम

9.3.3 राजनीतिक आयाम

9.3.4 सामाजिक आयाम

9.3.5 धार्मिक आयाम

9.4 मानव समाज के विकास की अवस्था

9.5 सर्वोदय का व्यावहारिक प्रयोग

9.5.1 भूदान

9.5.2 ग्रामदान

9.6 सर्वोदय की प्रासांगिकता

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में महात्मा गाँधी के महत्वपूर्ण सिद्धान्त सर्वोदय के बारे में बतलाने का प्रयास किया है। सर्वोदय एक नवीन समाज निर्माण का नवीन विचार है। जो पूरी तरह से सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह पर आधारित है। जिसमें समाज के सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे की भावना होगी, साथ ही सभी नागरिकों में सहयोग, समन्वय, सदाचार, सामंजस्य, सद्भाव रहेगा, वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग-समन्वय होगा। आर्थिक व्यवस्था व राजनीतिक व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होगा जिसके परिणामस्वरूप समाज में शोषण, हिंसा व तानाशाही की सम्भावनाऐं कम से कम होंगी। गाँधीजी का यह मानना है कि आर्थिक केन्द्रीकरण शोषण को बढ़ावा देता है और राजनीतिक केन्द्रीयकरण हिंसा को बढ़ावा देता है। गाँधीजी समाज से शोषण व हिंसा को समाप्त करके समतामूलक, न्यायपूर्ण सन्तुलित समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस इकाई का उद्देश्य है:-

- महात्मा गाँधी के महत्वपूर्ण सिद्धान्त सर्वोदय की जानकारी देना।
- सर्वोदय की बहुआयामीय अवधारणा को स्पष्ट करना।
- सर्वोदय एक मानव समाज की जीवन्तता एवं निरन्तरता का संकल्प है उसका विवेचना करना।
- मानव समाज की समस्याओं से मुक्ति दिलाने वाली अन्य विचारधाराओं की जानकारी देना। तथा
- महात्मा गाँधी के बाद सर्वोदय के व्यावहारिक प्रयोग की जानकारी देना।

9.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो विचारधाराओं- पूंजीवादी एवं साम्यवादी का उदय हुआ। 1990 तक दोनों विचारधाराओं की अपनी-अपनी विशेषताऐं थी। 1990 के बाद साम्यवादी विचारधारा का अवसान हो गया। परन्तु कोई सी भी विचारधारा मानव को कष्टों से मुक्ति नहीं दिला पायी बल्कि मानव की समस्याऐं अपने नये-नये रूप में समाज को त्रस्त कर रही है। तदन्तर विश्व में वैश्वीकरण की विचारधारा का उदय हुआ और सिद्धान्तः यह माना गया कि यह विचारधारा विश्व मानव समाज को सभी प्रकार की समस्याओं से मुक्ति दिलाकर स्वतन्त्रता, समानता और मानवीय सुरक्षा देने का माध्यम बनेगी। विश्व समाज के सभी राष्ट्रों को समानता देने का प्रयास किया जायेगा। मूलतः यह विचारधारा पूंजीवादी देशों के द्वारा आरम्भ की गयी थी। व्यवहार में, वैश्वीकरण दुधारी तलवार साबित हो रही है। एक तरफ तो समाज में ऐसा छोटा वर्ग बन रहा है जो साधन सम्पन्न व समस्त सुविधाओं का उपभोग कर रहा है। दूसरी तरफ समाज का बड़ा भाग जो आधारभूत सुविधाओं से वंचित है अर्थात् समाज में न्याय की स्थापना नहीं हो सकी थी और न ही समाज में से शोषण का

उन्मूलन हो सका। उससे समाज में समानता की जगह विषमता बढ़ रही है। सम्पूर्ण विश्व एक गाँव में परिवर्तित होने के परिणामस्वरूप मनोरंजन चैनलों के माध्यम से समाज के युवा वर्ग के लिए जो सांस्कृतिक डिनर परोसा जा रहा है वह दुर्भाग्यपूर्ण है अमानवीय है। इससे समाज में नैतिकता का पतन हुआ है, समाज का स्वच्छ व सम्मानीय एवं गरिमापूर्ण ताना-बाना छिन्न-भिन्न होता हुआ दिखायी दे रहा है। अब सम्पूर्ण मानव समाज इन बुराईयों व समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए गाँधीवादी विचारधारा की ओर बड़ी आशा भरी नजरों से देख रही है। नैतिकता व सामाजिकता मानव समाज का आधार है।

मोहनदास करमचन्द गाँधी जिन्हें राष्ट्रपिता कहा जाता है। केवल एक राजनीतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक महान् समाज सुधारक भी थे। रविन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' का नाम दिया। सुभाष चन्द बोस उन्हें 'राष्ट्रपिता' के नाम से पुकारते थे। वे भौतिक रूप से इस दुनिया में नहीं है फिर भी उनकी शिक्षाऐं एवं उनके जीवन के सिद्धान्त आज समस्त मानव समाज विशेष रूप से भारतीयों के राजनीतिक-सामाजिक, आर्थिक जीवन में विशेष महत्व रखते हैं। उनका मानव समाज के लिए बहुत बड़ा योगदान है।

गाँधी दर्शन केवल भारतीय ही नहीं है, इसका स्वरूप सार्वदेशिक, सावभौमिक तथा अधुनातन शाश्वत एवं सनातन है। यह न तो भूगोल की मर्यादाओं में कैद है, न इतिहास और युग की सीमाऐं इसे बाँध सकी हैं, किसी जाति विशेष का बन्दी नहीं, न किसी विशेष समुदाय का पक्षपाती है। यह विरोधाभास का निराकरण कर सामंजस्य बनाने की उनकी वैचारिक साधना ही रही है। गाँधी ने जीवन भर नैतिक अनुशासन का पालन करते हुए सत्य की साधना की। वे जीवन भर मूल्यों से जुड़े रहे। गाँधीजी ने सत्य को ईश्वर माना। गाँधीजी के अनुसार मनुष्य का उच्चतम उद्देश्य ईश्वर से तादात्म्य करना है और उसके सारे कार्य- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक इसी परमोद्देश्य से अनुप्रेरित होने चाहिए। उन्होंने सत्य को ही ईश्वर मानकर तथा अपने अन्तःकरण में उसकी अनुभूति प्राप्त कर इसी अद्भुत सत्य की शक्ति द्वारा समाज में व्याप्त 'अर्द्धसत्यों' के उन्मूलन का प्रयास किया। गाँधी ने सत्य को मात्र एक नैतिक मूल्य ही नहीं अपितु आत्म बल के रूप में 'शक्ति स्वरूप' माना क्योंकि सत्य ही भौतिक जगत का मूल आधार है और उसका नियामक है।

9.2 सर्वोदय की अवधारणा

गाँधीजी की विचारधारा का आधार भारतीय संस्कृति की मूल मान्यताऐं रही। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' भारतीय संस्कृति की मूल मान्यता है। इस विचार को विकसित कर गाँधी ने 'सर्वोदय' का नाम दिया। इसमें 'सर्व भूते हिते रताः' की भारतीय कल्पना, सुकरात की 'सत्य साधना' बाइबिल से प्रभावित रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' की अवधारणा सब एक साथ मिलकर समन्वित हैं। व्यक्ति का श्रेय समष्टि के श्रेय में ही निहित है। व्यक्ति का समाज से अलग अस्तित्व सम्भव नहीं है। व्यक्ति समाज में ही रहता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के नीति वाक्य यथार्थ है। सबके उदय में मेरा भी उदय है। चरित्र और नीति का आरम्भ सामाजिकता से होता है। यहीं पर

सर्वोदय विचार उपयोगितावादी दर्शन की संकीर्ण मर्यादाओं से आगे आता है। शंकर राव देव के अनुसार "अहिंसा और सत्य के आधार पर स्थापित वर्गविहीन व जातिविहीन, समाज जिसमें किसी का कोई शोषण नहीं कर सकता और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को सर्वांगीण विकास करने के अवसर तथा साधन प्राप्त होंगे, ऐसे समाज की स्थापना सर्वोदय समाज का साध्य है।"

रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' के अध्ययन से ही गाँधी ने सर्वोदय की संकल्पना को स्पष्ट किया-

1. सबके भले में अपना भला समाया हुआ है।

2. वकील और हज्जाम दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए।

3. सादा, मेहनतकश किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए 'फीनिक्स आश्रम' की स्थापना की जिसमें श्रम साध्य जीवन व्यतीत करने का विचार निहित था। गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक का "सर्वोदय" के नाम से रुपान्तरण भी किया है।

(1) सबके भले में अपना भला समाया हुआ है इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार मार्क्स कहता है कि व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित दोनों (शोषक और शोषित) में द्वन्द्व की स्थिति है परन्तु गाँधीजी के दर्शन में व्यक्तिगत हित ओर सामाजिक हित में कोई द्वन्द नहीं है, दोनों में सामंजस्य व समन्वय की भावना है। जब व्यक्ति समाज के हित के बारे में सोचेगा तो अपना भला तो स्वाभाविक ही हो जायेगा क्योंकि गाँधीजी अराजकतावादियों की तरह व्यक्ति को पूर्णतया स्वतन्त्र व अकेला नहीं मानते वरन् व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सामाजिक हितों में सामंजस्य रखना सर्वोदय का उद्देश्य है। सर्वोदय का यह विचार समाजवादियों के नजदीक दिखाई देता है।

(2) सर्वोदय का दूसरा सिद्धान्त जो गाँधी ने बताया है कि वकील और हज्जाम के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए, इसका अर्थ यह है कि सर्वोदय श्रम पर आधारित श्रम साध्य समाज है। श्रम चाहे किसी प्रकार का हो सभी का समान महत्व है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज में हर व्यक्ति की उपयोगिता है, हर व्यक्ति के कार्य का समान महत्व है। चाहे वह कार्य शारीरिक कार्य हो या बौद्धिक कार्य हो। बौद्धिक कार्य (ज्ञान) और शारीरिक कार्य (कर्म) के बीच किसी प्रकार का द्वन्द नहीं है एक को ऊँचा और दूसरे का नीचा समझना सर्वोदय के सिद्धान्त के विपरीत है।

इसका दूसरा सिद्धान्त सहयोग का है "सभी कामों को समाज में महत्व तब तक नहीं मिल सकता। जब तक परस्पर सहयोग की भावना न हो। प्रतियोगिता की भावना से आक्रान्त समाज सर्वोदय की संकल्पना को

स्वीकार नहीं कर सकता, प्रतियोगिता पर आधारित समाज में शोषण की व्यवस्था कायम रहती है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से समाज में न तो समभाव आ सकता है और न ही सर्वोदय की संकल्पना सार्थक हो सकती है। गाँधी ने अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति के सिद्धान्त को चूहों और भेडियों के स्वभाव का सिद्धान्त माना है। इसलिए गाँधी ने श्रम की समानता को महत्व दिया है। गाँधी की व्यवस्था में कोई ऊँचा और कोई नीचा नहीं है, सभी बराबर है। आजीविका कमाने का हक सभी को देना चाहते हैं।

(3) सर्वोदय का तीसरा सिद्धान्त-सादा, मेहनत, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। सर्वोदय सिद्धान्त व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को कम करने व समाज के हर व्यक्ति की निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। इसके लिए उन्हें अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण लगाना होगा और श्रम करना ही पड़ेगा। तभी समाज में सहयोग पर आधारित जीवन सरल और श्रम साध्य रह पायेगा। जीवन में सरलता, सदचरित्रता स्वः नियन्त्रित, स्वः नियमित और स्वःशासित होना ही सर्वोदय के मुख्य आधार है।

सर्वोदय का अर्थ 'सर्वांगीण विकास' है इसमें न तो भौतिकता की अवहेलना है, न आध्यात्मिकता की उपेक्षा। यह सन्यासवाद व भोगवाद के बीच की प्रतिपद्वा है। सर्वे भवन्तु सुखिन', सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' के बोध वाक्य में मानो मानसिक (सुखिन), शारीरिक (निरामया) एवं आध्यात्मिकता (श्रेय) सभी का समन्वय है।

9.3 सर्वोदय के आयाम

सर्वोदय की अवधारणा के निम्नलिखित आयाम हैं :

15.3.1 नैतिक आयाम

नैतिकता हमारे जीवन का आधार है। व्यक्ति एवं समाज का अस्तित्व तथा प्रगति नैतिकता पर निर्भर करती है। नैतिकता ही हमारे अन्दर परोपकार, शान्ति, सुख और सामंजस्य को प्रोत्साहित करती है। सभी चाहते हैं कि विश्व शान्ति, विश्व-बन्धुत्व, समानता, प्रजातन्त्र, सत्य, प्रेम और कल्याण सर्वत्र कायम रहे। इसके लिए साध्य-साधन की पवित्रता आवश्यक हे। डॉ.रामजीसिंह का मानना है कि आज साधन की समस्या प्रधान बन गयी है और लगता है कि बींसवी सदी की मानवीय सभ्यता का इतिहास साध्य की सिद्धि के लिए साधनों के उपयोग का इतिहास होगा। दुनिया के सभी कर्मों में सदाचार एक आवश्यक अंग माना गया है। नैतिक नियमों का पालन करके ही हम सुखी होने की आशा कर सकते हैं। भारतीय नीतिशास्त्र में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को प्राथमिक सदगुण माना है। सर्वोदय धारणा का नैतिक आयाम मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास व आत्मिक उत्थान के प्रति सजग बनाता है।

गाँधीजी ने साधनों की पवित्रता को अत्यावश्यक माना है। उन्होंने लिखा है: "पश्चिम में लोगों की आम राय है कि मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य सुख की वृद्धि करना है और सुख का अर्थ केवल शारीरिक सुख और आर्थिक उन्नति माना जाता है। इस सुख की प्राप्ति में नैतिकता की अवहेलना की जाती है। शारीरिक और आर्थिक लाभ की यह एकांगी खोज, जो नैतिकता की अवहेलना करके की जाती है, ईश्वरी कानून के विरूद्ध है जैसा कि पश्चिम के कुछ बुद्धिमान मनुष्यों ने बता दिया है। इनमें से एक जॉन रस्किन था। उसने अपने पुस्तक "अनटू दिस लास्ट" नामक पुस्तक में दावा किया है कि मनुष्य तभी सुखी हो सकते हैं, जब वे नैतिक कानून का पालन करें।

साधन-साध्य संबंध की व्याख्या: गाँधी के साधन-साध्य विचार का बीज तत्व गीता का निष्काम कर्म है जिसमें फल की लालसा की अपेक्षा कर्तव्य के निर्वाह पर बल दिया गया है। गाँधी की योजना में साध्य के अन्तर्गत लक्ष्य और परिणाम दोनों का समावेश है। इन दोनों को गाँधी सत्य की साधना के दो अनिवार्य पक्ष मानते हैं, क्योंकि परम तत्व के रूप में सत्य के अंतर्गत आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की सत्ता का समावेश हो जाता है। अतः गाँधी के विचार में सत्य साधन भी और साध्य भी है। नीतिशास्त्र के कुछ विचारक साध्य पर ही विशेष बल देते हैं। साधन की शुचिता के प्रति उनका कोई आग्रह नहीं है। उनके लिये मुख्य बात कार्य की निष्पत्ति है। इन विचारकों के अनुसार साध्य की पवित्रता साधन को भी पवित्र बना देती है। गाँधी को यह विचार मान्य नहीं है। "दुनिया के सभी धर्मों में सदाचार एक आवश्यक अंग माना गया है, परन्तु धर्मों के अलावा हमारी साधारण समझ भी नैतिक नियमों के पालन की आवश्यकता बताती है। उनका पालन करके ही हम सुखी होने की आशा कर सकते हैं।"

9.3.2 आर्थिक आयाम

सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक जीवन का प्रतीक है वह सभी लोगों का सामान्य रूप से कल्याण चाहता है। गाँधीजी की अहिंसक अर्थव्यवस्था वर्गविहीन, शोषण विहीन व विकेन्द्रित है जो मानवीय सहयोग व सद्भाव द्वारा संचालित होती है, न कि संघर्ष एवं प्रतियोगिता द्वारा। जिसमें अस्तेय एवं अपरिग्रह व्रत का पालन किया जाता है। अतः स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपयोग और विवेक सम्मत वितरण इस मानवीय अर्थव्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त है।

स्वदेशी की धारणा आर्थिक चिन्तन को गाँधी की मौलिक देन है। यद्यपि इसका आधार गीता का स्वधर्म और बाईबिल का "लव दाई नेबर" कहा जा सकता है तथापि इस विचार में मानववादी आर्थिक दर्शन को एक मौलिक आस्था में रूपान्तरित करने का श्रेय गाँधी को ही दिया जा सकता है। गाँधी ने स्वदेशी का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया था इसे मात्र अर्थशास्त्रीय धारणा के अंतर्गत नहीं रखना चाहते थे। व्यापक अर्थ में यह ऐसी धारणा है जिसकी परिधि में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भाषायी, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अर्थ समाहित है। स्वदेशी का अर्थ गाँधी के लिये व्यक्ति द्वारा उसके समीपस्थ वातावरण के प्रति

निज धर्म का निर्वाह है। इस व्रत के अनुसार अपने देश के धर्म इसकी भाषा, राजनीतिक पद्धति और उपयोग भी वस्तुओं को अंगीकार करना आवश्यक माना जाता है। गाँधी के मत में "स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है।"

"स्वदेशी व्रत के अनुसार सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग न कर उन्हीं वस्तुओं का त्याग किया जाता है जिनका उत्पादन अपने देश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं। हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मंगा सकते हैं, विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल इतनी ही है कि उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरूद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत के द्वारा हो।"

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी का स्वेदशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ, प्रतिद्वंद्विता और मौलिकता आदि दोषों से मुक्त है। यह अहिंसा और प्रेम का ही पर्याय है। यह हमारे स्वभाव में व्याप्त है, परन्तु अज्ञानतावश हम स्वार्थ और भौतिकता में पड़कर उसका उल्लंघन करते है। व्रत के द्वारा इसे हम अपने जीवन में उतार सकते है। इसके पालन से एक ओर अपनी संकल्प शक्ति बढ़ती है, दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनी रहती है।

ट्रस्टीशिप - सर्वोदयवादी व्यवस्था में ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गाँधीजी का विचार है कि "मुझे जानना चाहिए कि सारी सम्पत्ति मेरी नहीं है जो मेरी सम्पत्ति है वह केवल व्यक्तिगत कार्यों के लिए है। बाकी बची मेरी सम्पत्ति समाज की है और समाज के कल्याण के काम आनी चाहिए। सम्पत्ति का उपयोग सबके हित के लिए करें। गाँधीजी ने पूंजीपतियों से कहा कि आप सभी साधनों से करोड़ों रुपये कमाईयों परन्तु आपको यह समझना चाहिए कि आपकी सम्पत्ति केवल आपकी नहीं है। वह आपकी वास्तविक आवश्यकताओं के लिए है बाकी समाज के लिए है। गाँधीजी चाहते हैं कि धनी एक न्यासी की तरह व्यवहार करें। ट्रस्टीशिप के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का विचार है कि वे भागवत गीता का उपदेश उस व्यक्ति के लिए देते हैं जो मुक्ति चाहते हैं उन्हें एक न्यासी की तरह काम करना चाहिए। ईशोपनिषद में भी ऐसा ही विचार है। ट्रस्टीशिप का आधार तीन गाँधीवादी अवधारणायें है- अहिंसा, स्वराज्य और समता। ये तीनों ही आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध है।

के.जी. मशरूवाला ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताऐं इस प्रकार बताई है,

1. व्यक्तिगत और अ-व्यक्तिगत सम्पत्ति में कोई भेद नहीं है।
2. सारी सम्पत्ति न्यास की तरह होनी चाहिए।
3. सम्पत्ति में केवल भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अ-भौतिक सम्पत्ति भी शामिल है।

4. सम्पत्ति पर भगवान का स्वामित्व होना चाहिए।

5. सम्पत्ति से समाज के सभी लोगों को लाभ मिलना चाहिए।

सम्पत्ति के उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध में तीन विचार माने जाते हैं।

व्यक्तिवादी पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन एवं सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार व स्वामित्व होता है। जिसमें व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार सम्पत्ति का उपार्जन एवं संग्रह करने का अधिकार होता है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था मांग और पूर्ति के नियम पर आधारित होती है। जिसमें प्रतिस्पर्धा उपनिवेशवाद, अमीर और गरीब के बीच विषमता, शोषण और स्वार्थपरता होती है परन्तु इसकी मुख्य विशेषता है - व्यक्ति और स्वतन्त्रता।

समाजवादी-समष्टिवादी विचार में उत्पादन और वितरण के साधनों पर व्यक्ति के अधिकार व स्वामित्व की जगह समाज व राज्य का अधिकार व स्वामित्व होता है। समाजवादी विचार में व्यक्तिगत स्वामित्व को शोषण का कारण मानता है इसलिए उत्पादन और वितरण के कार्यों को राज्य के हाथों में सौंपता है। आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए हिंसा का भी सहारा लिया जाता है जो समस्या का वास्तविक और उचित समाधान नहीं है। इसकी मुख्य विशेषता है कि राज्य सम्पत्ति का वितरण सम्पूर्ण समाज में करना चाहता है इसमें व्यक्ति की अस्मिता नहीं रहती है, वह एक यन्त्रवत जीवन व्यतीत करता है।

इन दोनों से अलग एक तीसरे प्रकार का एक दार्शनिक दृष्टिकोण भी है। जिसमें आर्थिक जीवन को तिरस्कृत कर परलोक जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा है वास्तव में वह पलायनवादी विचार है जिसका आधार सन्यासवाद है। इस प्रकार के विचार में सरल और त्यागमय जीवन को ही उचित समझा जाता है। इस प्रकार ट्रस्टी में सारी अच्छाईयों के बावजूद सामाजिक और भौतिकवाद का वास्तविक तिरस्कार है।

गाँधीजी ने ऊपर के तीनों विचारों के दोषों का परित्याग कर तीनों विचारों की अच्छाइयों को मिलाने का प्रयास किया है। इस धारणा में गीता के अपरिग्रह और समन्वय भावना है। यह अमीरों और गरीबों के बीच विषमता को मिटाने का अहिंसक समाजवाद है। इसके द्वारा पूंजीपति को सुधार एक अवसर प्रदान किया जाता है।

गाँधीजी का मानना है कि पूंजीपतियों का अपनी सम्पत्ति पर स्वामित्व उनके हाथों में रहे जिससे सम्पत्ति का अधिक से अधिक उत्पादन की प्रेरणा उन्हें मिलेगी और उन्हें संतोष भी रहेगा लेकिन वे इसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए करेगा। गाँधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शोषण का कारण मानते हैं। गाँधीजी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रस्टीशिप का एक क्रानितकारी सिद्धान्त दिया है वे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयास करते हैं। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति को रखते हैं

और उसकी बुराईयों को अहिंसा और सत्य के साधनों के माध्यम से दूर करना चाहते हैं। इसलिए उनका विचार व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में एक सम्पत्ति को न्यास समझनी चाहिए। उनका आदर्श समाज जिसमें समाज के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, धनी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को सभी के कल्याण के लिए न्यासी की तरह व्यवहार करेंगे जिसमें व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण स्थान माना है। गाँधीजी ने मानव के भौतिक पक्ष की जगह आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल दिया है।

गाँधीजी के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं का वास्तविक मालिक ईश्वर है। जिसने इसका सृजन किया है। ‘‘सम्पत्ति सर्वे रघुपति के अही।’’ ‘‘सर्व भूमि गोपाल की’’। उसने विश्व का सृजन किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं किया है। वह सर्व शक्तिमान होते हुए भी संग्रह नहीं करता है, रोज का रोज करता है। गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास है कि समाज में आर्थिक विषमता, प्रतिस्पर्धा, शोषण का अन्त हृदय परिवर्तन, विचार परिवर्तन, स्थिति परिवर्तन से ही किया जा सकता है न कि बल पूर्वक हिंसा के द्वारा।

अतः गाँधीजी यह मानते हैं कि अहिंसक साधनों और नीतिबल पर आधारित हृदय परिवर्तन और विचार परिवर्तन के बिना सच्चा सर्वोदयी समाज नहीं ला सकते हैं। इसमें अकेला कानून कुछ नहीं कर सकता, सबसे अधिक आवश्यकता ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के पक्ष में जनमत तैयार करने की है।

9.3.3 राजनीतिक आयाम

गाँधीजी ने आदर्श रामराज्य की कल्पना की है जो सत्य, अहिंसा, न्याय, स्वतन्त्रता और समानता के मूल्यों पर आधारित है। गाँधीजी ने राज्य को एक साध्य की जगह एक लोक-कल्याण का साधन माना है। राज्य का लक्ष्य सबको अधिकतम सुख प्रदान करना है। गाँधीजी अहिंसक राज्य में राजनीतिक सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करने पर जोर देते हैं। इसलिए गाँधीजी ने ग्राम स्वराज्य, पंचायतीराज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता सही दिशा में सही कदम माना है। अतः स्पष्ट है कि अहिंसक राज्य का संगठन स्वतन्त्र, स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्रही व गरिमापूर्ण गाँवों के आधार पर होगा उनकी राजनीति मानव प्रेम और मानव सेवा पर आधारित है।

गाँधी अहिंसक राज्य में राजनीतिक शक्ति, राजनीतिक सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करने की बात करते हैं। इसके लिए गाँधीजी ने ग्राम-स्वराज्य, पंचायतीराज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि सही दिशा में सही कदम है, जबकि मार्क्स की तानाशाही और व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण-गलत दिशा में गलत कदम है। शायद मार्क्स गाँधी की तरह मनुष्य की अच्छाई में विश्वास नहीं करता है। इसलिए वह व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास नहीं करता है। गाँधी व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं। ‘‘गाँधी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के केन्द्रीकरण को शोषण का मूल कारण मानते हैं इसमें जनता को अपनी भावनाओं का विकास

करने के सुअवसर नहीं मिल पाते हैं। अतः सत्ता का केन्द्रीकरण हिंसा है।" अब सत्ता का केन्द्रीकरण और अहिंसक समाज की संरचना से संगति नहीं बैठ पाती है।

गाँधी के अहिंसक राज्य में पुलिस, सेन्य आदि सभी होगें, परन्तु उनका जो नैतिकता विहीन स्वरूप है वह बदल जायेगा। वह ग्रीन की तरह और सकारात्मक उदारवाद की तरह यह मानते हैं कि राज्य उन बाधाओं को हटाने का काम करेगा जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक है। अतः सेना और पुलिस जनता के स्वामी न होकर जनता के सेवक होगें। "अहिंसक राज्य में शान्ति सुरक्षा के लिए पुलिस, सेना, जेल और न्यायालय का प्रबन्ध रहेगा, परन्तु उसका स्वरूप बदल जायेगा। पुलिस का संगठन अहिंसक स्वयं सेवकों के द्वारा होगा जो अपने को जन सेवक समझेंगे। जनता से उन्हें स्वाभाविक रुप से सहयोग मिलेगा। अतः स्पष्ट है कि गाँधीजी के अहिंसक राज्य का संगठन स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्राही गाँवों के आधार पर होगा।

स्वराज्य

गाँधीजी के अनुसार, "प्रजातन्त्र असल में देखा जाये तो समस्त प्रजा के कल्याण के लिए प्रजा के भिन्न-भिन्न वर्गों का, शारीरिक, आर्थिक, आत्मिक शक्तियों को एकत्र करके उपयोग में लगाने की कला और विज्ञान है।" गाँधीजी के अनुसार, "स्वराज्य से मेरा अभिप्राय लोक सम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोकसम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी संख्या के मत द्वारा होगा। वे लोग ऐसे होने चाहिए जिन्होंने शारीरिक श्रम द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। सच्चा स्वराज्य कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तो उस समय सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता पैदा करने से हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर अधिकार करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है। उन्होंने व्यक्त किया, "मेरे सपने का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हों, वही आपको भी सुलभ होनी चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। गाँधी ने राज्य की सत्ता का विरोध करते हुए स्वशासन का पक्ष-पोषण किया। उन्होंने स्वशासन का अर्थ बताते हुए लिखा कि "स्वशासन का अर्थ है सरकारी नियन्त्रण से स्वतन्त्र होने का सतत् प्रयत्न, फिर सरकार विदेशी हो या चाहे राष्ट्रीय। स्वराज्य सरकार की हास्यास्पद चीज बन जायेगी, अगर जीवन की हर छोटी बात के लिए उसके मुंह की तरफ देखने लगे।" आपको जीवन की वे सामान्य सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहिए जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है।

रामराज्य

गाँधी का रामराज्य, सत्य, अहिंसा और नीति परायणता पर आधारित है। यह पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य है, धर्म-राज्य है इसमें सम्प्रभुता "शुद्ध नैतिक शक्ति", जनता की नैतिक शक्ति पर आधारित है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के अधिक से अधिक अवसर होंगे। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर की आत्मा की अन्तः आवाज का अनुसरण करना है। यह प्रेम की भावना, सहयोग की भावना, परस्पर सद्भाव, सहयोग, मानव की प्रतिष्ठा और आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। रामराज्य में मार्क्स के समान राज्य विहीन, वर्ग विहीन, शोषण विहीन, आर्थिक समानता पर आधारित व्यवस्था है। "रामराज्य से मेरा मतलब हिन्दू राज्य से नहीं है या धर्म राज्य नहीं है। मेरा मतलब राम के राज्य ईश्वर के राज्य से है, मेरे लिए राम और रहीम एक ही है। सत्य और सच्चाई का ईश्वर एक ही है। रामराज्य का जो प्राचीन आदर्श है वह वास्तव में निःसन्देह सच्चे अर्थों में लोकतन्त्र है।"

"रामराज्य सच्चा प्रजातन्त्र है इसमें किसी प्रकार की लिंग, धर्म, जाति, प्रदेश, रंग, सम्पत्ति की अनुचित असमानताऐं नहीं हैं, इसमें राजनीतिक संस्थाऐं और भूमि जनता की है, इसमें न्याय पूर्ण, सस्ता और शीघ्र है, इसमें व्यक्ति सब स्वतन्त्रताओं का जैसे भाषण, समुदाय, धर्म, व्यवसाय, प्रेस की सभी स्वतन्त्रताओं का उपयोग करता है। इसमें स्वः नियन्त्रित नैतिक प्रतिबन्ध है। इस प्रकार राज्य सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें ग्राम और ग्राम समुदाय स्वशासन, स्वावलम्बी और अपने आप में पूर्ण है।" इस रामराज्य में प्रत्येक नागरिक प्रेम और निःस्वार्थ, त्याग और कत्र्तव्य की भावना से प्रेरित है इसमें राज्य की दमन की शक्ति नहीं है, यह नागरिकों की स्वैच्छिक सदचारित्रता व नैतिकता पर आधारित हे। राज्य गाँधी के लिए अपने आप में साध्य नहीं है, राज्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को, प्रत्येक भाग को अच्छा बनाना, विकास करने का एक साधन है।

9.3.4 सामाजिक आयाम

गाँधीजी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसका आधार सत्य और अहिंसा हो। जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित रहे तथा सभी में आपस में प्रेम और सहयोग की भावना हो। इस अहिंसक समाज को उन्होंने सर्वोदय समाज का नाम दिया है। गाँधीजी का मानना है कि व्यक्ति और समाज में सम्बन्ध परस्पर निर्भरता का है, दोनों में आपस में वर्ग समन्वय है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध एक बूँद और सागर की तरह माना है, सागर बूँदों के जल से इकट्ठा होकर बनता है। प्रत्येक बूँद की अपनी एक सत्ता है तो भी वह सागर का हिस्सा है। हम एक छोटी बूँद की तरह और इस सम्पूर्णता का नाम ईश्वर है। समाज व्यक्ति से बनता है। समाज का विकास व्यक्ति के विकास पर निर्भर है।

गाँधीय विचारधारा का केन्द्र बिन्दु सत्य और अहिंसा है। गाँधीजी ने अहिंसा को सामाजिक सदुण माना है। गाँधी के ही शब्दों में, "मेरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं है। वह एकसामाजिक सदुण भी है, जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भांति किया जाना चाहिए। अवश्य ही सामाजिक जीवन का नियमन पारस्परिक व्यवहारों में अहिंसा के प्रकट होने से होता है। मेरा अनुरोध इतना ही है कि उसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाय।" "गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा पर आधारित सामाजिक संगठन का नाम सर्वोदय रखा।"

गाँधीजी का सामाजिक लक्ष्य रामराज्य अर्थात ईश्वरीय राज्य था। उन्होंने उसका अर्थ शुद्ध नैतिक अधिकार पर आधारित जनता का राज्य और पृथ्वी पर धर्म-राज्य बतलाया। रामराज्य के आगमन के लिए व्यक्ति का नैतिक विकास अत्यन्त आवश्यक है। वही इसकी नींव और आधार है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर और पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य का अनुभव करना और अपनी आत्मा की आवाज का अनुसरण करना है। गाँधीजी के अनुसार राज्यविहीन समाज दमन शक्ति के अभाव में, केवल नागरिकों की स्वैच्छिक सच्चरित्रता पर ही टिक सकता है। उस चरित्र निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक प्रेम, कर्तव्य तथा त्याग की भावना और दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान से प्रेरित हों।

गाँधीजी के अनुसार, "प्रेम ही वह कानून है जिससे मानव समुदाय शासित होता है। हिंसा अर्थात् घृणा का साम्राज्य रहा होता तो हम कभी के लुप्त हो गये होते और फिर भी दुःख की बात यह है कि सभ्य कहे जाने वाले पुरुष और राष्ट्र अपने आचरण ऐसे रखते हैं, मानों समाज का आधार हिंसा हो। प्रेम ही जीवन का श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है और यह सिद्ध करने में प्रयोग करने में मुझे अकथनीय आनन्द आता है।"

गाँधीजी का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनान है जिसमें न कोई गरीब होगा, न भिखारी, न कोई ऊँचा होगा न नीचा। न कोई करोड़पति मालिक होगा न आधा भूखा नौकर। न शराब होगी न कोई दूसरी नशीली चीज। सब अपने आप खुशी से और गर्व से अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत करेंगे। वहाँ स्त्रियों की भी वही इज्जत होगी जो पुरुषों की, स्त्रियों और पुरुषों के शील और पवित्रता की रक्षा की जायेगी। अपनी पत्नी के सिवा हर एक स्त्री को उसके उम्र के अनुसार हर धर्म के पुरुष माँ, बहन और बेटी समझेंगे। वहाँ अस्पृश्यता नहीं होगी और सब धर्मों के प्रति समान आदर रखा जायेगा।

स्त्री-पुरुष के बीच समानता के विचार का पोषण करते हुए गाँधी जी ने लिखाः स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर वैसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरुष पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं के बीच किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। विवाह को एक पवित्र संस्कार समझना चाहिए और संयमित विवाहित जीवन बिताना चाहिए। विवाहित या गृहस्थ जीवन तो हिन्दू समाज के चार आश्रमों में एक आश्रम है और यदि सच पूछा जाय तो शेष

तीन आश्रम भी इसी पर आधारित हैं। गाँधी ने लिखा है, "शरीर के द्वारा दो आत्माओं का मिलन ही विवाह का आदर्श है। इसमें जो मानव प्रेम स्फुरित होता है उसी के माध्यम से हम विश्व प्रेम या ईश्वर प्रेम तक पहुँच सकते हैं।"गाँधीजी ने अपने स्वयं के जीवन में इस आदर्श का पालन किया। उन्हें स्त्री एवं पुरुषों की साधुता में विश्वास था। शारीरिक सम्बन्ध के बदले आध्यात्मिक सम्बन्ध बनाने के लिए कहते थे ताकि मिलकर सत्यान्वेषण एवं विश्व प्रेम के मार्ग में आगे बढ़ सकें।

सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति का, समाज का नैतिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण करना है। जब तक सभी मनुष्यों का उदय न हो जाय, सभी को शोषण, विषमता और अन्य समस्याओं से छुटकारा नहीं मिल जाता तब तक मनुष्य का आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक दायित्व है कि वह मनुष्य के दुख, कष्टों व सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें तथा एक दूसरे के प्रति सेवाभाव उत्थान और विकास के लिए कार्य करें। गाँधी एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका आधार अहिंसा हो, जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो, तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो।

गाँधी अपने जीवन में इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। राजनैतिक स्वतन्त्रता तो मिली परन्तु सर्वोदय समाज की स्थापना करना बाकी था। उन्होंने इस प्रकार की समाज की स्थापना करने के लिए व्यावहारिक सोच दी। जिसको विनोबा ने अपने भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य के माध्यम से व्यावहारिक रुप देने का प्रयास किया। सत्याग्रह के द्वारा समाज की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है। सत्याग्रह की मुख्य बात है कि सामने वाले का विचार बदलना है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना तथा समूह स्तर पर सामाजिक परिवर्तन करना है। समूह स्तर पर सभी व्यक्ति गाँधी द्वारा बताये गये 11 व्रतों का पालन करें जिसमें ट्रस्टीशिप, शारीरिक श्रम, स्वराज्य, स्वदेशी का पालन करें।

गाँधी पूर्णतः मानवतावादी है वह लूथर, कांट, थोरो और बहुलवादियों की भांति विशेषकर लास्की की भांति, व्यक्ति की आत्मा के महत्व को मानते हैं। उनके शब्दों में "मानव ही सर्वोच्च विचार है।" "मेरे लिए मानव ही सबसे प्रथम है, मानव के लिए मेरा प्रेम असीम है" विमल बिहारी मजूमदार के शब्दों में "गाँधीजी के राजनीतिक दर्शन की सौर प्रणाली में मानव सूर्य है।" सभी क्षेत्रों में चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय उन सभी में मानव ही केन्द्र बिन्दु है। गाँधी की समाज में विशेषरुप से कमजोर वर्ग की निष्ठा पूर्ण सेवा द्वारा व्यक्ति की सच्ची आत्मानुभूति है। जब अन्तिम व्यक्ति को समान भाग मिलेगा, तभी अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था सम्भव है और ऐसे ही समाज में सत्य और आत्मानुभूति की प्राप्ति हो सकती है। मानव मात्र की सेवा ही गाँधी के लिए आत्मानुभूति और आत्मज्ञान तथा मोक्ष का साधन थी। गाँधी मानव सेवा द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति व आध्यात्मिक शुद्धता की प्राप्ति चाहते हैं। वे मानव क्रिया के अतिरिक्त किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करते हैं। सत्याग्रह मानव की आवश्यकताओं के लिए अहिंसक तकनीक बताई।

9.3.5 धार्मिक आयाम

गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हुए 1928 में कहा था कि सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का, अतः मेरे लिए धर्म परिवर्तन का विचार ही असम्भव है। उनका मत था कि अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए कि भगवान उन्हें वही प्रकाश दे जो मुझे दिया, अपितु यह होनी चाहिए कि उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उसके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है।

उन्होंने कहाः मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे कि एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे ये पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है।सर्वधर्म समभाव गाँधी के सर्वोदय की धारणा में केन्द्रीय महत्व रखता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म की गाँधीवादी धारणा में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है। गाँधी के लिए धर्म की साधना का मर्म एक आध्यात्मिक सत्ता में आस्था होने तथा इस आस्था के मानवीय स्वरूप के घटित होने में समाविष्ट है।

गाँधीजी के अनुसार, "इस आदर्श समाज में सामाजिक जीवन इतना पूर्ण और स्वशासित हो जायेगा कि राज्य की आवश्यकता ही नहीं रहेगी और एक राज्य विहीन लोकतन्त्र की स्थापना हो जायेगी। विचार परिवर्तन के द्वारा हृदय परिवर्तन, हृदय परिवर्तन के द्वारा जीवन परिवर्तन और जीवन परिवर्तन के द्वारा समाज परिवर्तन की क्रान्ति की प्रक्रिया होगी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में परिस्थिति परिवर्तन और अन्याय के प्रतिकार के लिए कोई स्थान नहीं है। वास्तव में अन्याय के प्रतिकार के बिना सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है। इसीलिए अहिंसात्मक आन्दोलन जिसे सत्याग्रह के नाम से जानते हैं अन्याय के प्रतिकार के लिए आवश्यक है। सत्याग्रह बुद्धि और हृदय दोनों को प्रभावित करता है। इसमें कष्ट सहन हृदय तक पहुँचकर आन्तरिक विवेक को जगा देता है।

गाँधीजी ने नव समाज की रचना करने के लिए एक व्यावहारिक सोच दी है। इस समाज को गाँधीजी ने सर्वोदय समाज का नाम दिया है। सर्वोदय एक सिद्धान्त भी है और एक प्रक्रिया भी है। व्यक्ति का कल्याण समिष्ठ के कल्याण में ही निहित है। (सर्वोदय में आत्माओं की मूलभूत एकता है, यह अध्यात्म और नीति का मिलन है। चरित्र और नीति का आरम्भ सामाजिकता से होता है। यही पर सर्वोदय विचार उपयोगितावादी दर्शन की संकीर्ण मर्यादाओं से आगे आता है।) सर्वोदय विचार के लिए व्यक्ति को समाज से पृथक सोचना असंगति

है, दोनों की अपनी अलग-अलग सत्ता है, परन्तु दोनों में कोई विरोध नहीं है। सर्वोदय राजनीति में आमूल परिवर्तन चाहता है, केन्द्रित स्वराज्य के बदले विकेन्द्रित-स्वराज्य, राजनीति के बदले लोकनीति, हिंसा और दण्डशक्ति के बदले जन-शक्ति और शासन युक्त समाज के बदले शासन मुक्त समाज बनाने का विचार है। यही रामराज्य है। ग्राम-राज्य, स्वराज्य और अहिंसक स्वराज्य होगा। इसलिए सर्वोदय विचारों में त्याग द्वारा हृदय परिवर्तन, तर्क द्वारा विचार परिवर्तन, शिक्षा द्वारा संस्कार परिवर्तन एवं पुरुषार्थ के द्वारा स्थिति परिवर्तन के माध्यम से क्रान्ति करने पर जोर दिया है। ऐसी ही क्रान्ति पूर्ण और स्थायी क्रान्ति होगी। इसलिए सत्याग्रह संघर्ष की अस्वीकृति नहीं बल्कि संघर्ष का वैज्ञानिक और अधिक व्यावहारिक एवं मानवीय तकनीक है। समाज की मौजूदा स्थिति में परिवर्तन करना ही क्रान्ति का लक्ष्य होता है। जो लोक आजाद नहीं है वे आजादी चाहते हैं, जिन्हें बोलने नहीं दिया जाता, वे बोलना चाहते हैं, जिन्हें अपने विचार प्रकट करने से रोका जाता है वे अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं, जिन्हें सताया जाता है वे उत्पीडन से मुक्त होना चाहते हैं, जिनके साथ समानता का व्यवहार नहीं होता वे समानता चाहते हैं। अतः स्पष्ट है कि क्रान्ति का उद्देश्य, स्वतन्त्रता, समानता और भाई चारे आदि की आकांक्षा ही क्रान्ति का उद्देश्य है। क्रान्ति का मूल तत्व परिवर्तन ही है। क्रान्ति समाज परिवर्तन की एक प्रमुख प्रक्रिया है। जिससे समाज के प्रचलित मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों, विश्वासों, प्रथाओं, पद्धतियों में आमूलचूल परिवर्तन होता है।

यह सर्वोदय का आदर्श हे। समाज परिवर्तन का सर्वोदय का सिद्धान्त, उपयोगितावाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद और सुखवाद से भिन्न है।

9.4 मानव समाज के विकास की अवस्था

सर्वोदय "जीओ और जीने दो" का भी सिद्धान्त नहीं है। समाज में विकास का मुख्य सिद्धान्त संघर्ष है। अगर हम संघर्ष को समाज के विकास का आधार मान लेते हैं तो कोई स्वस्थ व सभ्य जीवन दर्शन एवं समाज की रचना सम्भव नहीं है। संघर्ष और प्रतिस्पद्र्धा की भावना से समाज में अस्वस्थ और असामाजिक भावना का (जो कि मतस्य न्याय और जंगल के कानून पर आधारित है, जो कि डार्विन के सिद्धान्त की तरह है, जो सबसे अधिक सक्षम है, वही जीवन संग्राम में बचेगा) समाज बनेगा। इसलिए हक्सले ने "दूसरों को खाकर जीओ" से आगे "जिओ और जीने दो" का सिद्धान्त दिया।

जे. सी. कुमारप्पा का मानना है "मानवीय सभ्यता के विकास को प्रतीक रुप से यदि हम दिखाना चाहे तो निम्न अवस्था हो सकती है।

1. शोषणावस्था - व्याघ्र - दूसरों को खाकर जीओ

2. आखेटावस्था - बन्दर - बिना उत्पादन के उपयोग

3. उद्योगावस्था - पक्षी - उत्पादन भी उपभोग भी।

4. सेवावस्था - मधुमक्खी - उत्पादन किन्तु उपभोग नहीं।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राणी सभ्यता "जीओ और जीने दो" के सिद्धान्त से भी आगे बढ़ चुके है, उसी विकास में हमारी संस्कृति का मूल्य भी है।

सर्वोदय का सिद्धान्त हक्सले के सिद्धान्त से भी एक कदम आगे है- "जिलाने के लिए जिओ" का सिद्धान्त है। यह सामाजिकता है, यही एक स्वस्थ और सभ्य समाज का नियम है। विनोबा जी कहते हैं, "कि बच्चों का यह सूत्र है- "जीओ और जीने दो" परन्तु माँ का यह सूत्र है, "बच्चों के लिए फाँका करने राजी हो जाओ।" सर्वोदय सिद्धान्त माँ के सिद्धान्त में विश्वास करता है।" रामजी सिंह का मानना है कि, "प्रेम और सहयोग केवल नैतिक दृष्टि से ही आवश्यक नहीं, ये तो प्राणीशास्त्र के बुनियादी सिद्धान्त हैं। विकास के क्रम में वे ही प्राणी टिके हैं, जिनमें परस्पर सहयोग है। ऐगले मांटेग्यू ने बताया है कि "संघर्ष या होड नहीं, सहयोग ही प्रकृति का सिद्धान्त हो" बिलर ने बताया कि प्रकृति में सबसे प्रबल प्रवृत्ति पायी जाती है। वह है - सहजीवन सहयोग की। अतः सहअस्तित्व प्रकृति का नियम है।

सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति का, समाज का नैतिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण करना है। जब तक सभी मनुष्यों का उदय न हो जाय, सभी को शोषण, विषमता और अन्य समस्याओं से छुटकारा नहीं मिल जाता तब तक मनुष्य का आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक दायित्व है कि वह मनुष्य के दुख, कष्टों व सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें तथा एक दूसरे के प्रति सेवाभाव उत्थान और विकास के लिए कार्य करें। गाँधी एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका आधार अहिंसा हो, जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो, तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो।

गाँधी का सर्वोदय का सिद्धान्त जातिविहीन, वर्गविहीन तथा भेदभाव रहित अवस्था आर्थिक-समानता तथा विकास पर आधारित है। सर्वोदय की भावना भारतीय संस्कृति के मूल में है।

"सर्वे-भवन्ति सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद दुखे भाग्यवेत।।

"सर्व भूते हिते रता,

वसुधैव कुटुम्बकम"

आदि विचारों में सर्वोदय की भावना के दर्शन होते हैं। यही नहीं उपनिषद, वेदान्त और गीता में साम्य या एकत्व की भावना में सर्वोदय की झलक मिलती है। सर्वोदय में सबों का उदय और सब प्रकार से उदय। सब प्रकार के उदय का अर्थ है कि सर्वांगीण विकास। इसमें समूची मानवता का कल्याण निहित है। आज वर्ग संघर्ष के द्वारा क्रान्ति करने वाले विचारक भी अन्त में एक ऐसे ही वर्ग विहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य रखते हैं जहाँ समाज में सहयोग और समन्वय की भावना बनी रहे।

सर्वोदय के सम्बन्ध में विनोबा कहते हैं कि "सर्वोदय यानी सबका उदय। किसी का उदय और किसी का अन्तः ऐसी बात नहीं हैं, सर्वोदय शब्द बहुत व्यापक है और गाँधी ने ही इसे गढ़ा है। परमेश्वर के यहाँ हाथी को मन और चीटीं को भी कन मिलता ही है। एक छोटा सा बच्चा भी सर्वोदय समाज का सेवक बन सकता है अगर वह दूसरे की सेवा करता और कुछ न कुछ पैदा करता हो। हमें चन्द लोगों का उदय नहीं करना है, अधिक लोगों का उदय भी नहीं करना है। अधिक से अधिक लोगों के उदय से भी हमें सन्तोष नहीं है। सबके उदय से ही हमें समाधान होगा। छोटे, बड़े, दुर्बल, सबल, जड़-बुद्धिमान, सबका उदय होगा तभी हम चैन लेंगे। ऐसा विशाल भाव यह शब्द हमें दे रहा है। सर्वोदय में सबका उदय है और उसमें अन्तिम व्यक्ति का भी उदय है। इस प्रकार इसमें अन्त्योदय की भावना भी है।

सर्वोदय के लिए गाँधीजी ने 11 व्रत बताये हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह। शरीर, श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भय वर्जनम। सर्व धर्मो समानत्व, स्वदेशी। स्पर्श भावना की एकादय सेवा ही नमत्वे व्रतनिश्ययो। इन व्रतों और नैतिक मूल्यों के पालन और विकास पर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का अस्तित्व निर्भर होता है। गाँधी के अनुसार व्रत "किसी करने योग्य कार्य को किसी भी मूल्य पर करना है।"

9.5 सर्वोदय का व्यावहारिक प्रयोग

गाँधी अपने जीवन में इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। राजनैतिक स्वतन्त्रता तो मिली परन्तु सर्वोदय समाज की स्थापना करना बाकी था। उन्होंने इस प्रकार की समाज की स्थापना करने के लिए व्यावहारिक सोच दी। जिसको विनोबा ने अपने भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य के माध्यम से व्यावहारिक रुप देने का प्रयास किया। सत्याग्रह के द्वारा समाज की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है। सत्याग्रह की मुख्य बात है कि सामने वाले का विचार बदलना है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना तथा समूह स्तर पर सामाजिक परिवर्तन करना है। समूह स्तर पर सभी व्यक्ति गाँधी द्वारा बताये गये एकादश व्रतों का पालन करें जिसमें ट्रस्टीशिप, शारीरिक श्रम, स्वराज्य, स्वदेशी का पालन करें। सामाजिक परिवर्तन सर्वोदय की सामान्य नीति है। जिसके सभी का अधिक से अधिक सुख व कल्याण निहित है। जिसमें हर व्यक्ति के महत्व की बात करते हैं। इन एकादश व्रतों का पालन करने से उनका नैतिक स्तर इतना ऊँचा हो जाता है। जिसका प्रभाव दूसरे

व्यक्तियों और समाज पर पड़ता है। उन्होंने इसके लिए सर्वोदय में आन्दोलनात्मक पक्ष के साथ-साथ रचनात्मक पक्ष पर भी जोर दिया है।

9.5.1 भूदान

विनोबा ने सर्वोदयी सिद्धान्तों की छत्र छाया में भूदान आन्दोलन और उसको व्यापक बनाकर ग्रामदान, सम्पत्तिदान और जीवनदान आन्दोलन प्रारम्भ किये। विनोबा कहते हैं कि भूदान का मेरा आन्दोलन सबसे गिरे और कमजोर खेतिहर मजदूरों का आन्दोलन है। वे बेजमीन तो है ही, साथ ही वे बेजुबान भी हैं। ऐसे लोगों को उठाना ही सर्वोदय है, यही अहिंसा की प्रक्रिया है।

विनोबा कहते हैं कि मनुष्य के पास पाँच प्रकार की सम्पत्तियाँ होती हैं- प्रेम, बुद्धि, शरीर-श्रम, धन और भूमि। दुनिया में ऐसा कोई आदमी नहीं जिसके पास इन पाँच में से कोई न कोई सम्पत्ति न हो। कोई अपंग हो उसके पास धन, बुद्धि, भूमि नहीं है फिर भी प्रेम तो उसके पास होता ही है। अतः जिसके पास जो सम्पत्ति है उसका कुछ अंश समाज को अर्पित करना चाहिए।

इस आन्दोलन का पहला चरण भूदान सामाजिक क्रान्ति, दूसरा चरण ग्रामदान और तीसरा चरण ग्राम स्वराज्य है। जयप्रकाश नारायण के शब्दों में "यद्यपि भूदान आन्दोलन की सारी भूलों और असफलताओं के बावजूद भी उसकी सफलता निःसन्देह उल्लेखनीय है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र में उसने अहिंसा के सक्षम तरीके को प्रकट किया है। यह केवल भूमिहीनों को भूमि बांटने का आन्दोलन नहीं है, मानव को ऊपर उठाने का प्रयोग है। यह आन्दोलन नहीं है यह समझाने का प्रयोग है आपके पास कुछ है तो उसमें उस भाई का भी हिस्सा बनाऐं जिसके पास कुछ भी नहीं है। "भूदान यज्ञ के तथा सभी व्यक्तियों में जमीन का समान वितरण करना है।"

ईश्वर ने सभी जीवों को समान बनाया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु का सभी लोग बिना किसी भेदभाव के उपयोग करते हैं। विनोबा का मानना है कि सूर्य की जितनी रश्मि एक राजा पाता है उतनी ही एक मेहतर भी। प्रकृति की सभी चीजों का मालिक ईश्वर है, हम इसकी सन्तान है। अतः कोई व्यक्ति भूमि का मालिक नहीं हो सकता। हमें स्वामी बनने का नहीं बल्कि सेवक बनने का अधिकार होना चाहिए।

अहिंसा, प्रेम और शान्ति के कार्यक्रम से ही शोषणविहीन, विषमताविहीन, समाज की स्थापना की जा सकती है। "हम चाहते हैं कि शोषणविहीन समाज हो। हर व्यक्ति को आजादी और अपने विकास का मौका हो। जहाँ हिंसा द्वारा क्रान्ति हुई है वहाँ समाजवाद नहीं आया कोई दूसरी चीज बन जाती है। वर्तमान व्यवस्था को मिटाने से नवीन समाज नहीं बन जाता है। समाजवाद का चिन्तन जिस दशा में हमें ले जा रहा है उस दिशा में बहुत दूर तक सर्वोदय जा पहुँचा है इसलिए अगर हम सच्चे समाजवादी है तो हम सच्चे सर्वोदयी भी हैं।" जिसके पास जो कुछ है। वह सब समाज को अर्पित कर दे चाहे वह सम्पत्ति हो, बुद्धि हो, और चाहे शक्ति हो क्योंकि समाज

के द्वारा अनेक प्रकार की सुख सुविधाऐं प्रदान की जाती है। जब समाज के कार्यों में सहयोग होगा, तभी सहयोग पर आधारित शोषणविहीन अहिंसक समाज की स्थापना की जा सकती है।

सर्वोदय को एक धर्म मानना चाहिए जिसको प्रत्येक व्यक्ति द्वारा व्यवहार में लाना चाहिए। यह विकास की नीति है, अन्तिम व्यक्ति के लिए कार्यान्वित भी किया जाना चाहिए। यह एक अन्तोदय (अन्तिम व्यक्ति के उदय) की धारण है।

9.5.2 ग्रामदान

ग्रामदान, भूदान आन्दोलन का अन्तिम चरण है "जिसमें केवल भूमिहीनों के लिए भूमिदान की ही कल्पना नहीं है बल्कि इसमें जमीन के सम्पूर्ण मालकियत को समाज या गाँव पर सौंप कर सेवा वृत्ति अपनाने का विचार है।" सम्पूर्ण सम्पत्ति को गाँव को सौंप देते हैं जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व की जगह गाँव का स्वामित्व होता है और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार गाँव के सभी लोगों में वापस वितरण की जाती है।

ग्रामदान का पहली बार प्रयोग सितम्बर 1952 में उत्तर प्रदेश राज्य के मंगरौठ गाँव में किया गया। इस ग्राम को पहला ग्रामदानी गाँव घोषित किया। जयप्रकाश नारायण ने कहा है कि ग्रामदान बहुत सुन्दर क्रान्ति है, शक्ति के बल से किसी भी प्रकार का स्वामित्व समाप्त नहीं होता लेकिन अब स्वतन्त्र रूप से समाज को समर्पित करते हैं। जी. रामचन्द्रन कहते हैं कि ग्रामदान गाँव में मस्तिष्कों की एकता का योग है और गाँव के सामाजिक और आर्थिक ढाँचें के परिवर्तन को सहन करने को तैयार, एक नये रास्ते पर चलने को सभी तैयार जिसमें समाज के हित में व्यक्तिगत हितों का त्याग किया है। ग्रामदान आज की स्वतन्त्र भारत की नई परिस्थितियों में गाँव की महत्वता को स्वीकार करते हुए मानसिक और आर्थिक क्रान्ति है जो गाँव के महत्व का प्रतिनिधित्व करती है।

ग्रामदान भारत के गाँवों में सदियों से चली आ रही व्यक्तिगत स्वामित्व पर कठोर प्रहार है। ग्रामदान भारतीय संस्कृति के साथ एक समन्वय की भावना है। ग्रामदान में गाँव की भूमि से व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जाता है, गाँव की सारी भूमि ग्रामदानी समाज की होती है जिसमें सभी की समान सहभागिता होती है यह अहिंसक क्रान्ति का रूप है। डी.आर. गाडगिल ग्रामदान आन्दोलन बहुत से महत्व को साथ लेते हुए एक अभूतपूर्व आन्दोलन है। लुई फिशर कहते हैं कि यह पूर्व का एक बहुत रचनात्मक विचार है।

श्रीमन् नारायण कहते हैं ग्रामदान जीवन मूल्यों, पद्धति, हिंसा, घृणा, वर्ग संघर्ष की जगह, अहिंसा, लोकतन्त्र और हृदय परिवर्तन की ओर एक क्रान्तिकारी कदम है। इस प्रकार भूदान और ग्रामदान दोनों ही आन्दोलन जनता के गरीब से गरीब और सबसे पिछड़े भाग को भी अपने अन्दर सिमटने में सक्षम है।

ग्रामदान की गतिशीलता गाँवों का पुननिर्माण करने की है। ग्रामदान का विचार एक पूर्ण और समग्र विचार है। यह गाँधीजी के रामराज्य व ग्राम स्वराज्य की तरह है। यह एक ओर तो गाँधी के ट्रस्टीशिप की योजना है तो

दूसरी और सम्पूर्ण समाज व ग्राम समाज के परिवारीकरण की योजना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सुख-दुख सहज भाव से एक समान समझकर हाथ बँटाता है। ग्रामदान का विचार एक सार्वभौमिक विचार है। एक सार्वभौमिक धर्म है जो कि सभी पर लागू होता है जिसके पास जो कुछ है वह सब गाँव को समर्पित कर दे।

भूदान आन्दोलन में तो एक देने वाला होता है और दूसरा लेने वाला परन्तु ग्रामदान के विचार में सभी व्यक्ति दाता और ग्रहणकर्ता होते हैं। जयप्रकाश नारायण के अनुसार "ग्राम में सामूहिकता और परस्पर सहयोग की भावना जगा कर ग्राम स्वराज्य की स्थापना की नींव डालनी है- भूमि पर पूरा स्वामित्व ग्राम का ही होना चाहिए। मार्क्स की तरह यह मानते हैं कि सम्पत्ति सभी बुराईयों की जड़ है। संसार में जितनी भी लड़ाई हुई है प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में उनके पीछे एक ही कारण रहा है- वह व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करना।" यही दुनिया के तमाम झगड़ों की जड़ है जैसे ही भूमि और सम्पत्ति की मालिकी खत्म हो जायेगी तभी लोगों की और समाज के नैतिक मान की उन्नति होगी इसमें सन्देह नहीं है।

ग्रामदान वर्तमान समाज की जातिवाद, सम्प्रदाय और क्षेत्रवाद जैसी संकीर्ण धारणाओं की जगह समन्वय और सहयोग पर आधारित गाँव के परिवारीकरण की भावना पर आधारित एक व्यापक धारणा है। यह समाज की त्रिविध शक्ति है स्त्री शक्ति, श्रम शक्ति और युवक शक्ति। वर्तमान समाज को गुलामी से मुक्त करने का विचार है क्योंकि गाँव सभा में सभी को समान रूप से भाग लेने का अधिकार रहता है। आचार्य राममूर्ति कहते हैं कि स्त्री की शक्ति से समाज चलता है, मजदूर की शक्ति से पलता है और युवक की शक्ति से समाज बदलता है। इन तीनों की मुक्ति के बिना समाज में परिवर्तन की बात सम्भव नहीं है। इसमें मुख्य बात समाज के सम्पूर्ण ढाँचे व संरचना को बदलने के लिए मूल्य परिवर्तन और विचार परिवर्तन व स्थिति परिवर्तन करने की है। यह एक नैतिक धारणा है।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार आज के समय में गाँधीवादी तरीका ही समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन का सबसे अच्छा तरीका है। उन्होंने भूदान और ग्रामदान को नवीन जीवन पद्धति सम्बन्धी एक नवीन सामाजिक दर्शन की संज्ञा दी है।

गाँधी ने सर्वोदय का एक सिद्धान्त दिया था। यह माना गया कि जिससे समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सभी प्रकार की समस्याओं तथा बुराईयों का अन्त हो जाएगा, एक शोषण रहित समाज की स्थापना हो सकेगी जो सत्य, अहिंसा और नैतिकता के सिद्धान्त पर आधारित होगी। गाँधीजी के आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे द्वारा सर्वोदय के व्यावहारिक एवं रचनात्मक प्रयोग के रूप में भूदान तथा ग्रामदान आन्दोलन चलाए। जयप्रकाश नारायण अपने को पूरी तरह सर्वोदय आन्दोलन के लिए समर्पित कर जीवनदानी बन गये।

9.6 सर्वोदय की प्रासांगिकता

महात्मा गाँधी ने मानव समाज की समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने का प्रयास किया है। गाँधी की समग्र मानव की अवधारणा सम्पूर्ण विश्व संस्कृति के लिए एक अद्भुत व अपूर्व योगदान है। समग्र मानव की यह अवधारणा हर्बर्ट मारक्यूज की तरह मनुष्य को एक-आयामी न मानकर चेतना की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त बहु-आयामी प्राणी मानती है। गाँधी ने मानव जीवन के लिए समग्र दृष्टिकोण एवं विश्व-दृष्टि की प्रस्तुति की है।

विश्व शांति की समस्या आज अत्यन्त गंभीर हो गयी है। वर्तमान परिवेश में इसका समाधान काफी कठिन दिखता है। विनोबा ने स्पष्ट किया है कि, "विश्व योजनाओं और विधानों के बल पर इस समस्या का हल नहीं हो सकता है, क्योंकि विश्व शांति की समस्या तत्वतः नैतिक है। जब तक हम अपने प्रश्नों को नैतिक एवं मानवीय दृष्टिकोण से देखने के आदी नहीं हो जाते अर्थात् जब तक राष्ट्रों के बीच परस्पर सद्भावना और संवेदना का प्रादुर्भाव नहीं होता तब तक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का अन्त नहीं होगा।

अहिंसा, प्रेम और शान्ति के कार्यक्रम से ही शोषणविहीन, विषमता रहित समाज की स्थापना हो सकती है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार आज के समय में गाँधीवादी तरीका ही समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन का सबसे अच्छा तरीका है उन्होंने भूदान और ग्रामदान को नवीन जीवन पद्धति सम्बन्धी एक नवीन सामाजिक दर्शन की संज्ञा दी है। भूदान और ग्रामदान का उद्देश्य आन्दोलन केवल समाज में भूमि का समान वितरण करना ही नहीं बल्कि समाज में समन्वय की भावना पर आधारित हृदय, विचार और कार्यों तथा भावनाओं को जोड़ने का विचार है।

सर्वोदय की उपादेयता का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वर्तमान विश्व की स्थान है। दोनों में कहीं कोई विरोध व संघर्ष नहीं है, दोनों में आध्यात्मिक भाईचारा है।

विश्व मानव समाज को समस्याओं व बुराईयों से छुटकारा दिलाने में विश्व की सभी विचारधाराऐं विफल रही हैं और सर्वोदयी विचारधारा को व्यवहार में लाने के गम्भीर प्रयास नहीं किये गये परन्तु मानव के कल्याण, मानव की गरिमा को सुनिश्चित व सुरक्षित रखना मानवता के लिए सर्वोदय की अवधारणा एक आशाजनक विकल्प हो सकता है। मानव जाति का भविष्य गाँधीवादी विचारधारा- सर्वोदय में ही सुरक्षित है। सर्वोदय कोई सम्प्रदाय नहीं है, यह तो एक विश्व धर्म है, विश्व-शान्ति का दर्शन है। विश्व में ज्यों-ज्यों अहिंसा का वैश्वीकरण हो रहा है, त्यों-त्यों विश्व नागरिकता, विश्वधर्म और विश्व राज्य की बातें बढ़ रही हैं। अतः सर्वोदय का भविष्य उज्जवल दिखायी दे रहा है।

9.7 सारांश

भारतीय समाज वर्षों से दुखों, कष्टों से कराह रही थी। समाज में तनाव, संघर्ष, वैमनस्य, असमानता, अन्याय, अधर्म, शोषण एवं हिंसा का चारों तरफ साम्राज्य था। महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति के आधार वाक्य "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया" के आलाक में नवीन सामाजिक रचना का नवीन कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसके लिए सर्वोदय का सिद्धान्त दिया। सर्वोदय का सिद्धान्त बहुआयामी सिद्धान्त है (सबका सब प्रकार से उदय कल्याण और विकास)। महात्मा गाँधी ने मानव समाज को समस्याओं से मुक्त करने के लिए सर्वोदय का एक सैद्धान्तिक विचार दिया। महात्मा गाँधी के पश्चात् उनके आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे ने सर्वोदय के सिद्धान्त का भूदान एवं ग्रामदान के रूप में व्यावहारिक प्रयोग कर मानव समाज की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। भूदान एवं ग्रामदान के माध्यम से विश्व मानव समाज को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि अहिंसा के माध्यम से मानव समस्याओं का समाधान सम्भव है अर्थात् सर्वोदय एक विचार है, एक सिद्धान्त है, एक प्रक्रिया है, एक माध्यम है, एक व्यवस्था है।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी की सर्वोदय की अवधारणा का विस्तार से वर्णन करें।
2. सर्वोदय के विभिन्न आयामों की व्याख्या कीजिए।
3. "सर्वोदय नवीन समाज निर्माण की एक प्रक्रिया भी है, एक व्यवस्था भी है, एक कार्यक्रम है" विवेचना कीजिए।
4. सर्वोदय के व्यावहारिक प्रयोगों की विवेचना कीजिए।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेट्टिकल, थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय: रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002
2. अय्यर, आर. एन., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 1973
3. पारीख, भीखू, "गाँधी: ए वेरी शार्ट इन्टूडेक्शन, प्रथम भारतीय संस्करण, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 2007

4. दाधीच, नरेश (सम्पादित), टुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड: इन्टरनेशनल एण्ड इन्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004

5. धवन, जी. एन., द पोलिटीकल फिलास्फी ऑफ महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मण्डल, मुम्बई, 1990

6. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

इकाई – 10

ई. एफ. शूमाकर

इकाई रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आधुनिक विश्व

10.2.1 उत्पादन समस्या

10.3 शान्ति एवं स्थायित्व

10.4 अर्थशास्त्र की भूमिका

10.5 बुद्धवादी अर्थशास्त्र

10.6 आकार का प्रश्न

10.7 संसाधन

10.7.1 उद्योग के लिए संसाधन

10.7.2 तकनीकी मानवीय पहलू

10.8 तृतीय विश्व

10.9 मध्यवर्ती तकनीकी

10.10 सारांश

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में गाँधीजी के बाद गाँधीवादी विचारधारा को प्रचारित करने में योगदान करने वाले विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई.एफ. शूमाकर के विश्व प्रसिद्ध पुस्तक ''स्माल इस ब्यूटिफुल'' (Small is Beautiful) के बारे में विस्तार से बताया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- जान सकेंगे कि जर्मनी के विद्वान शूमाकर कौन थे?
- श्ॅउंसस पे ठमंनजपनिसश् पुस्तक में उन्होंने क्या विचार व्यक्त किये?
- एक अर्थशास्त्री के रूप में बुद्धअर्थशास्त्र में उन्होंने कौन से सिद्धान्त विकसित किए?
- समझ सकेंगे कि उत्पादन का आकार किस प्रकार संसाधनों के उपयोग को प्रभावित करता है।

1.4 आर्थिक दृष्टिकोण

10.1 प्रस्तावना

अर्नस्ट फेड्रिक शूमाकर का जन्म जर्मनी में सन् 1911 में हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व 1930 में जर्मनी की नाजी सरकार के शासन में रहने के बजाय वह स्कालरशिप पर ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए चले गये। यद्यपि जर्मनी से शत्रुता के कारण शुमाकर को दुश्मन ही माना जाता था परन्तु उन्होंने अपनी बुद्धि एवं क्षमता का परिचय देते हुए ब्रिटिश सरकार को आर्थिक एवं वित्तीय संसाधन जुटाने में मदद की। युद्ध के बाद शुमाकर ने ब्रिटेन में ब्रिटिश कन्ट्रोल कमीशन में अपनी सेवाएं दी एवं उन्हें जर्मनी के पुर्नउद्धार का काम दिया गया। वर्ष 1950 से 1980 तक वह ब्रिटिश कोल बोर्ड के मुख्य आर्थिक सलाहकार के पद पर रहे। यह दुनिया का एक विशाल व्यावसायिक संगठन था। जिसमें लगभग 8 लाख व्यक्ति कार्यरत थे।

शूमाकर की दूरदृष्टि एवं नियोजन से ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को तेल संकट से उबरने में एवं आणविक शक्ति के रूप में उदय होने में मदद मिली। 1955 में शूमाकर ने बर्मा (आजकल म्यांमार) की यात्रा कोल इण्डिया की नौकरी में रहते हुए आर्थिक सलाहकार के रूप में की वहाँ उन्होंने बुद्ध अर्थशास्त्र ;ठनककीपेज म्बवदवउपबेद्ध का अध्ययन एवं विकास किया। उनका विश्वास था कि मानव के कल्याण के लिए एवं आर्थिक विकास के लिए स्थानीय संसाधनों के आधार पर विकास आवश्यक है। यहाँ प्राप्त ज्ञान से उन्होंने 'उपयुक्त तकनीकी' (Appropriate Technology) की अवधारणा का विकास किया।

बाद में शूमाकर 'Resurgence' नामक ब्रिटिश जर्नल के लिए लिखने लगे। उसकी सर्वाधिक चर्चित पुस्तक 'Small is Beautiful : Economics as if People Mattered' वर्ष 1973 में प्रकाशित हुई। इसे 1999 में पुनः हार्टले एवं मार्क्स द्वारा प्रकाशित किया गया। उनकी दो अन्य पुस्तकें 'Good Work' और 'A Guide for the Perplexed' भी प्रकाशित हुई।

10.2 आधुनिक विश्व

पिछले कुछ वर्षों में आधुनिकता की मानसिकता ने व्यक्ति के व्यवहार को परिवर्तित कर दिया है एवं पश्चिम की सोच एवं व्यवहार ने यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि हमें प्रकृति पर विजय प्राप्त करनी है। शुमाकर के अनुसार "आधुनिक मानव स्वयं को प्रकृति का ही हिस्सा न मानकर खुद को एक ऐसा बाह्य शक्ति मानता है जिसकी नियती प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित करने और उस पर विजय प्राप्त करना है| वह प्रकृति के विरूद्ध अपनी लड़ाई की घोषणा करते समय यह भूल जाता है कि यदि वह यह लड़ाई जीत भी जाता है तो भी वह हारा हुआ ही होगा। परन्तु प्रकृति के विरूद्ध इस लड़ाई में वह जीतने का भ्रम पालता रहता है। यद्यपि हाल के कुछ वर्षों में कुछ व्यक्तियों को इस लड़ाई में यह अहसास होने लगा है कि प्रकृति पर विजय मानवता की हार ही है।"

10.2.1 उत्पादन की समस्या

शूमाकर के मत में वर्तमान युग के लोगों का एक महत्वपूर्ण भ्रम इस बात का अहसास है कि उत्पादन की समस्या हल हो गई है। यह भ्रम केवल उन्हें ही नहीं है जो उत्पादन से दूर है बल्कि उन्हें भी है जिन्हें हम शिक्षित समझदार एवं उद्योग से जुड़े हुए मानते हैं। इस भ्रमपूर्ण परिस्थिति का कारण वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के द्वारा प्राप्त कुछ उपलब्धियां हैं जिससे उसे आभास होता है कि उत्पादन की समस्या हल हो गई है।

शूमाकर के मत में यह भ्रम आय एवं पूँजी में भेद नहीं करने के कारण उत्पन्न हुआ है, जबकि इस भेद को समझना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यवसायी एवं उद्योगपति आय एवं पूँजी में भेद का जानता है एवं सूक्ष्म रूप में उसे लागू करता भी है परन्तु वहाँ पर नहीं जहाँ इसकी सर्वाधिक जरूरत है- पुनर्भरण नहीं हो सकने वाली वह पूँजी जो मानव निर्मित नहीं है एवं जिसके अभाव में वह कुछ नहीं कर पाएगा। शूमाकर लिखते हैं "एक व्यवसायी कभी यह नही मानता कि उसके फर्म (firm) ने अपनी समस्याओं का निराकरण कर लिया है और व्यवहार्यता प्राप्त कर ली है यदि उसका फर्म तेजी से पूँजी की खपत कर रहा हो|" इस अवधारणा को हम अर्थव्यवस्था के बारे में कैसे भूल जाते हैं। पृथ्वी रूपी जहाज की बड़ी फर्म ही तो है एवं प्राकृतिक धरोहर विश्व की पूँजी है।

उनके इस महत्वपूर्ण तथ्य को भूल जाने का एक कारण तो यह हो सकता है कि हम वास्तविकता से दूर होकर हर उस वस्तु को मूल्यहीन अथवा मुफ्त की मान बैठते हैं जो हमने अपने श्रम से तैयार नहीं की है। महान विचारक कार्लमार्क्स के 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त में भी यह चूक हो गई। हम जो भी उत्पादन करते हैं उसमें लगने वाले वैज्ञानिक तकनीकी एवं ज्ञान, आधारभूत संरचना एवं पूँजी को उपयोग में लेते हैं परन्तु यह सभी उस पूँजी की तुलना में काफी कम है जो हमें प्रकृति पदान करती है लेकिन हम गणना करते समय उसकी चर्चा तक नहीं करते। आजकल तो प्रकृति के भाग का हिस्सा पहले की तुलना में अत्यधिक बढ़ चुका है एवं अब कुछ लोगों को यह अहसास भी होने लगा है।

शूमाकर ने अपनी पुस्तक 'Small is beautiful' में लिखा है कि हमारी सबसे बड़ी भूल यही है कि हम मानते हैं कि "उत्पादन की समस्या" का समाधान हो गया है। प्राकृतिक पूँजी को आय मान लेने की वजह से यह भ्रम उत्पन्न होता है क्योंकि कोई भी व्यवसायी यह कभी नहीं चाहता कि जो पूँजी लगाकर उसने व्यवसाय प्रारम्भ किया है वह पूँजी को ही उपभोग करले। वह सदैव पूँजी की सुरक्षा एवं संरक्षण चाहता है। प्राकृतिक पूँजी के सम्बन्ध में हम सम्पूर्ण पूँजी को ही अपनी आय मानकर उपभोग कर प्रसन्न हो रहे है। जैसे पेट्रोलियम, कोयला, खदानों से प्राप्त खनिज धातु ऐसी पूँजी है जो सीमित है एवं नाश्वान है। यदि तेजी से उनका उपयोग होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब यह पूँजी समाप्त हो जायेगी एवं हम ऐसी स्थिति में पहुँच जायेंगे जहाँ से हमारी सभ्यता का ढ़ाचा ही चरमरा जाएगा। तेजी से हो रहे खनिज दोहन को यदि संरक्षित नहीं किया गया तो आज जो बच्चा पैदा हुआ है उसके बूढ़ा होने तक संसाधनों की खपत की रफ्तार कई गुणा तेज हो जाएगी। शूमाकर ने बताया कि यद्यपि प्राकृतिक धन का उपयोग कोई नई बात नहीं परन्तु वर्षों तक हमें इसका आभास नहीं हुआ क्योंकि दोहन की गति धीमी थी। पिछले कुछ वर्षों में विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस गति में तीव्र वृद्धि हुई है एवं आजकल हम प्रदूषण जैसे शब्द सुन रहे हैं जो पहले नहीं थे। इसका कारण प्रकृतिधन का उपयोग पुनर्भरण सीमा से अधिक होना एवं प्रकृति की सहनशक्ति से अधिक होना है। मानव सभ्यता जो प्रदूषण, रेडियोएक्टिव पदार्थ इकट्ठे कर रही है वह शताब्दियों तक खतरा उत्पन्न करेंगे।

हम हमारी सकल राष्ट्रीय आय को बढ़ाकर कुछ समय के लिए प्रसन्न हो सकते हैं परन्तु यह प्रसन्नता स्थायी नहीं होगी। केवल आय बढ़ाने से हमारी खुशहाली नहीं बढ़ेगी इसके साथ अपराधवृति, नशीली दवाईयाँ, बीमारियाँ, समस्याएं भी बढ़ रही है। आय में वृद्धि की वजह नाश्वान प्राकृतिक पूँजी से उत्पन्न सम्पूर्ण उत्पादन को आय मानना है। जीवाश्म ईंधन, प्रकृति की सहनशक्ति, मानवता के लिए दीर्घकालिक जरूरतें हैं इनका अत्यधिक विवेकहीन उपयोग हमारे जीवन को अधिक दिनों तक खुशी नहीं दे पाएगा।

10.3 शान्ति एवं स्थायित्व

सामान्य एवं प्रचलित अवधारणा के अनुसार शान्ति का मजबूत आधार वैश्विक समृद्धि है। ऐतिहासिक अवलोकनों से यह बात सिद्ध होती है कि समृद्ध व्यक्ति नियमित रूप से शान्त रहते हैं। इसका अभिप्राय यह भी है कि वे कभी भी गरीब व्यक्ति से अपने को सुरक्षित नहीं समझते हैं एवं उनके व्यवहार में उग्रता का कारण डर है। कहने का अभिप्राय यह है कि विश्व में कहीं भी गरीबी या अभाव समृद्धि या सम्पन्नता को सबसे बड़ा खतरा है। सम्पन्न व्यक्ति क्यों युद्ध करेगा? उसके लिए प्राप्त करने को कुछ नहीं है जबकि क्या ऐसा नहीं लगता कि गरीब, अभावग्रस्त एवं दलित वर्ग के पास खोने के लिए केवल उनकी बेड़ियों के अलावा कुछ नहीं है, इस प्रकार शान्ति का मार्ग सम्पन्नता से होकर गुजरता है। इसलिए व्यक्ति शीघ्रता से सम्पन्नता का रास्ता तय करना चाहता है। इस रास्ते पर वह वस्तु प्राप्त करने के लिए अपनाए गये तरीकों की परवाह नहीं करता वह नैतिकता एवं त्याग की परवाह नहीं करता। सम्पन्नता की इस तेज दौड़ में विज्ञान एवं तकनीकी उसकी मदद करता है। इस कार्य में धन अर्जित करने के लिए उसका व्यवहार विवेकहीन, मूर्खतापूर्ण होता है वह अपने ही पांव पर कुल्हाड़ी मारने से भी नहीं हिचकिचाता है। गरीब व अभावग्रस्त व्यक्ति तेजी से धनवान बनने के लालच में उस मुर्गी को ही मार डालता है जो भविष्य में सोने के अण्डें देने वाली है। सम्पन्न व्यक्ति यह सोचकर गरीबों की मदद करता है कि उसकी सम्पन्नता कायम रखने एवं बढ़ाने का यही एक मात्र कारगर उपाय है। महात्मा गाँधी ऐसी कल्पना करते हैं जिसमें सामाजिक ढ़ाचा इतना सही होता है कि किसी भी व्यक्ति को दूसरे की मदद की अपेक्षा नहीं होती सभी समान व सम्पन्न होते हैं। क्या अब हम इस सपने को अपने विशाल वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान के द्वारा हकीकत में नहीं बदल सकते? अब क्यो गुणों की बात करते हैं जो हम कभी प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं करते? हम तो वैज्ञानिक आधार एवं तकनीकी ज्ञान को प्राप्त करने की सोचते हैं।

शूमाकर लिखते हैं कि आज हम गाँधीजी द्वारा कल्पित सत्य, अहिंसा एवं नैतिक व्यवहार जैसे मानवीय गुणों के स्थान पर जान मेनार्ड कीन्स के अर्थशास्त्र को ज्यादा ध्यान देते हैं जहाँ वह एक सम्पन्नता का आर्थिक स्वप्न दिखाता है। 1930 की महान आर्थिक मंदी के समय वह हमारे पोते की समृद्धि एवं सम्पन्नता की बात कहता है, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम साध्य को महत्व दे साधन को नहीं। नैतिकता का विचार करना कोई मायने नहीं रखता बल्कि सम्पन्नता के मार्ग में रोड़ा बनता है।

हम अब तीन प्रतिमानों पर विचार करेंगे-

(अ) वैश्विक सम्पन्नता सम्भव है;

(ब) यह सम्पन्नता मात्र भौतिकवादी सोच के द्वारा प्राप्त होगी;

(स) सम्पन्नता की राह से ही शान्ति की प्राप्ति होगी।

वैश्विक समृद्धि की दौड़ में सम्पन्न एवं दरिद्र सभी है। परन्तु कोई यह नहीं समझ पाता कि अब उनके पास पर्याप्त है क्योंकि जब आर्थिक वृद्धि को ही लक्ष्य मानकर समाज आगे बढ़ता है तो फिर जितना मिले और अधिक प्राप्ति की कामना रहती है।

शूमाकर अपनी पुस्तक ‘Small is Beautiful’ में ईंधन का उदाहरण लेकर समझने का प्रयास करते हैं कि सम्पन्नता का अभिप्राय ईंधन का अधिक उपयोग है। दरिद्र एवं सम्पन्न व्यक्ति के ईंधन उपयोग में विषम एवं भारी अन्तराल है। वर्ष 1966 के आँकड़ों को आधार लेकर वह सम्पन्न एवं दरिद्र के ईंधन उपयोग को कोयले के समकक्ष के आधार पर अध्ययन करते हैं।

तालिका

Particular विवरण	Unit इकाई	Rich सम्पन्न	Poor दरिद्र	World विश्व
Population जनसंख्या	(Million) (मिलियन)	1060 (31)	2284 (69)	3384 (100)
Fuel Consumption ईंधन खपत	(Coal equivalent-Millions Tonns c.e.) (कोयले के बराबर मिलियन टन)	4788 (87)	721 (13)	5509 (100)
Fuel consumption per head प्रतिव्यक्ति ईंधन खपत	Tonns Coal equivalent (टन कोयले के बराबर)	4.52	0.32	1.65

Source: Schumacher, Small to Beautiful

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि दरिद्र व्यक्ति की प्रतिव्यक्ति ईंधन की खपत मात्र 0.32 टन है जो सम्पन्न व्यक्ति की तुलना में 1/14 वां हिस्सा है। इस आधार पर 70 प्रतिशत व्यक्ति गरीब है। यदि अचानक दरिद्र व्यक्तियों का ईंधन उपयोग सम्पन्न व्यक्तियों की बराबर हो जाय तो विश्व का ईंधन उपयोग अचानक करीब 14 गुणा बढ़ जायेगा। लेकिन यह अचानक नहीं होगा भविष्य में वर्ष 2000 की गणना कर शूमाकर यह स्पष्ट करते हैं कि ईंधन खपत में कई गुणा वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार की गणनाएं भविष्य के वर्षों में उपस्थित हो सकने वाले संकट का एक छोटा सा नमूना है यदि यह चलता रहा तो भविष्य में यह संकट एवं तनाव का एक बहुत बड़ा कारण होगा। यह भी सम्भव है कि हम ईंधन का स्वरूप बदल दे एवं परमाणु ईंधन का उपयोग करने लगे तब खतरे का स्वरूप भी बदल जायेगा। विश्व वर्तमान में पर्यावरणीय असंतुलन का अनुभव कर रहा है। एक

समस्या का समाधान होता है तो दूसरी समस्या उत्पन्न हो जायेगी है। कुछ व्यक्ति खतरे को पूर्व में अनुभव कर चिन्ता करने वालों को निराशावादी कहकर उनका तिरस्कार कर सकते हैं एवं स्वयं को आशावादी कहकर यह बताने की कोशिश करते हैं कि विज्ञान एवं तकनीकी सभी समस्याओं का समाधान खोज लेगी। परन्तु वास्तव में वे ये भूल जाते हैं कि विज्ञान एवं तकनीकी ने पिछले 100 वर्षों में खतरे को कई गुणा बढ़ा दिया है। इस बात के प्रमाण है कि प्रकृति का संतुलन बिगड़ता जा रहा है कुछ वर्षों में जल संकट उत्पन्न हो जाएगा जब तक मानव के क्रियाओं का आधार लोभ रहेगा समस्याएं समाप्त नहीं होगी।

अतः शूमाकर का दृढ़ मत था कि समृद्धि के आधार पर स्थायित्व और शान्ति नहीं मिलेगी। अतः केवल आर्थिक सोच को बदलकर अर्थशास्त्र में बुद्धिमानी पूर्ण विचारों को स्थान देना होगा। बुद्धिमानी यही है कि विकास स्थायी रहे। गाँधीजी ने कहा था कि प्रथ्वी साभी मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ति करने की क्षमता रखती है पर सभी की स्वार्थ पूर्ति नहीं कर सकती| स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि हम विवेकबुद्धि का प्रयोग कर आवश्यकताओं को इतना न बढ़ा ले कि हमारा जीवन ही खतरों से घिर जाये। अतः वैज्ञानिक एवं तकनीकी सोच में स्थायित्व एवं विवेकबुद्धि का उपयोग कर हम ऐसी मशीनों को न बनाएं जिनसे प्रदूषण फैलता हो। हमारी तकनीकी ऐसी होः

• सर्वसुलभ एवं सस्ती हो जो प्रत्येक व्यक्ति उपयोग में ले;

• लघु आधार पर उपयोग हो;

• मानव सृजन क्षमता को प्रोत्साहित करे।

अतः गाँधीजी के विचारों के अनुरूप मशीने ऐसी हो जो व्यक्ति को काम में मदद करे न कि सत्ता एवं धन का कुछ मुट्ठीभर हाथों में केन्द्रीयकरण करे।

10.4 अर्थशास्त्र की भूमिका

शूमाकर की पुस्तक के तीसरे अध्याय में वह अर्थशास्त्र की भूमिका की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि हमारे आर्थिक भविष्य का निर्धारण करने में अर्थशास्त्रियों की बड़ी भूमिका होती है। आधुनिक युग के क्रियाकलापों की क्रियान्वति में अर्थशास्त्र की केन्द्रीय भूमिका है। अर्थशास्त्र ही हमें यह बताता है कि आर्थिक एवं अनार्थिक क्या है? अन्य किसी मापदण्ड का इतना अधिक प्रभाव नजर नहीं आता। अतः आधुनिक विश्व के खतरों से निपटने के लिए हमें अर्थशास्त्रियों की सलाह लेकर शान्ति एवं स्थायित्व की स्थापना करने का प्रयत्न करना होगा। बिन्दु 9.2 एवं 9.3 में चर्चित समस्याओं से अर्थशास्त्र किस प्रकार सम्बन्धित है। जब अर्थशास्त्री किसी

निर्णय से किसी भी क्रिया को आर्थिक अथवा अनार्थिक घोषित करते हैं तो उनके इस निर्णय का अभिप्राय क्या है? जब अर्थशास्त्र एक अलग शाखा के रूप में विकसित हो रहा था तब भी कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया था कि यह एक सम्पूर्ण दृष्टि नहीं है बल्कि मात्र सामाजिक दर्शन की एक शाखा है। परन्तु अब इसे एक स्वतंत्र ज्ञान की शाखा की मान्यता मिल गई है बल्कि आर्थिक वृद्धि, प्रगति, आदि शब्द सभी के द्वारा पसन्द किये जाते हैं। यदि किसी क्रिया को अनार्थिक कह दिया जाय तो शायद उसके अस्तित्व पर ही सवाल खड़े कर दिये जाते हैं। इसके अलावा आप चाहे जो कहे अनैतिक, भ्रष्ट, असामाजिक, अशान्ति कारक या कुछ अन्य उसके अस्तित्व का सवाल उत्पन्न नहीं होता।

यदि अनार्थिक कह दिया तो जैसे उसकी समाज में कोई आवश्यकता ही नहीं है वह एक व्याधि की भांति अवांछनीय है। जबकि अनार्थिक का अर्थ मात्र इतना है कि वह क्रिया लाभकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी कसौटियां जैसे समाजिक, नैतिक, राजनैतिक, सुन्दर आदि की कोई कीमत नहीं है।

अर्थशास्त्र के महान विचारक कीन्स के लिए लाभदायक घटना भी वह है जो शीघ्र परिणाम दे क्योंकि वह कहते हैं दीर्घकाल में तो हम सभी मर जायेंगे। दूसरे, लाभ की अवधारणा लागत के सन्दर्भ में देखी जानी चाहिए। परन्तु लागत की अवधारणा में मुफ्त में उपलब्ध वस्तुएं सम्मिलित ही नहीं होती। इस प्रकार ईश्वर से हमें मिला है यह सुन्दर पृथ्वी, जल, वायु, खनिज, जैव विविधता, वन, वन्यजीव इनका कोई मूल्य नहीं। यदि कोई क्रिया इनका विनाश करती है तब भी वह आर्थिक हो सकती है और यदि हम कुछ करके इन्हें बचाने पर व्यय करें तो वह क्रिया अनार्थिक कहलाती है।

अर्थशास्त्र में वस्तु का महत्व उसकी बाजार कीमत से तय होता है। मानव प्रकृति जन्य वस्तुओं को मुफ्त की मानकर गणनाएं करता है। फिर बाजार में कीमत निर्धारण करते समय मोलभाव क्षमता महत्वपूर्ण है वस्तुएं सस्ती मिले यह महत्वपूर्ण है अन्य सभी बातें गौण है। अतः केवल मौद्रिक लागते ही गणनाओं का आधार है। वस्तु सस्ती मिले इसके अलावा कोई बात मायने नहीं रखती। यदि स्वदेशी वस्तु मंहगी एवं विदेश में बना माल सस्ता मिल रहा है तो क्रेता को वह वस्तु आयात करने से कोई परहेज नहीं उसे अपने देश के भुगतान संतुलन की भी चिन्ता नहीं है।

बाजारतंत्र स्वचालित होता है एवं यह अदृश्य शक्ति मांग एवं पूर्ति द्वारा संचालित होता है। यहाँ हर साधन की कीमत है एवं उसे बेचा व खरीदा जाता है अन्य किसी बात का कोई मूल्य नहीं होता। कई वस्तुएं जिनकी मूल्य गणना सम्भव नहीं उन्हें भी किसी न किसी आधार पर मूल्य आरोपित कर लागत-लाभ विश्लेषण की परिधि में लाया जाता है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र की परिधि में अन्य मापदण्डों का कोई स्थान नहीं होता। अर्थशास्त्री कभी पराअर्थशास्त्र ;डमजं.मबवदवउपबेद्ध का अध्ययन नहीं करता। जब तक परा-अर्थशास्त्र का अध्ययन न किया जाय वह यह

समझ ही नहीं सकता कि आर्थिक परिधि के बाहर भी कुछ मापदण्ड हो सकते हैं। परा-अर्थशास्त्र क्या है? शूमाकर के अनुसार " As economics deals with man in his environment, we may expect that Meta-economics consists of two parts - one dealing with man and the other dealing with environment." दूसरे शब्दों में अर्थशास्त्र को अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य मानव के कल्याण के आधार पर निर्धारित करने चाहिए एवं इसकी प्रविधि प्रकृति के अध्ययन से लेनी चाहिए। अर्थशास्त्र को विस्तृत दृष्टिकोण लेकर उन वस्तुओं की बात भी करनी चाहिए जो कभी बाजार तंत्र का हिस्सा नहीं बनती जैसे हवा, पानी, मिट्टी अतः अर्थशास्त्र का परिधि के बाहर निकलकर कुछ विचार करना होगा।

10.5 बुद्धवादी अर्थशास्त्र

शूमाकर ने बुद्धवादी अर्थशास्त्र के कुछ सिद्धान्तों पर अपने विचार रखे एवं वह इन विचारों को अर्थशास्त्र के मात्र आर्थिक दृष्टिकोण वाले विचारों से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। बुद्ध के विचारों में सही जीविका (Right Livelihood) का विचार महत्वपूर्ण है। बुद्धवादी देश भगवान बुद्ध के विचारों में श्रद्धा रखते हैं एवं वे आर्थिक प्रगति एवं धार्मिक विश्वास एवं मूल्यों में कोई विरोधाभास भी नहीं देखते हैं। आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं भौतिक कल्याण दोनों में वैरभाव नहीं है। "We can blend successful the religious and spritual values of our heritage with benefits of modern technology." बुद्धवादी देशों का यह दृढ़ विश्वास है कि वे अपने देश की विकास योजनाएं बुद्ध के विचारों पर अमलकर तैयार कर सकते हैं। अन्य सभी विशेषज्ञों की भांति अर्थशास्त्रियों को भी एक प्रकार यह विश्वास होता है कि उनका विज्ञान एवं उनके द्वारा प्रतिपादित नियम भी भौतिक विज्ञान के गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त की भांति सत्य है। अब हम और अधिक विवाद न कर बुद्धवादी अर्थशास्त्र एवं उसके विपरीत सामान्य अर्थशास्त्र के कुछ प्रतिमानों की चर्चा करेंगे।

1. मानव श्रम- सभी इस बात पर सहमत है कि धन का स्रोत मानव श्रम है। आधुनिक अर्थशास्त्री मानव श्रम को एक आवश्यक बुराई मानते हैं। पूँजीपति श्रम को लागत का एक भाग मानकर यदि स्वचालित मशीनों का उपयोग कर पूर्णरूप से समाप्त नहीं कर सके तो उसे न्यूनतम करना चाहते हैं। कार्य करना अप्रिय है एवं आराम करना एक उपयोगिता अतः मालिक बिना श्रम के उत्पादन चाहता है एवं श्रमिक बिना रोजगार वेतन। इस सिद्धान्त के कारण अर्थशास्त्र के सिद्धानतें में कार्य का भार घटाना व स्वचालित प्रक्रिया अपनाने को श्रेष्ठ माना जाता है इसके लिए जैसा एडमस्मिथ ने कहा था श्रम विभाजन तकनीकी को अपनाया जाता है।

बुद्धवादी विचारधारा में कार्य को तीन स्तरों पर देखा गया है – (1) मानव की विभिन्न क्षमताओं को विकसित होने एवं पनपने का अवसर प्रदान करना, (2) दूसरों के साथ सहयोग भावना का विकास करना, (3) आवश्यकतानुरूप वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना। इसका यह भी अभिप्राय हे कि कार्य प्रक्रिया को इस प्रकार संगठित करना कि वह अप्रिय, उबाऊ, लगने लगे। यह वास्तव में आपराधिक है। इसी प्रकार आराम

एवं विलासिता को कार्य से अधिक रूचिकर मानना भी सत्य के विरूद्ध है। वस्तुतः कार्य एवं आराम एक दूसरे के पूरक है एवं इन्हें अलग करके कार्य का आनन्द व विश्राम का सुख अनुभव नहीं हो सकता।

बुद्धवादी विचारधारा के अनुसार दो प्रकार के यंत्रीकरण हो सकते हैं- एक जो मानव दक्षता का विकास करे एवं दूसरा जो मानव को मशीनों का दास बना दे। अतः दूसरे प्रकार का यंत्रीकरण अर्थव्यवस्थाओं के लिए अनुपयोगी है। बुद्धवादी अर्थशास्त्र में सभ्यता का मूल्य आवश्यकता की वृद्धि में नहीं बल्कि मानव चरित्र के शुद्धिकरण में है। प्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक कुमारप्पा के अनुसार "If the nature of work is properly appreciated and applied, it will stand in the same relation to the higher faculties as food is to the physical body. It nourishes and enlives the higher man and urges him to produce the best he is capable of, It directs his free will along the proper course and disciplines the animal in him into progressive channels. It furnishes an excellent background for man to display his scale of values and develops his personality."

2. पूर्ण रोजगार एवं बुद्धवादी अर्थशास्त्र- बुद्धवादी अर्थशास्त्र में पूर्ण रोजगार को महत्व दिया गया है एवं इसका वास्तविक लक्ष्य उन सभी लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना है जिन्हें कार्य की आवश्यकता है परन्तु रोजगार उत्पन्न करने का लक्ष्य रोजगार को अधिकतम करना एवं उत्पादन को अधिकतम करना नहीं होगा। बुद्धवादी अर्थशास्त्र का यह मानना है कि महिलाओं को बाह्यकार्य की आवश्यकता नहीं है। बड़ी संख्या में महिलाओं का बाह्य कार्य पर जाना गम्भीर आर्थिक संकट है क्योंकि महिलाओं एवं बच्चों को कार्य पर लगाने का अभिप्राय यह है कि बच्चों का भविष्य बिगाड़ना एवं अनार्थिक भी है ठीक वैसे ही जैसे एक कुशल श्रमिक को सिपाही बनाना आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मत में अनार्थिक है।

3. स्थानीय साधन- जहाँ भौतिकवादी अधिक वस्तुओं का उत्पादन चाहते हैं। बुद्धवादी मुक्ति में रूचि रखते हैं एवं मुक्ति के मार्ग में बाधा धन न होकर धन से होने वाला लगाव है। बुद्धवादी अर्थशास्त्र का मूल संदेश "सादगी एवं अहिंसा" है। वे अत्यन्त सादगीभरा जीवन जीना चाहते हैं जो अलौकिक संतुष्टि देने वाला हो। वर्तमान अर्थशास्त्रियों की मान्यता उपभोग है जो ज्यादा उपभोग करता वह अधिक संतुष्ट है बुद्धवादियों ने इसे अविवेकपूर्ण माना है। उपभोग का लक्ष्य उपभोक्ताओं का अधिकतम कल्याण है। अतः हमारा उद्देश्य कम से कम उपभोग से अधिकतम कल्याण प्राप्त करना होना चाहिए। इस प्रकार सादगी एवं अहिंसा से पूर्ण एवं अधिकतम संतुष्टि का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए स्थानीय साधनों का उपयोग कर स्थानीय उत्पादन किया जाय यह सर्वाधिक विवेकपूर्ण अर्थशास्त्र है।

4. नवीनीकृत उर्जा उपभोग- वर्तमान अर्थशास्त्री संसाधनों के भेद को नहीं समझते वे सीमित एवं समाप्त होने वाले संसाधनों एवं असीमित व नवीनीकरण योग्य संसाधनों के अन्तर को नहीं समझते। उदाहरणार्थ उर्जा

के स्रोतों जैसे तेल, कोयला, लकड़ी, जल, विद्युत इत्यादि उनके लिए समान हैं एवं जो इनमें सबसे सस्ती है वही उपयुक्त है। बुद्धवादियों के अनुसार यह तुलना अनुपयुक्त एवं अविवेकपूर्ण है हमें नवीनीकृत उर्जा के स्रोतों का उपयोग अधिक से अधिक करना चाहिए एवं अन्य स्रोतों को संरक्षित कर कम से कम उपयोग में लेना चाहिए। उन्हें अविवेकपूर्ण तरीके से उपयोग में लेना वस्तुतः हिंसा है।

आधुनिकीकरण मानवमात्र के लिए वांछित परिणाम प्रदान करने में असमर्थ रहा है। ग्राम्य स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था का अन्त, बेरोजगारी, गरीबी, अस्थिरता, कुपोषण, भूख बढ़ रही है। बुद्धवादी अर्थशास्त्र का सार दीर्घकालीन विकास का वह पथ है जो विकास का सही मार्ग है, न वह आधुनिकीकरण की अंधीराह पकड़ना चाहते है, नहीं रूढ़ीवादी स्थिरता चाहते हैं, वस्तुतः वह मध्यमार्ग अपनाना चाहते हैं, जो सही जीविकोपार्जन का माध्यम हो।

10.6 आकार का प्रश्न

प्रारम्भ में मानव एकाकीपन से दूर हटकर अपने परिवार, कबीले, समाज, गाँव, कस्बे एवं शहर बनाकर एक राष्ट्र का निर्माण करता है। राष्ट्रों का संघ बनाता है एवं संगठित होता है। परन्तु आजकल परिवार टूट रहे हैं, देश बिखर रहे हैं। छोटे राज्य, छोटे जिले बन रहे हैं यह वस्तुतः आकार का प्रश्न है। पहले यह माना गया कि राष्ट्र का आकार बड़ा होना चाहिए बड़ा राष्ट्र समृद्ध होता है परन्तु यह सोच अंतिम नहीं है।

अर्थशास्त्र का सोच भी बदला है। हमें मितव्ययिताएं के बारे में काफी कुछ पता है। उद्योग, फर्म, सभी मितव्ययिताएं प्राप्त करने के लिए अपना आकार बढ़ाते है। वैश्वीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां छोटी कम्पनियों को खरीद कर अपना आकार बढ़ा रही है। बड़ी-बड़ी फर्में कम्पनियां छोटी-छोटी कम्पनियों को खरीद कर अपना आकार बढ़ा रही है परन्तु यह भी सत्य है कि छोटी कम्पनियां भी बढ़ रही है। कई छोटी-छोटी कम्पनियां भी बड़ा भारी व्यापार कर मुनाफा कमा रही है। इस प्रकार आकार का प्रश्न यहाँ भी महत्वपूर्ण एवं विरोधाभासी है।

मानव हमेशा स्वच्छंदता एवं कानून व्यवस्था दोनों चाहता है। बड़ी-बड़ी कम्पनियों का प्रबन्धन छोटे-छोटे विभागों के माध्यम से होता है अतः प्रश्न यह उठता है कि अनुकूलतम आकार क्या है?

इस प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर करता है कि हम क्या करना चाहते हैं? सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सभी क्षेत्रों में यह प्रश्न अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। एक शहर का सही आकार क्या होना चाहिए? गाँवों से व्यक्ति शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में सुविधाएं बढ़ रही है और उनका आकार भी बढ़ रहा है। इसके बावजूद शहरों की समस्याएं भी बढ़ रही है। गरीबी, कुपोषण, भूखमरी, शोषण बढ़ रहे है। इसके साथ ही अनुदान भी बढ़ रही है। इस द्वेतवाद के चलते कई राष्ट्रों में असमानता की खाई बढ़ रही है देश में अराजकता व

आतंकवाद का माहौल बन रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि आकार बढ़ने से समस्याएं कम नहीं हो रही है। अतः मानव जीवन में स्वायत्तता, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र जैसे मूल्यों की स्थापना के लिए यह जरूरी है कि आकार प्रबन्धन योग्य हो।

10.7 संसाधन

मानव सभ्यता का सदियों से विकास हुआ है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन निम्नांकित हैः शिक्षा, भूमि, उद्योग के लिए संसाधन, तकनीकी इत्यादि। मानव सभ्यता एवं ज्ञान के विकास में शिक्षा, प्रशिक्षण आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा में अत्यधिक विशेषज्ञता का चलन होने से ज्ञान का विकास क्या अवरूद्ध हुआ है। विशेषज्ञता अपने आप में बुरी नहीं परन्तु ज्ञान की कमी एवं सीमित सोच नहीं होना चाहिए। शिक्षा सम्पूर्ण मानव का निर्माण करे। एक शिक्षित व्यक्ति वह नहीं जो ज्ञान का थोड़ा हिस्सा जानता है बल्कि वह है जिसे सभी विषयों का पूरा ज्ञान हो।

संसाधनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान भूमि का है। भूमि का कैसे उपयोग हो उसका संरक्षण रक्षा कैसे हो यह महत्वपूर्ण है। सभ्यता के साथ-साथ मानव को यह भ्रम हो गया कि वह प्रकृति का नियता है। यह भूल गया कि उसका यह नियंत्रण एवं विजय कुछ समय की है। इस प्रकार वह कुछ समय स्वामी बनकर प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय संतुलन के साथ खिलवाड़ करता है। इससे प्रदूषण जैसी गम्भीर चुनौतियां उत्पन्न हो गई है। अतः भूमि का विवेकपूर्ण उपयोग जरूरी है। मानव ने भूमि का अंधाधुंध दोहन से उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट कर दी। रसायनिक खाद के प्रयोग से यह समाप्त हो रही है। मिट्टी में कई लवण, खनिज जीवाणु होते हैं। अतः कृषि प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। हमें भूमि का विवेकसंगत प्रयोग कर भावी संतति के लिए उर्वरा भूमि सुरक्षित रखनी होगी।

10.7.1 उद्योग के लिए संसाधन

शूमाकर उद्योगों के लिए आवश्यक संसाधनों की चर्चा करते हुए बताते हैं कि आधुनिक युग की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि उद्योग अत्यधिक अकुशल है परन्तु यह बात आसानी से समझ में नहीं आती। इसको समझाने के लिए वह अमेरिका का उदाहरण लेकर बताता है कि अमेरिका में विश्व की 6 प्रतिशत से कम जनसंख्या निवास करती है एवं यहां का जनसंख्या घनत्व ब्रिटेन व अन्य देशों की तुलना में अत्यन्त कम है। इसके पास विशाल प्राकृतिक संसाधन है फिर भी वह अपने संसाधनों की आवश्यकता का 40 प्रतिशत उपयोग करता है। इस प्रकार मात्र 6 प्रतिशत जनसंख्या विश्व संसाधनों का बड़ा भाग उपयोग कर रही है तो उसे कुशल कैसे कहा जा सकता है।

यदि अमेरिका की विकास दर को और अधिक बढ़ाना है तो हमें और अधिक संसाधनों की आवश्यकता होगी। ऐसे में विश्व की 95 प्रतिशत आबादी का क्या होगा? एम.आई.टी. की विश्व प्रसिद्ध रिपोर्ट 'दी लिमिट्स टू ग्रोथ' जो क्लब ऑफ रोम प्रोजेक्ट के लिए तैयार की गई थी उसमें संसाधनों के बारे में एक तालिका देकर यह प्रदर्शित किया गया है कि चालू उपभोग के आधार पर विश्व के ज्ञात संसाधन कितने समय के लिए पर्याप्त होंगे। स्मरण रहे संसाधन उपभोग दर में विस्फोटक वृद्धि होगी। हमारे लिये तालिका का अन्तिम कॉलम महत्वपूर्ण है जो हमें विश्व के उपभोग की तुलना में अमेरिकन उपभोग का प्रतिशत बताता है।

तालिका 9.2

विश्व के ज्ञात संसाधनों में अमेरिकन उपभोग का प्रति□ात भार

क्रम संख्या	धातु	प्रतिशत उपभोग
1	अल्यूमिनियम	42
2	क्रोमियम	18
3	कोयला	44
4	कोबाल्ट	32
5	ताम्बा	33
6	सोना	26
7	लोहा	28
8	सीसा	25
9	मैंगनीज	14
10	मर्करी	24
11	कौलिडेनम	40
12	प्राकृतिक गैस	63
13	निकल	38
14	पेट्रोलियम	33
15	प्लेटिनम	31
16	चांदी	26
17	टिन	24
18	टंगस्टन	22
19	जस्ता	26

स्रोत : "Small is Beautiful" by Schumacher.

इनमें से कुछ धातु ही ऐसे हैं जिनकी उपभोग मात्रा अमेरिका के लिए पर्याप्त है। इसके निष्कर्ष में शूमाकर कहते हैं कि यह संसाधन अगले 100 वर्षों में समाप्ति के कगार पर पहुँचने से पूर्व अत्यधिक मंहगे हो जायेंगे। तब हमारे औद्योगिक विकास का क्या होगा? लेकिन इसकी चिन्ता कोई नहीं कर रहा है।

10.7.2 तकनीकी - मानवीय पहलू

भौतिकवादी सिद्धान्तों के विकास के साथ शिक्षित आधुनिक पीढ़ी यह नहीं समझ पाती कि तकनीकी के धरातल पर निर्मित यह व्यवस्था एक के बाद दूसरे संकट की जननी है। इस प्रकार तकनीकी जिसे बेशक हमने जन्म दिया है स्वयं के सिद्धान्त, नियम व कानून बना लेती है जो मानवीय प्रकृति एवं जैविक प्राकृतिक तंत्र से भिन्न होते हैं। तकनीकी में स्व-संतुलन नहीं होता जबकि प्राकृतिक तंत्र में स्व-संतुलन है। तकनीकी मानव का कार्य अपने ऊपर ले लेती है एवं मानव अधिकांश समय खाली रहता है। मानव कार्य का आनन्द नहीं ले पाता।

महात्मा गाँधी ने कहा था "विश्व के गरीबों की मदद थोक उत्पादन (mass production) नहीं कर सकता|" उन्होंने सुझाव दिया कि "उत्पादन हमेशा जनसमूह द्वारा होना चाहिये|" यह तकनीक कम खर्चीली व उपयुक्त है। अतः तकनीकी को नई दिशा दी जानी चाहिए।

10.8 तृतीय विश्व

तीसरी दुनिया के देशों के निवासियों को सुखी, आरामदायक जीवन स्तर देने के लिए हमें हमारे सम्पूर्ण विकास को नये सिरे से देखना होगा। विकास की इस दौड में गांव एवं शहर के रूप में दो अलग-अलग क्षेत्र है, गांव में 80 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक जनसंख्या रहती है जबकि शहरों में मात्र 15 से 20 प्रतिशत जनसंख्या है। विकास के लिए इस ग्रामीण आबादी को तब तक इन्तजार करना होगा जब तक सम्पूर्ण आबादी का शहरीकरण न हो। परन्तु क्या यह सम्भव है? क्या कोई ओर रास्ता है? हमें उन रास्तों को खोजना होगा जो अधिकांश आबादी को गरीबी, कुपोषण, भुखमरी जैसी समस्याओं से मुक्त कर सके। तृतीय विश्व के देशों को आर्थिक सहायता एवं उपयुक्त तकनीकी हस्तान्तरित की जानी चाहिए।

इस हेतु मध्यवर्ती तकनीकी (Intermediate technology) का विकास एवं हस्तान्तरण आवश्यक है। अधिकांश विकासशील देश गरीबी की चपेट में है उन्हें बाहर निकालने के लिए गांव के बेरोजगार लोगों को पूर्ण रोजगार देना होगा इससे शहरों की ओर पलायन रूकेगा। गाँवों के लिए कृषि आधारित उद्योगों का विकास करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादन प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। गाँवों में कार्य करने हेतु कुछ केन्द्र बनाकर एवं उपयुक्त तकनीकी का प्रयोग कर उत्पादन करना होगा। उत्पादन तकनीकी सरल होनी चाहिए

एवं उत्पादन के लिए स्थानीय संसाधनों का उपयोग हो। विकास का केन्द्र शहर न होकर छोटे कस्बे होने चाहिए। उपयुक्त तकनीकी ;।चचतवचतपंजम ज्मबीदवसवहलद्ध का प्रयोग होना चाहिए।

10.9 मध्यवर्ती तकनीकी

उपयुक्त अथवा मध्यवर्ती तकनीकी क्या है? हम अभी मात्र पूँजी गहन तकनीकी एवं श्रम गहन तकनीकी से परिचित है यद्यपि यह दोनों ही महत्वपूर्ण है परन्तु विकासशील देशों की समस्याओं के लिए उपयुक्त नहीं है। तकनीकी विशेष रूप से आधुनिक तकनीकी से विकसित आधुनिक विश्व अपने आपको तीन संकटों से घिरा हुआ पाता है- प्रथम, मानव प्रकृति अमानवीय तकनीकी के विरूद्ध आन्दोलित होने की होती है, द्वितीय, पारिस्थितकीय तंत्र जैविक परिस्थितियां को पोषित करने के लिए होता है इसमें कुछ दरारें उत्पन्न होने लगती है एवं वह आंशिक रूप से संकटग्रस्त नजर आने लगता है एवं तृतीय, परम्परागत उर्जा स्रोतों के दोहन से उनके निकट भविष्य में समाप्त होने की स्थितियां नजर आने लगती है।

इन तीन संकटों में से कोई एक संकट भी मारक क्षमता रखता है एवं यह कहना मुश्किल है कि कौन से संकट की वजह से तबाही हो सकती है। एक बात स्पष्ट है कि भौतिकवादी एवं भोगवादी संस्कृति पर आधारित सभ्यता का असीमित विस्तार पारिस्थितकीय तंत्र एवं पर्यावरण संतुलन को लम्बे समय तक टिकने नहीं देगा। क्योंकि हर जगह समस्याएं तेजी से बढ़ रही है एवं समाधान नहीं। विश्व में धनी देशों की तुलना में निर्धन देशों की संख्या अधिक है। पिछले 25 वर्षों की विकास गति देखकर यह नही लगता कि विश्व गरीबी से मुक्त हो पाएगा। अतः हमें तकनीकी सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर गम्भीरतापूर्वक तलाशना होगा।

शूमाकर के अनुसार तकनीकी ऐसी होनी चाहिए जिससे मानव की कार्य करने की क्षमता का विकास हो जब कोई मशीन कई व्यक्तियों का कार्य एक साथ करने में सक्षम होती है तो हमें लगता है कि वह मानव को आराम दे सकती है। परन्तु वस्तुस्थिति क्या है? मशीनों के अधिक उपयोग के बावजूद विकसित देशों के निवासी अधिक तनावग्रस्त हैं एवं विकास की पायदान के नीचे खड़े देशों में खुशहाली अधिक है। अतः तकनीकी का चयन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है आधुनिक तकनीकी के उपयोग से एक व्यक्ति कई व्यक्तियों का काम कर लेता है अतः आज विश्व में लगभग 1/6 जनसंख्या ही वास्तविक उत्पादक है एवं अधिकांश जनसंख्या का समय बेकार के कार्यों में व्यय होता है। वास्तविक रूप से उत्पादन से जुड़े व्यक्ति को सामाजिक स्तर पर नीचे की सीढ़ी पर माना जाता है। उत्पादन से जुड़ना एक पीड़ादायी अनुभव माना जाता है जो व्यक्ति को कार्य का आनन्द नहीं देता। अतः हमें तकनीकी को इस प्रकार विकसित करना चाहिए कि अधिकतर समय उत्पादन कार्यों में बीते। कार्य की सृजनात्मकता से कार्य करने का आनन्द एवं सृजन का सुख अनुभव होता है। अतः तकनीकी का चुनाव उपयुक्त होना चाहिए शूमाकर ऐसी तकनीकी को उपयुक्त तकनीकी ;।चचतवचतपंजम ज्मबीदवसवहलद्ध की संज्ञा देता है। महात्मा गाँधी ने कहा था “The poor of the world cannot be helped by mass

production only by production by masses. The system of capital intensive technology, high energy input dependent and human labour saving technology presupposes that you are already rich, for a great deal of capital investment is needed to establish one single work place. The system of production by masses moblise the priceless resources which are possessed by all human beings their clever brains and skillful hands and supports them with first class tools." महात्मा गाँधी उस तकनीकी को मध्यवर्ती तकनीकी का नाम देते है। यह तकनीकी प्राचीन तकनीकी से उन्नत होने के साथ-साथ साधारण एवं सस्ती भी होती है। यह वही तकनीकी है जिसे हम उपयुक्त तकनीकी का नाम भी दे सकते हैं। शूमाकर तकनीकी सम्बन्धी अध्याय के अन्त में लिखते हैं "I have no doubt that it is possible to give a new direction to technological development, a direction that shall lead it back to the real needs of man, and that also means: to actual size of man. Man is samll, and therefore samll is beautiful. To go for gigantism is to go for self destruction." विकासशील देशों में गरीबों की दशा दयनीय है उनकी कार्य सम्भावनाएं इतनी सीमित है कि चाहकर भी अपनी दुर्दशा से पार नहीं पा सकते हैं। वे अर्द्धरोजगार अथवा बेरोजगार होते हैं। कुछ के पास नाममात्र की भूमि है जिस पर काम नहीं है। शहरों में पलायन करने के बाद उनके पास रहने को मकान नहीं होता। बेरोजगारी अथवा छिपी हुयी बेरोजगारी के कारण उनके पास पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं है। यह कहा जाता है कि पूँजी की कमी से उन्हें रोजगार उपलब्ध नहीं कराया जा सकता। परन्तु पूँजी क्या है? यह पूर्व संचित मानव श्रम है। अतः क्यों अतिरिक्त जनसंख्या अतिरिक्त पूँजी उत्पादित नहीं कर सकती। हाँ कम उत्पादकता एक कारण है परन्तु कार्य की कमी को कैसे समझा जाय।

गाँवों में पर्याप्त अवसरों की कमी से ही शहरों में पलायन हो रहा है। अतः विकास शहरों के बजाय गाँवों में होना जरूरी है विशेषकर रोजगार वहां हो जहाँ ज्यादातर व्यक्ति निवास कर रहे हैं। कार्य उत्पन्न करने की लागत कम हो जिससे अधिकाधिक कार्यस्थल विकसित हो सकें। तकनीकी साधारण हो। स्थानीय कच्चेमाल का उपयोग करने वाली तकनीकी का विकास किया जाय। इस प्रकार क्षेत्रीय विकास तकनीकी ही मध्यवर्ती तकनीकी है। यह तकनीकी ही सर्वाधिक उपयुक्त तकनीकी (Appropriate Technology) है।

10.10 सारांश

अर्नस्ट फेड्रिक शूमाकर एक जर्मन विद्वान थे जिनका जन्म 1911 में हुआ। शूमाकर उच्च अध्ययन के लिए इंग्लैण्ड चले गये वहां उन्होंने रोड्स स्कोलर के रूप में ऑक्सफोर्ड में अध्ययन किया। बाद में उन्होंने नौकरी की। 1950-70 के बीच वे ब्रिटिश कोयला बोर्ड के मुख्य आर्थिक सलाहकार रहे। आर्थिक सलाहकार के रूप में वे 1955 में बर्मा गए एवं वहां उन्होंने बुद्धवादी आर्थिक विचारों का अध्ययन किया। इनका मत था कि उत्पादन में स्थानीय संसाधनों का ही उपयोग किया जाना चाहिए एवं आवश्यकताएं स्थानीय आधार पर पूरी करनी चाहिए।

शूमाकर ने अपनी उपयुक्त तकनीकी (Appropriate Technology) की विचारधारा रखी। शूमाकर की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'Small is Beautiful : As if People Mattered' 1973 में प्रकाशित हुई।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. जर्मन विद्वान शूमाकर द्वारा विश्व प्रसिद्ध पुस्तक स्माल इज ब्यूटीफूल में व्यक्त विचारों पर एक लेख लिखिए।
2. शूमाकर द्वारा अर्थशास्त्र की क्या भूमिका बताई गई है? उनके द्वारा बुद्धवादी अर्थशास्त्र की प्रमुख बातों का उल्लेख कीजिए।
3. प्रकृति पर विजय प्राप्त कर उत्पादन की समस्या का हल खोजने वाले पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्तों के विरोध में शूमाकर के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख कीजिए।

4 शान्ति एवं स्थायित्व के बारे में शूमाकर के विचारों की विवेचना कीजिए।

5 शूमाकर का जीवन परिचय दीजिए। उनके मध्यवर्ती तकनीकी, आकार का प्रश्न एवं संसाधनों पर व्यक्त विचारों का उल्लेख कीजिए।

10.12 अभ्यास प्रश्न

1. शूमाकर, स्माल इस बेऔतिफुल : एस इफ पीपुल मेटर्ड, 1973

इकाई – 11

मार्टिन लूथर किंग जूनियर

इकाई रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जीवन परिचय और कार्य

11.3 किंग और महात्मा गाँधी

11.4 सारांश

11.5 अभ्यास प्रश्न

11.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

यह अध्याय किंग की अहिंसा सम्बन्धी विचारों से सम्बन्धित है, जिसके अध्ययन के उपरान्त आप

- किंग के जीवन से परिचित हो पाएंगे,
- किंग की उपलब्धियों को जान पाएंगे, तथा
- किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग को भी समझ पाएंगे।

11.1 प्रस्तावना

नॉबेल पुरस्कार समिति के अध्यक्ष डॉ.गुन्नार जॉन ने डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर की उपलब्धियों को संक्षेप में बताते हुए कहा कि, ‘‘डॉ.किंग पाश्चात्य जगत का पहला ऐसा व्यक्ति है जिसने यह दिखाया कि हिंसा के बिना भी संघर्ष लड़ा जा सकता है।’’

उन दिनों बहुत कम ही लोग थे जिनका इस बात में भी विश्वास था कि गाँधी द्वारा भारत में प्रयुक्त पद्धतियों और रणनीतियों का प्रयोग कर करोड़ों अमेरिकी निग्रो लोगों के लिए न्याय और आजादी सुनिश्चित की जा सकती है। डॉ.किंग ने एक बार अपने दर्शन की व्याख्या करते हुए कहा था कि उनका उग्र अहिंसा की धारणा में विश्वास है जिसमें एक व्यक्ति धरना, कानूनी कार्यवाही, बॉयकोट, मतदान तथा अन्य किसी भी माध्यम का, केवल हिंसा या घृणा को छोड़कर, प्रयोग करते हुए अन्याय की व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा होना है। किंग वह महान हस्ती हैं जिन्होंने अगस्त 28, 1963 को अपना प्रसिद्ध वक्तव्य “मेरा एक सपना है” वाशिन्गटन डी. सी. के लिंकन मैमोरियल में दिया, और पूरे विश्व को झकझोर कर रख दिया। चैतीस वर्ष की उम्र में इस वक्तव्य में उन्होंने नस्ली एकता की बात करते हुए कहा “आज मेरा एक स्वप्न है कि एक दिन छोटे, मासूम श्वेत और अश्वेत बालक भाई, बहिन की तरह एक दूसरे के हाथ थामेंगें। आज मेरा एक स्वप्न है, मेरा एक स्वप्न है कि मेरे चार छोटे बच्चे एक दिन एक ऐसे राष्ट्र में रहेंगे जहाँ पर उन्हे अपने शरीर के रंग के आधार पर नहीं, बल्कि अपने चरित्र के आधार पर नहीं, बल्कि अपने चरित्र के आधार पर पहचाना जाएगा। 1964 को किंग को नोबेल शान्ति पुरस्कार से नवाजा गया, और पैंतीस वर्ष की कम आयु में ऐसे पुरस्कृत होने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे। किंग की हत्या 4 अप्रैल 1968 का मैम्फसीस के लोरेन होटल में कर दी गई और विश्व एक ऐसे महान नेता को खो बैठा जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार के लिये पूर्ण प्रतिबद्धता से अहिंसक साधनों से प्रतिरोध कर एक बेहतर समाज और विश्व की आशा की किरण जगाए हुए थे।

11.2 जीवन परिचय

मार्टिन लुथर किंग जुनियर का जन्म 15 जनवरी, 1929 को एटलांटा, जार्जिया में हुआ था। जब पैदा हुए, तो चारो ओर अन्याय और अत्याचार विद्यमान था। श्वेत बच्चों को अश्वेत बच्चों के साथ खेलने के लिए रोका जाता था, उनकी पहचान उनके चरित्र के आधार पर नही, बल्कि उनके रंग के आधार पर होती थी और काला रंग हीनता का प्रतीक था। नन्हे मार्टिन ने जब अपने चारो ओर ये अन्याय देखा तब प्रण किया कि वे इस अन्याय को एक दिन अन्त करेंगे। उनकी माँ का नाम एलबर्टा, और पिता का नाम मोईकलकिंग था, जिनकी शादी 1926 में हुई थी, और शादी के पश्चात् ये लोग एलबर्टा के पैतृक घर एटलाटा चले गए, जहाँ एलवर्टा के पिता, ए.डी. विलियम्स ने ऐबन्जर बैपटिस्त चर्च को एक छोटे से संघर्षरत चर्च से एक बहुत बड़े चर्च में परिवर्तित कर दिया था। 1931 में अपने श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् माईकल किंग इस गिरजाघर के पादरी बने। इन्होंने भी सफलतापूर्वक इसका संचालन किया और अपना नाम माईकल से बदल कर जर्मन प्रोटेस्टैन्ट धार्मिक नेता मार्दिन लूथर के सम्मान मे मार्टिन लूथर रख लिया। तत्पश्चात् उनके पुत्र, माईकल का भी नाम मार्टिन लूथर किंग जूनियर हो गया।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर की एक बड़ी बहिन विली क्रिस्टीन, और एक छोटा माह एल्फ्रैड डेनियत विलियम्स किंग था। बच्चों का लालन पालन एक बहुत ही सुरक्षित और प्यार भरे वातावरण में हुआ। पिता

अनुशासनप्रिय थे, और उनकी माँ बहुत ही विनम्र और धार्मिक महिला थी, जिन्होंने अपने बच्चों को नैतिक मूल्यों का महत्व समझाया। पिता भेद भाव, नस्लवाद के अत्यधिक विरोधी थी, और मानते थे कि ये ईश्वर की इच्छा का उल्लंघन है। उन्होंने हर कदम पर इस अज्ञाय का विरोध किया, और मार्टिन जूनियर ने भी यही विचारधारा आत्मसांत कर ली और किसी भी प्रकार के पक्षपात, अन्याय और अत्याचार को बर्दाश्त नही किया।

पाँच साल की उम्र में उन्होंने स्कूल में प्रवेश लिया। 1941 में जब वे 12 वर्ष के थे, तो उनकी नानी जैनी जो कि उनके साथ ही रहती थी, उनका अचानक दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। इस हादसे से वे बहुत दुखी हुए, क्योकि वे अपनी नानी के बहुत करीब थे, और वे अपराध बोध से भी पीड़ित थे क्योंकि, जब उनकी मृत्यु हुई तो वे अपनी माँ-बाप की इच्छा के विरूद्ध एक परेड देखने गए हुए थे। इस दुर्घटना ने उनके दिल पर ऐसा असर किया कि उन्होंने घर की दूसरी मंजिल से नीचे छंलाग लगा कर आत्महत्या करने का भी प्रयास किया। उन्होंने कई वर्षों तक इस बात का आभास होता रहा कि माँ-बाप की अवज्ञा के कारण ही उन्हे नानी से बिछुड़ने का दण्ड मिला था।

बुकर की, वाशिंगटन स्कूल में उन्होंने आगे का अध्ययन किया, जहाँ वे एक अति बुदिमान शिष्य माने जाते थे। 15 साल की उम्र में उन्होंने अटलांटा के मोरहाउस कालेज में प्रवेशलिया, जहाँ वे अन्य विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच काफी लोक प्रिय रहे। यद्यपि उनका परिवार चर्च और धर्म से काफी जुड़ा हुआ था, मार्टिन इस दौरान चर्च और धर्म की भावनात्मक को आड़म्बर मानने लगे और इनसे दूर रहने लगें। इसी दौरान उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने पिता और नाना की तरह धर्म के क्षेत्र को अपना व्यवसाय नहीं बनाएगें, प्रथम दो वर्षो मे तो उनके मस्ष्कि में दो विकल्प थे, या तो ड़ाक्टर बनना या वकालत करना, किन्तु इस दौरान मोरहाऊस के अध्यक्ष डा. बैन्जामिन मेज के सान्निध्य में आने से उनके विचारों में परिवर्तन आया। ये किंग के पिताजी के अच्छे मित्र थे, और मार्टिन मे विशेष रूचि दिखाते थे, देखते ही देखते ये उनके आध्यात्मिक गुरू बन गए, और इनके ही प्रभाव के कारण इन्होंने अन्ततः अपने पिता के ही कदमों में धर्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने का निर्णय किया। उनका परिवार, उनका सामाजिक पर्यावरण और उनकी प्रवृति, इन सभी, का योगदान इसमें शामिल था। और 1947 मे 18 वर्ष की उम्र में, एबैन्जर बैपटिस्ट चर्च में वे सहायक पादरी के रूप में स्थापित हुए।

मोरहाउस कालेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त करके वे क्रोज़र में धर्म का अध्ययन करने गए। यहाँ उन्होंने कई श्वेत लोगों से भी मित्रता को और छात्र सब के पहले अश्वेत अध्यक्ष चुने गए। यहां उन्होंने मनोविज्ञान, धर्म, सामाजिक प्रदर्शन का अध्ययन किया, और अरस्तू प्लेटो हीगल, कान्ट, रूजो, मार्टिन लूथर, जान लांक, एडम स्मिथ का तुलनात्मक अध्ययन किया।

इस दौरान, हावार्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष मोरडीकोई जानसन ने अपने भारत दौरे के पश्चात फिलैडैलकिया में महात्मा गाँधी के जीवन और दर्शन पर एक व्याख्यान दिया, जिसको किंग ने भी सुना। इससे पूर्व भी, उन्होंने अपनी क्रोज़र के प्रौकेसर, जार्ज क्रेविस और ए.जे. मस्ट, एक विख्यात विचारक, से गाँधी के बारे में सुना था, किन्तु तब तक उन्हे लगता था कि गाँधी एक आदर्शवादी हैं जिनके विचारों का यथार्थ रूप नही दिया जा सकता है। किन्तु इस व्याख्यान को सुनने के बाद हो आश्वस्त ले गए कि गाँधी एक महान हस्ती थे, जिन्होने बिना हिंसा के अग्रेंज साम्राज्य की नीवं हिला दी थी। उन्होंने गाँधी को जितना अधिक पढ़ा, वे उतने ही आश्वस्त हो गए कि प्यार में वह शक्ति है, जिससे असम्भव भी सम्भव हो सकता है। किन्तु फिर भी उनके मस्तिष्क में यह शंका विद्यमान थी कि गाँधीवादी विचार धारा की सम्मवतः अमरीकी भूमि पर लागू नही किया जा सकता उन्होंने बोस्टन विश्विद्यालय से 1951 में क्रोजर से अच्छे नम्बरो से पास होकर धर्म में डिग्री हासिल कर, बोस्टन विश्वविद्यालय मे पी.एच.डी. के अध्ययन के लिए प्रवेश लिया।

कौरैटा स्कौट, न्यू ईन्गलैन्ड कनसरवेटरी आफ म्यूजिक में संगीत का अध्ययन कर रही थी। जून, 18,1953 को इस अल्बामा की लड़की के साथ वे विवाह के सूत्र में बन्ध गएः और आगे चलकर इनके चार बच्चे हुए। दोनो पढ़ाई के दौरान नौकरी की भी तलाश में थे। किंग को कई स्थानों पर नौकरी मिल भी गई, किन्तु उन्होंने अन्ततः डैक्स्टट एवैन्यू बैपटिस्ट चर्च में पादरी की नौकरी स्वीकारी। कौरैटा यद्यपि दक्षिण नहीं जाना चाहती थी, किन्तु किंग को यकीन था कि इसी चर्च से वे अपना न्याय भाईचारा, समानता का संदेश लोगों तक पहूचा सकते थे। सितम्बर 1954 मे वे डैक्स्टट एवैन्यू वैपटिस्ट चर्च के पूर्ण कालीन पादरी बन गए। 1955 में उनकी पी.एच.डी. पूर्ण हो गई, और जून में उन्होंने उपाधि भी मिल गई। अब वे जीवन के ऐसे मोड़ पर खडे थे, जहाँ से उनका जीवन अब एक नई दिशा पकड़ने वाला था।

मोन्टगोमेरी सिटी बस सेवा रंगभेद की नीति का एक घिनौना उदाहरण था। बसों में अश्वेत लोगो के लिए अलग से बैटने की व्यवस्था थी, और अगर कोई अश्वेत व्यक्ति गल्ती से उस सीट पर बैठ जाए जो कि श्वेत व्यक्ति के लिए आरक्षित थी, तो उसे वह सीट खाली करनी पड़ती थी। यह अन्यायपूर्ण और पक्षपातपूर्ण परम्परा कई वर्षों से विद्यमान थी, किन्तु अश्वेत लोगों ने इसके विरूद्ध आवाज नहीं उठाई थीं। 1954 मे मोन्टगोमेरी में 80 हजार श्वेत नागरिक और 50 हजार अश्वेत नागरिक थे, और श्वेत नागरिक इनका शोषण करते थे। यद्यपि कुछ लोगों ने इस अन्यायपूर्ण स्थिति के विरूद्ध आवाज उठाई थी। किन्तु अधिकतर, इस स्थिति को स्वीकार चुके थे। 1 दिसम्बर 1955 को अधेड ऊम्र की महिला रोजा पार्कस बस में चढ़ी, और सम्मवत यकी होने के कारण, उस सीट पर बैट गई जो कि श्वेत लोगों के लिए आरक्षित थी। जब उनसे उठने के लिए कहा गया, तो उन्होंने उठने से मना कर दिया। इस पर श्वेत लोगों में एक आक्रोश की लहर दौड़ गई। उन्हे बन्दी बनाकर जेल ले जाया गया, और उन्हे दण्डित भी किया गया।

जिस रात रोजा को बन्दी बनाया गया ई. डी. निक्सन, छ।।ब्च् के नेता, मार्टिन लूथर किंग से मिले, और कई अन्य नेताओं ने मिलकर यह निर्णय लिया, कि इन बसों का बहिष्कार किया जाए। मार्टन लूथर किंग को इस के नेतृत्व की डोर सम्भाली गई। इन्होंने इसका विरोध किया, और इस अन्यायपूर्ण बस सेवा के विरूद्ध एक अहिंसक आन्दोलन को आरम्भ करने के बारे मे विचार किया।

यह निश्चय किया गया कि एक दिन के लिए बसों का बहिष्कार किया जाएगा, और सभी अश्वेत लोग, पैदल, साईकिल, घोड़ा गाडी इत्यादि में सफर करेगें, और बस व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से ठप्प हो जाएगी। एक दिन का यह बहिष्कार 382 दिनों तक सफलतापूर्वक चला। जब यह आन्दोलन आरम्भ हुआ, तो कहीं इस बात का उल्लेख नहीं था, कि इस आन्दोलन की प्रेरणा के स्त्रोत, महात्मा गाँधी थे किन्तु इस आन्दोलन के दौरान एक महिला लाईब्रेरियन जूलियट मोगर्ृन ने द मोन्टगोमेरी एडक्टाईज़र के सम्पादक को एक पत्र मे लिखा कि इस प्रकार का आन्दोलन भारत में मोहनदास करमचन्द गाँधी ने आरम्भ किया था। हमने उससे और ध्यरयो से सबक लिया है। किंग ने सुप्तावस्था में पडे मोन्टगोमेरी निवासियों को झकझोड़ के उठाया, और जैसा कि एक लेखक कहते है उन्होंने मोन्टगोमेरी में ‘अहिंसक आन्दोलन का बीजारोपण किया।

बेंजमिन मेय लिखते हैं कि किंग ने एक अद्वितीय मस्तिष्क और सर्मपण भाव पाया था जिसके कारण वे बिलकुल निर्भीक और अहिंसक रह सके। जेल के अन्दर जेल के बाहर, जब उनका परिवार पर हमला हुआ, और जब उन्हे मारने का प्रयास किया, उनमें द्वेष और दुर्भावना थी। किंग के नेतृत्व में यह आन्दोलन काफी सफल रहा, यद्यपि इस दौरान ई. डी. निक्सन और उनके घर पर बम फेंके गए, किन्तु इन्होंने हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं दिया।

इस दौरान मोंटगोमरी इम्परूवमेंट एसोसिएशन की स्थापना हुई और किंग को इसका उध्यक्ष चुना गया, क्योंकि वह विवादस्पद नही थे।

2 दिसम्बर, 1955 को सभी अश्वेत नेतागण Dexter Avenue Baptist चर्च में मिले और 5 दिसम्बर 1955 को एक दिन के बहिष्कार के लिए चुना गया था। सभी समाचारपत्रों ने इस बात का काफी प्रचार किया।

इस दिन मोन्टगोमेरी की नब्ने प्रतिशत अश्वेत जनता ने इस अन्यायपूण बस सेवा का बहिष्कार किया। 5 दिसम्बर शाम को एक मीटिंग मे यह निमार्ण लिया गया कि वे इस बहिष्कार का अभी समाप्त नही करेगें। हजारों की तादाद में जो अश्वेत जनता यहां उपस्थित थी, उनको सम्बोधित करते हुए, किंग मैं यह सभी को बतलाना चाहता हूँ कि हम बसों में इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प हैं। और हम गल्त नही हैं। अगर हम गलत हैं, तो यहां का सर्वोच्च न्यायालय गलत है, संविधान गलत हैं। अगर हम गलत हैं, तो ईश्वर भी गलत है। प्रशासन ने बहिष्कार तोड़ने का काफी प्रयास किया, किन्तु अश्वेत जनता के अदम्य साहस और संकल्प के सामने उन्हे झुकना पडा। कई नेताओं ने इस आन्दोलन में गाँधी के विचारों को बार-बार उदृत किया।

5 जून, 1956 को संघीय जिला न्यायालय ने ब्राउडर बनाम गेल विवाद मे बसो की अन्यायपूर्ण बैठने की व्यवस्था को असवैंधानिक, घोषित कर दिया और नवम्बर 1956 को इस प्रकार के सभी नियमों को संविधान में सामील किया गया।

20 दिसम्बर 1956 को किंग ने इस बहिष्कार के अन्त का आहवान किया 21 दिसम्बर प्रातकाल को, रैल्फ ऐबरनेथी, ई.डी. निकस्न, ग्लैन स्माइली के साथ किंग पहली बार ऐंसी बस में बैठे जिसका आधार अन्याय नही था।

मौन्टगोमेरी में अपनी सफलता के पश्चात् सभी अश्वेत नेताओं को इस बात का आभास हुआ कि अपनी जीत को सुदृढ करने के लिए, और भविष्य में अपनी अन्य मांगों को पूरा करने के लिए उन्हे एक संस्था की आवश्यकता है। अतः जनवरी 1957 में मार्टिन लूथर किंग, रैल्फ ऐबरनैथी और 60 अन्य लोगों ने मिलकर एक संस्था की नींव रखी, जिसको उन्होंने Southern Christian Leadership Conference (SCLC) नाम दिया। इसका उद्धेश्य था कि अहिंसक आन्दोलनो द्वारा अपने अधिकारों के लिए लड़ना।

इस संस्था के आधार पर किंग को एक राष्ट्रीय मंच मिल गया, जिसके माध्यम से वे व्यवस्थित तरीके से अपनी लड़ाई लड़ सके। इन्होंने सर्वसहमति से यह निर्णय किया कि अश्वेत जनता को सर्वप्रथम मताधिकार देने की आवश्यकता है। फरवरी, 1958 में दक्षिण में SCLC ने 20 सम्मेलन किए, जिसके आधार पर उन्होंने अश्वेत जनता को मतदाताओं के रूप में संगठित करने का प्रयास किया।

3 फरवरी 1959 को किंग उनकी पत्नी कौरैटा किंग और लारेन्स रैडिक ने भारत का पाँच सप्ताह का दौरा आरम्भ किया। 10 फरवरी को वे भारत पहुंचे, पालय हवाई अड्डे पर गाँधी स्मारक निधि की सुचेता कृपलानि और जी रामचन्द्रन ने उनका स्वागत किया एक पत्रकारों के झुन्ड को उन्होंने कहा, मैं अन्य देशों में एक सैलानी की तरह जा सकता हूँ, किन्तु भारत मैं एक तीर्थ यात्री की तरह आया हूँ।

इस यात्रा के दौरान वे कई महान हस्तियों से मिले पडित जवाहर लाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णण, जो कि उपराष्ट्रपति थे, आचार्य विनोबाभावे। वे जहाँ भी गए उनका स्वागत हुआ उन्होंने अहिंसा और मौन्टगोमेरी मे उसके प्रयोग पर कई व्याख्यान दिए और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गाँधी की आत्मा भारत में अभी जीवित थी।

उनकी भारत यात्रा ने उनपर अमिट छाप छोडी, और वे गाँधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह को भलीभांति समझ सके। अपनी यात्रा की अन्तिम शाम को एक रेडियो वक्तव्य में उन्होंने कहा, मेरे भारत प्रवास के दौरान में यह समझ चुका हूँ कि एक आक्रान्त जनता के सम्मुख अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए अहिंसा से कोई बेहतर हथियार नही है। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में कुछ नैतिक मूल्यों का समावेश किया जो कि समस्त

ब्रह्माण्ड का आधार हैं। जिस प्रकार हम गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त से बच नहीं सकते उसी प्रकार हम इन मूल्यों से भी नहीं बच सकते।

एबोनी (Ebony) पत्रिका में एक लेख 'My Trip to the Land of Gandhi' (गाँधी के प्रदेश में मेरी यात्रा) में उन्होंने अपनी यात्रा के बारे में विस्तृत वर्णन किया, वे लिखते हैं "जब मोन्टगोमेरी बस आन्दोलन चल रहा था तो मेरे कुछ मित्रों ने मुझे सुझाव दिया था कि मैं भारत जाकर स्वयं देखू कि हमारे दिशा निर्देश करने वाले महात्मा गाँधी ने किस प्रकार भारत में अहिंसा का आन्दोलन छेडा था। व्यक्तिगत तौर पर मुझे इस यात्रा ने काफी प्रभावित किया। गाँधी के देश में कदम रखना, उनके पुत्र, पोतों और अन्य सम्बन्धियों से मिलना एक सुखद अनुभूति थी हिंसा दुर्भावना को जन्म देती है, जो कि आत्मघातक हो सकती है। आज भारत और ब्रिटेन में एक पारस्परिक मित्रता विद्यमान है जो कि सम्पूर्ण समानता पर आधारित है। दोनों राष्ट्रों में कहीं भी कटुता नस्ल नहीं आती हैं।"

भारत से वापिसी के पश्चात् किंग अपने लक्ष्य में और आगे बड़ना चाहते थे और इस दिशा में उनका पहला कदम था मोन्टगोमेरी के डैक्स्टर एवनयू बैप्टिस्त चर्च से त्यागपत्र देकर एटलान्टा वापिस जाना जहाँ SCLC ने अपना कार्यालय खोला था। नवम्बर, 1959 में उन्होंने यह दुखदायी निर्णय लिया। युवाओं द्वारा आन्दोलन दिसम्बर 1959 में, ग्रीन्सबोरो उत्तर कैरोलीना में विद्याथर्यों द्वारा एक अहिंसक आन्दोलन आरम्भ हुआ जो कि दिन ब दिन जोर पकडता गया। धीरे-धीरे ये आन्दोलन दक्षिण के पचास नगरों में पहुचं गया। इस दौरान ये विद्यार्थी शान्तिपूर्ण धरनों पर बैठते थे, और सरकार की हिंसात्मक कार्यवाही का जवाब शान्ति से देते थे। जान लूईस, जो कि आगे जाकर एक प्रमुख नेता बना, के शब्दों में, इस दौरान किंग आते जाते रहते थे और हमारे शान्तिपूर्ण आन्दोलन की प्रशंसा करते थे। यद्यपि किंग ने यह आन्दोलन आरम्भ नहीं किया था, किन्तु इस आन्दोलन ने उनका प्रभाव अत्यधिक था 1 अप्रैल,1960 में Student Non Violent Coordinating Committee (SNVCC) की नीव रखी गई| इन युवाओं को किंग के प्रति बहुत लगाव और विश्वास था। किंग धीरे-धीरे युवा वर्ग के प्रतीक बन गए, ओर उनके प्रेरणा के स्रोत भी। इस अहिंसक आन्दोलन जिसमें धरने, स्वतन्त्रता, सवारियां (Freedom Rides) शामिल थे, यह बात साबित कर दी, कि अगर आन्दोलन और व्यवस्थित होता तो यह और प्रभावशाली हो सकता था। 1963 तक स्वतन्त्रता अब अश्वेत लोगों का नारा बन गया, और नरमिंगहैम, अलावामा उनका युद्ध क्षेत्र बन गया। बरमिंगहैम, अलावामा, उनका युद्ध क्षेत्र बन गया। बरमिगहैंम का अश्वेत व्यक्ति हिंसक प्रवृत्ति का था, और हर अश्वेत परिवार के पास हथियार थे। उन्हे श्वेत व्यक्तियों द्वारा मारा जा रहा था, और उनका यह विचार था कि हिंसा का जवाब हिंसा द्वारा ही दिया जाना चाहिए।

फ्रेड़, शटलज़वर्थ ने बरमिंगहैम में थियोफिलियस यूजीन (बुल) कौनौर, पुलिस कमिश्नर, जो कि अत्याचार का दूसरा नाम था, से अहिंसा के आधार पर लड़ने का बेड़ा उठाया। शटलजवर्थ एक पादरी था, जिसने मानव

अधिकारों के लिए बरमिगहैंम में बहुतकाम किया। उसने किंग को अपने आन्दोलन की बागडोर सम्मालने के लिए बरमिंगहैम बुलाया प्रशासन ने किंग को आन्दोलन से दूर रखने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहें। 3 अप्रेल,1963 को किंग ने बारमिगंहैम में अपना आन्दोलन आरम्भ कर दिया, किन्तु 12 अप्रेल,1963 को बन्दी बना कर उन्हे एकाकी कारावास में रखा गया।

Letter from Birmingham Jail (बरमिगंहैम कारा गृह से लिखा हुआ किंग का पत्र) अप्रैल 16, 1963 में लिखा हुआ उनका पत्र अहिंसा की एक मुखर अपील है। इसका उल्लेख करते हुए एक लेखक लिखते है: ‘‘अमेरीकी इतिहास का एक अति महत्वपूर्ण प्रलेख किंग का बरमिंगहैम कारागृह से लिखा हुआ पत्र है। इसकी तुलना लिंकन के गैटिसबर्ग सम्बोधन से ड्रेकस के पक्ष मे लिखे गए ऐमिली जौला के पत्र से, और जॉन.एफ. कैन्निडी के उद्घाटन भाषण से की गई है जेल की चारदीवारों में उन्होंने ये पत्र समाचार पत्रों के हाशियों पर लिखा, और अश्वेत लोगों की समस्या को सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख पेशकरना चाहा।’’

बरमिंगहैम न्यूज में आठ पादरियों ने किंग के विद्रोह आन्दोलन को ‘उग्र और अनौचित्यपूर्ण’ बताया। इन पादरियों ने अश्वेत लोगों से कहा कि वे अपनी मांगो की लड़ाई को न्यायालयों में सुलझाने का प्रयास करे, न कि सड़को पर। उन्होंने यह भी आक्षेप लगाया कि बरमिंगहैम मे आकार ‘बाहरी तत्वों’ ने आन्दोलन छेड़ा है जो कि ‘असामाजिक और गलत है’।

इस पत्र में किंग के सत्य और अहिंसा पर लिखे गए लेखों और वक्तव्यों का सम्मिश्रण पाया जाता है। सात हजार शब्दो का यह पत्र चोरी-छिपे जेल से बाहर निकाला गया था, और शीघ्र ही कई राष्ट्रीय समाचारपत्रों में छप गया, हजारों की मात्रा में इस पत्र की प्रतियां गिरिजाघरों में पहुँच गई। बाद में यह पत्र उनकी पुस्तक ‘Why We Can’t Wait’ (हम प्रतीक्षा क्यों नहीं कर सकते) का हिस्सा बन गया।

इस पत्र के माध्यम से वह अपने आलोचकों को शान्त करना चाहते था, और कई महत्वपूर्ण सवालों का उत्तर भी देना चाहते थे। उन पर पादरियों ने यह आक्षेप लगाया कि एक एटलांटा का निवासी बरमिंगहैम में एक आन्दोलन का नेतृत्व कैसे कर सकता है। किंग और उनके अनुयायियों से यह कहा गया कि वे सब्र से अपने अधिकारों की प्रतीक्षा क्यों नही करते और विद्रोह के माध्यम से समाज की शान्ति क्यों भंग कर रहे हैं?

इस पत्र के माध्यम से वे विश्व भ्रातृत्व की बात करते हैं, और अपने अहिंसक आन्दोलन का औचित्य सिद्ध करते हैं। वे लिखते है।

‘‘हम आशा करते है कि शीघ्र ही नफरत, ईर्ष्या, द्वेष के काले बादल छट जाएंगे, हमारे समुदाय से भय का गहरा कोहरा समाप्त हो जाएगा और भविष्य में प्रेम और भ्रातृत्व के सितारे हमारे महान राष्ट्र के ऊपर अपनी चमचमाती हुई खूबसूरती बिखेरेंगें।

उनकी ये कहकर आलोचना की गई कि इनके आन्दोलन के कारण हिंसा भडकी, अतः यह एक अनुचित, अनौचित्यपूर्ण और असामाजिक आन्दोलन था।

इस पत्र के माध्यम से उनहोंने ये इच्छा व्यक्त की है कि वे लोग जो उनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं, वे अपने में सुधार लाएगें, और उस नैतिक प्रकाश का संज्ञान प्राप्त करेंगें, जिसके फलस्वरूप अश्वेत लोग अन्याय की खाई में फिर से नहीं गिरेंगे।

यद्यपि श्वेत लोगों का दृष्टिकोण उनके प्रति अन्यायपूर्ण और घृणापूर्ण था, किन्ह फिर भी उनके दिल में उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। पत्र में उन्होंने यह बार-बार दोहराया कि वे एक दिन अवश्य आएगा जब ये लोग उन व्यक्यिों की इच्छाओं और कराहों को समझेंगे।

उनके अहिंसक आन्दोलन द्वारा हिंसा भड़की इस आक्षेप के उत्तर में वे तब देते हैं ये तो ऐसा हुआ जैसे एक ऐसे व्यक्ति की आलोचना की जाए, जिसके घर में चोरी हुई है, क्योंकि उसकी सम्पति ने चोर की चोरी के लिए प्रेरित किया, था सुकरात की आलोचना इसलिए करना, क्योंकि उसके सत्य के प्रति समर्पण ने एक ऐसी नकारात्मक मानसिकता को जन्म दिया, जिसने सुकरात को जहर पीन के लिए प्रेरित किया। यह एक तथ्य है कि अगर अश्वेत लोगों को इस प्रकार अंहिसात्मक तरीको से प्रदर्शन करने से रोका गया तो इसके परिणाम घातक होंगें। अहिंसा के दर्शन का जन्म नही होता तो अब तक दक्षिण की सड़के खून से रंगी होती, और डागर हमारे अहिंसक आन्दोलन को समर्थन नहीं मिलता है तो नस्लवाद का एक दुःखद स्वप्न आवश्यम्भावी होतो 'मैं कोई बाहरी तत्व नहीं हूँ। और मैं यह भली-भांति जानता हूँ कि सभी सम्प्रदाय एकता के सूत्र में बंधे हुए है। मैं ऐटलान्टा में हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठ सकता अगर बरमिंगहैम में अन्याय हो रहा हो। और अपनी प्रसिद्ध पंक्ति में वे कहते है किसी भी स्थान पर अन्याय, किसी अन्य स्थान पर न्याय पर कुठाराघात होगा।

उनके सम्पूर्ण पत्र में मानवता के प्रति उनका प्रेम झलकता है। यह पत्र महान पत्रों की श्रृखंला में शामिल है और बहुत ही सुन्दर, सशक्त शब्दों में अहिंसा, प्रेम और विश्व बन्धुत्व पर प्रकाश डालता है।

वे ये भी कहते हैं कि बरमिंगहैम में उन्होंने जो आन्दोलन आरम्भ किया वह तीन कदमों के पश्चात लिया गया उनकी चैथा और अन्तिम विकल्प था।

(1) तथ्यों का संकलन जिसके आधार पर स्थिति की वास्तविकता को आंका जा सके।

(2) वार्ताएँ।

(3) आत्म-शुद्धि।

(4) बहिष्कार, सविनय अवज्ञा।

महात्मा गाँधी की ही तरह, किंग यह मानते थे कि कोई भी आन्दोलन तब तक सफल नही हो सकता, जब तक गम्भीर अन्याय के बारे में तथ्य एकत्रित न किए गए हों। बरमिंगहैम मे आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने अन्याय के बारे में काफी तथ्य एकत्रित कर लिए थे, और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि यहां पर नस्लवाद के क्षेत्र में अन्याय अपनी चरम सीमा पर था।

आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व उन्होंने बाताए भी करनी चाहि थी जो कि विफल हो गई थी। गाँधी की ही तरह वे मानते थे कि जब तक आन्दोलनकारी सम्पूर्ण रूप से आत्म शुद्धि नहीं करते और आक्रान्ता के प्रति द्वेष, दुर्भावना और नफरत के भावों का उन्मूलन नहीं करते, तब तक यह सम्भावना बनी रहेगी कि आन्दोलन में हिंसा भड़क जाए।

यद्यपि यह पत्र 1963 में लिखा गया था किन्तु इसका महत्व सर्वकालिक है। जब तक साम्प्रदायिकता और हिंसा विद्यमान रहेगी, जब तक अन्याय जीवित रहेगा। तब तक इस पत्र की सार्थकता भी रहेगी।

भारत की स्वाधीनता से कुछ सप्ताह पूर्व पटेल और नेहरू का एक दूत, कोलकटा गया, जहाँ गाँधीजी हिन्दु और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक सद्भाव और शान्ति बनाने का प्रयास कर रहे थे। इस पत्रवाहक के पास गाँधीजी के लिए पटेल और नेहरू द्वारा भेजा गया एक पत्र था, जिसमें लिखा था, “बापू आप राष्ट्रपिता हैं 15 अगस्त 1947 भारत का प्रथम स्वतन्त्रता दिवस होगा। हमारी इच्छा है कि आप दिल्ली आकर हमें आर्शीवाद दें।” गाँधीजी की प्रतिक्रिया थी, “जब पश्चिम बंगाल जल रहा है हिन्दु, मुस्लिम एक दुसरे को मार-काट रहें है, और कोलकत्ता के अंधकार में मैं उनकी चीत्कारें सुन सकता हूं तो मैं दिल्ली की चकाचौंध करने वाली रोशनी को कैसे सहन कर पाहुगां। मुझे बंगाल में शान्ति स्थापित करने के लिए रहना पड़ेगा और अगर आवश्यकता पडी तो शान्ति स्थापित करने के लिए जान भी देनी पड़ेगी।”

इस महान पत्र में किंग ने अमरीका में वही भाषा बोली जो महात्मा गाँधी ने भारत में बोली थी। सत्य, अहिंसा, धार्मिक सहिष्णुता, और भ्रातृत्व दोनो की ही विचारधारा का अभिन अंग था। किंग ने अक्सर इस बात पर जोर दिया कि वे किसी भी कीमत पर भ्रातृत्व से कम कोई भी बात नहीं स्वीकारेंगे।

अपने पत्र में अहिंसा के दर्शन की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं मैं बरमिंगहैम में इसलिए हूं क्योंकि यहां पर अन्याय विद्यमान हैं। मैं स्वतन्त्रता का सन्देश पूरे विश्व मे फैलाना चाहता हूं।

नागरिक अधिकारों की लड़ाई के इतिहास का सबसे बड़ा आन्दोलन “नौकरियों और स्वतन्त्रता के लिए वाशिंगटन की ओर कूच, अगस्त, 28,1963” था, जिसमें 250,000 यात्रियों ने भाग लिया, जिसमें 60,000 श्वेत यात्री भी शामिल थे। वाईट हाउस में किंग और उनके साथियों ने राष्ट्रपति कैनेडी से मुलाकात की इस आन्दोलन के दौरान किंग ने लिंकन मैमोरियल पर अपना, प्रसिद्ध वक्तव्य ‘I have a Dream’ (मेरा एक सपना

है) दिया। यह विरोध, जिसमें हंसते गाते हुए श्वेत सश्वेत लोगों ने स्वतन्त्रता और अधिकारो की मांग की, अहिंसात्मक साधनों की बहुत बड़ी सफलता थी। इस आन्दोलन ने किंग को अन्तराष्ट्रीय मंच पर लाकर खड़ा कर दिया, और अश्वेत लोगों को अपनी लड़ाई का और तीव्र करने के लिए प्रेरित किया।

किन्तु इस दौरान दो दुःखद घटनाएं हुई जिन्होंने सभी को झकझोर के रख दिया| सितम्बर 15, 1963 को बरमिगहैंम के सिक्सटीन्थ एवैन्यू बैपटिस्त चर्च में एक बम फेंका गया जिसमें चार छोटी लड़कियां मारी गई। नवम्बर 22, 1963 को डालाज, टक्सोस ने राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या कर दी गई। किंग ने पत्रकारों से कहा, "हमारे राष्ट्रपति की मौत एक अनैतिक पर्यावरण की देन है। यह पर्यावरण नफरत, झुठे आक्षेपी, हिंसा से लिप्त है। लोग अपनी असहमति हिंसा और हत्या से जताते हैं।"

अपनी पत्नी कौरैटा से उन्होंने कहा कि "सम्भवत यही हश्र उनका भी होगा। वे भी शायद चालीस की उम्र पार न कर पाएं।" एक सप्ताह पश्चात जब लिन्डन जानसन ने राष्ट्रपति पद की बाग डोर सम्माली तो जानसन ने कहा कि कैनेडी की याद में कोई भी भाषण इतना मुखर नहीं हो सकता, जितना कि नागरिक अधिकार अधिनियम (जिसके पारित होने के लिए वे कृत सकल्प थे) का शीघ्रतम पारित होना था।

2 जुलाई, 1964 को किंग और उनके सहयोगियो ने वह दृश्य देखा जब राष्ट्रपति जानसन ने नागरिक अधिकार अधिनियम पर अपने हस्ताक्षर किए।

10 दिसम्बर, 1964 को किंग को नोबेल शान्ति पुरस्कार से नवाजा गया और पैंतीस वर्ष की कम आयु में ऐसे पुरस्कृत होने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे।

किंग की यह धारणा थी की अश्वेत लोगों की सबसे बड़ी जीत तब होगी जब उन्हें मताधिकार दिया जाएगा। इस अधिकार के प्राप्त होते ही वे अपने भविष्य के निर्माता स्वयं बन जांएगे। 1965 की शुरूआत SCLC ने सैल्या, अलाबामा में मतदाताओं के पंजीकरण से की। यहां पर 15,000 अश्वेत लोग थे, किन्तु केवल 350 ही पंजीकृत मतदाता थे। 2 फरवरी को यह आन्दोलन आरम्भ हुआ, इससे पूर्व SNCC ने मतदाताओं का पंजीकरण करने का प्रयास किया था, किन्तु प्रशासन ने इनसे बड़ा अपमानजनक व्यवहार किया।यद्यपि इन्होंने बहुत शान्तिपूर्ण तरीके से यह आन्दोलन किया, इन्हे निकृष्ट कोटि की मानवता की संज्ञा दी गई।

9 फरवरी को किंग राष्ट्रपति जानसन से इस सम्बन्ध में मिले। 18 फरवरी को आन्दोलनकारीयों पर मैरियन शहर में कुछ श्वेत लोगों ने हमला कर दिया। 21 फरवरी को मैल्कोल्य की हत्या हुई, और तीन अश्वेत लोगों को उसकी हत्या के आरोप में बन्दी बनाया गया है। 7 मार्च को आन्दोलनकारी जब एडमन्ड पैप्स ब्रिज को पार करना चाहते है, तो पुलिसकर्मी उनकी पिटाई कर देते है। इस पिटाई का समाचार पत्रों में विस्तृत वर्णन हुआ। 6 अगस्त, 1965 को राष्ट्रपति जानसन 1965 के मताधिकार अधिनियम पर हस्ताक्षर करते हैं। इस आन्दोलन के

दौरान तीन बार यह माच हुआ, ओर तीसरी बार सफल हुआ। 24 मार्च 1965 को जब ये आन्दोलनकारी सैल्या से मोन्टगोमेरी पहुंचे, तो किंग ने 25,000 लोगों को सम्बोधित किया जिसमें कई महान हस्तिया शामिल थीं।

जिस प्रकार बरमिगहैंम ने 1964 का नागरिक अधिकार अधिनियम अश्वेत लोगों को दिया, असी प्रकार सल्या आन्दोलन की सफलता 1965 का मताधिकार कानून था। और ये सब परिणाम था किंग और उनकी अहिंसक नीति का।

अब किंग ने अपना ध्यान उत्तर की ओर लगाया, जहाँ मताधिकार कानून बनने के पांच दिन पश्चात ही वाटॅस (लास ऐन्जीलीज कैरोलीना) में हिंसा भड़क उठी। 17 अगस्त 1965 को किंग यहां पहुंचे और उन्होंने इस हिंसा की आलोचना की। अब उन्होंने अपने आन्दोलन का क्षेत्र शिकागों चुना, यहां उन्होंने एक मकान किराए पर लिया, और फरवरी 1966 से इसी मकान से, जो कि झोपडपटियों का ही एक हिस्सा था, उन्होंने गरीबी उन्मूलन की महिम छेड़ दी। कन्तु उनका यह आर्थिक आन्दोलन सीमित रूप से ही सफलहुआ अब उनका ध्यान वियतनाम युद्ध की ओर गयां।

महात्मा गाँधी की ही तरह, किंग ने युद्ध की आलोचना की थी, और अपनी मृत्यु से एक साल पहले उनकी विचार धारा में कुछ परिवर्तन नजर आता है। वे नागरिक अधिकारों से मानव अधिकारों की ओर बड़ते नजर आते हैं और वियतनाम युद्ध की आलोचना करते हुए कहते है कि “ये पागलपन किसी भी तरह समाप्त होना चाहिए।” अप्रैल 4, 1967 को रिवरसाईड चर्च में उनहोंने वियतनाम युद्ध के विरूद्ध अपने विचार व्यक्त किए थे और कुछ समालोचक कहते हैं कि उनका यह भाषण ‘I have a Dream’ (मेरा एक सपना है) से भी अच्छा था। उन्होंने इस भाषण में कहा, “इस युद्ध को समाप्त करने में भी हमें ही पहल करनी होगी। इस युद्ध में हमने नापाम द्वारा मानव जाति को जलया है, राष्ट्र को विधवाओं और बेसहाराओं से भर दिया है, लोगों की नसों में नफरत और विष घोल दिया है। इस सबको हम बुद्धिमता, न्याय और प्रेम के साथ सामंजस्य नहीं कर सकते।” वियतनाम युद्ध की आलोचना करने के कारण अमेरिका की सकरकार ने उनपर आरोप लगाया की वे साम्यवादी की ओर झुक रहें हैं।

नवम्बर 27, 1967 को उन्होंने ये घोषणा की वे 22 अप्रैल 1968 को गरीब लोगों की एक पैदल यात्रा वाशिंगटन तक ले जाएगें, जिसमें हर नस्ल और जाति के निर्धन लोग शामिल होंगे। इसके द्वारा वे राजधानी की सम्पूर्ण कार्यवाही तब तक ठप करना चाहते थे जब तक उनकी मांगे न स्वीकारी जाती। किन्तु इससे पहले ही 4 अप्रैल 1968 को मैम्फसीस के लोरेन होटल में उनकी हत्या हो जाती है। जेम्स अर्ल रे को पकड़ा जाता है और अन्ततः उसे 99 वर्षो की जेल हो जाती है। उनके मौत के समाचार ने पूरे राष्ट्र को झकझोर कर रख दिया। पूरे राष्ट्र में हिसा की आग भड़क गई। यह एक क्रूर विडम्बना थी कि एक अहिंसा के पुजारी की मौत ने पूरे राष्ट्र को हिंसा की आग में झौंक दिया।

जिस व्यक्ति ने अपने अन्तिम भाषण में कहा था, या तो अहिंसा होगी या हमारा अस्तित्व होगा, उसका राष्ट्र ऐसा लगता था मानो अस्तित्व हीनता की ओर बड रहा हो। राष्ट्रपति जानसन ने उनकी हत्या के एक दिन पश्चात कहा, “ किंग का सपना उनकी मौत के पश्चात समाप्त नहीं हूआ है। श्वेत और अश्वेत दोनों ही इस प्रकार एकता के सूत्र में बंधेगे जैसे कि पहले कभी नही बन्धे है और पूरे विश्व को बताएंगे कि अब अमरीका का शासन बन्दूक से नहीं बल्कि स्वतन्त्र और न्यायपूर्ण व्यक्तियों के मत से होगा।

जिस प्रकार महात्मा गाँधी ने अपनी अहिंसा और सत्य की विचार धारा से भारत को स्वतन्त्रता दिलाई, उसी प्रकार किंग, ने उसी विचारधारा से अमेंरिका के चेहरे को बदल कर रख दिया, मोन्टगोमेरी से मैम्फिस की उनकी यात्रा में उन्होंने हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा से दिया, और नफरत का प्रेम से। उनके अथक प्रयासों से अश्वेत लोगों का समानता का दर्जा मिला, मताधिकार मिला, और उन्ही के प्रयासों के फलस्वरूप अमेरीका को बैरैक ओबामा के रूप में एक अश्वेत राष्टपति।

11.3 किंग और महात्मा गाँधी

1961 में प्रसिद्ध भारतीय लेखक वेद मेहता ने भविष्यवाणी की थी कि जब बीसवी शताब्दी का अन्त होगा, तो गाँधी और किंग को हमारे समय के दो अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्तियों का दर्जा दिया जाएगा। निःसन्देह आज के वातावरण में हम जहाँ चारो ओर नजर घुमाते हैं तो हम हिंसा का नग्न प्रदर्शन देखते हैं| ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावना का बोलबाला देखते है तो हमें इन दोनो महान हस्थियों के शब्द याद आते है।

मोन्टगोमेरी बस बहिष्कार के आरम्भ होने से पहले, उन्होंने एक सम्मेलन में कहा था, प्रेम हमारा नियन्त्रक आदर्श होना चाहिए। एक बार फिर हमें ईसा मसीह के शब्द सुनाई देने चाहिए, “अपने शत्रुओं से प्रेम करो, जो तुम्हे गाली दे, उसको आर्शीवाद दो और उनके लिए प्रार्थना करो जो तुम्हारे प्रति तिरस्कारपूर्ण नजरिया रखते हैं।” किंग मात्मा गाँधी की ही तरह, कथनी और करनी में कोई भेद नहीं करते थे। 30 जनवीर, 1956 को जब वे एक सम्मेलन में थे तो उनके घर पर एक बम फेंका गया था, जिसमें उनकी पत्नी और मासूम बच्ची बाल-बाल बचे थे। पन्द्रह मिनट पश्चात जब वे घर पहुंचे तो उन्होंने पाया कि उनका सारा घर आक्रोशित अश्वेत समर्थकों से घिरा हुआ है, जो कि इस घिनौनी हरकत के लिए बदला चाहते थें। यद्यपि उनके परिवार को मारने की कोशिश की गई थी। किन्तु इस महान हस्ती ने क्रोधित जनता को शान्त करने के लिए कुछ शब्द कहे जिन्होंने, उनके जीवनी लेखक, लैरौन बैनेट जूनियर के अनुसार, किंग को अहिंसा का एक जीता जागता प्रतीक बना दिया। किन्तु इस घटना के बाद अभी भी वे पूरी तरह से गाँधीवादी नहीं बन पाए थे, क्योंकि उस रात को ‘वे बिस्तर पर पडे हुए नफरत और बदले की आग में जलते रहे और सुबह उठते ही पिस्तौल खरीदने चले गए|’ किन्तु तब तक उन्होंने अपने आप को विश्वास दिला दिया था कि आत्म-रक्षा में आक्रमण करना भी गलत है। जैसा कि लैरौन बैनेट जूनियर कहते हैं, कहीं किसी कोने में, उनके मस्तिष्क में गाँधीवादी का जो बीजारोपण 1950 में उनकी

पुस्तके पढने से हुआ था, अभी भी विद्यमान था। सत्य यह था कि किंग ने अपने आपको विश्वास दिलाया, और अपने आप को विश्वास दिलाते हुए, अहिंसा और क्षमा का पाठ अन्य लोगों को भी पढ़ाया। सितम्बर 20, 1958 के एक चालीस वर्षीय अश्वेत महिला, आईजोला बरी ने उनको तब मारने का प्रयास किया, जब वे अपनी पुस्तक 'Stride Toward Freedom : The Montgomery Story' की प्रतियों पर हस्ताक्षर कर रहे थे। इस हमले में वे बाल-बाल बचे और हस्तपताल में बेहोशी की हालत में उन्होंने अपनी पत्नी, कोरेटा से कहा, "इस महिला को सहायता की आवश्यकता है। यह हिंसा के लिए उत्तरदायी नहीं है। इसको दण्डित नहीं करवाओं, बल्कि इसका इलाज करवाओ। यद्यपि इस महिला ने उन्हें मारने का प्रयास किया था, किन्तु उन्होंने उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखी और जब उसे मानसिक रोग के उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया, तो उन्होंने आराम की सांस ली।

किंग की यह धारणा थी कि प्रेम वह मूल्य है जो कि हमें अपने शुत्र और मित्र दोनों के प्रति रखना चाहिए। जब वे Crozer Theological Seminary में अध्ययनरत थे तो उनहोंने नीत्शे के विचारों को अध्ययन कया। नीत्शे ने क्रिस्श्च्यन धर्म को कमजोर धर्म की संज्ञा दी थी, क्योंकि वह क्षमा भाव की बात करता है, और प्यार से व्यक्ति की अशक्त कर देता है। नीत्शे के विचारों के अध्ययन से उन्हे ऐसा लगने लगा था, मानो, प्रेम की भावना से कोई समस्या नही सुलझ सकती। किन्तु इस भावनात्मक और बौद्धिक उधेडबुन के दौर में, हावर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष Mordecal Johnson के एक भाषण ने उनके सारे भ्रम और शंकाए समाप्त कर दी। ये भाषण महात्मा गाँधी और उनके विचारों पर था, और इस ओजस्वी भाषण से वे इतना प्रभावित हुए की उन्होंने तत्काल गाँधी पर कई पुस्तके खरीद ली। इस भाषण ने उन्हे आभास दिलाया कि प्रेम अशक्त का हथियार नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी शक्ति है जिससे समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है।

किंग ने बाद में अपनी पुस्तक में लिखा सम्भवतः "गाँधी वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ईसा मसीह की प्रेम की नीति को केवल मात्र व्यक्तिगत अन्तक्रिया से ऊपर उठाया और उसे एक सशक्त सामाजिक साधन बनाकर एक वृहद क्षेत्र में लागू किया। 1967 को रिवरसाईड चर्च के एक भाषण में उन्होंने कहा: हम बुराई का जवाब अच्छाई से देगें। हम अपने शत्रु से प्रेम करेंगे। ईसा मसीह ने हमें यह राह दिखाई, और गाँधी ने दर्शाया कि इसका सार्थक प्रयोग हो सकता है।" गाँधी मानते थे कि अगर हम केवल उसे प्रेम करें जो कि हमारा मित्र है, तो हम अहिंसम नहीं है। अहिंसा का वास्तविक अर्थ यही है कि हम उसे भी वैसा ही प्रेम दिखाएं जो हमारे प्रति द्वेष और दुर्भावना का भाव रखता है। 1928 में ल्वन्छळ प्छक्प्। में गाँधी ने लिखा था कि चालीस वर्षों के अथक प्रार्थनाओं से सम्पूर्ण अनुशासन के आधार पर वे यह कह सकते थे कि वे अब किसी से नफरत नहीं करते।

किंग अपने आपको गाँधी का ऋणी मानते थे क्योंकि गाँधी का अध्ययन करने के पश्चात ही उन्हे इस बात का आभास हुआ कि: प्रेम की ईसाई धारणा, गाँधीजी की अहिंसा की तकनीक के माध्यम से काम करती हुई एक ऐसी सशक्त शक्ति बन जाती है, जिसके प्रयोग से आक्रान्त समाज अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ सकता है।

गाँधी की ही तरह उन श्वेत लोगों की भी प्रशंसा प्राप्त की जिन्होंने उनसे दुव्र्यवहार किया था। आन्दोलन के दौरान उन्होंने कई बार गाँधी के प्रभाव का उल्लेख किया, और उनकी मौत के पश्चात, उनके मित्र और हमराज, रैल्फ एबरनैथी ने उन्हे एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि उन्हे स्वर्ग में कई व्यक्तियों से अवश्य मिलने का प्रयास करना चाहिए। उनके शब्दों में "महात्मा गाँधी को ढूंढना क्योंकि उन्होंने हमारे आन्दोलन को प्ररित किया, अपनी अहिंसा की तकनीक द्वारा उन्होंने इमें स्वतन्त्र होने की राह दिखाई।

उनका अहिंसा का दर्शन गाँधी और ईसा मसीह के विचारों का संगम था। प्रेम का मार्गदर्शक ईसा मसीह का सर्मन ऑफ द माउन्ट था, और गाँधी ने अहिंसक आन्दोलन क दिशा दिखाई। गाँधी की डांडी यात्रा से वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और सत्याग्रह को उन्होंने अपने आन्दोलन का आधार बनाया था। अश्वेत लोगों के प्रति श्वेत लोगों ने बहुत अपमानजनक दृष्टिकोण अपनाया था, उनपर कई अत्याचार ढाए थे: कोलाआयको के शब्दों में, "मताधिकार से वंचित, अन्यायपूर्ण व्यवस्थापिकाओं से पीड़ित, न्यायपालिकाओं के शनैःवाद से, दुखी और संघीय सरकार से तिरस्कृत अश्वेत जनता को एक ऐसे राह की तलाश थी, जिसपर चलकर सुधारों और नस्लीय न्याय में सामंजस्य बै. सकता जिस व्यक्ति ने उन्हे यह राह दिखाई, वह मार्टिन लूथरकिंग जूनियर था, और उन्होंने जो राह दिखाई वह अहिंसा और प्रेम की राह थी।

अपने एक भाषण 'सम्पूर्ण जीवन के तीन आयाम' में किंग ने लोक कल्याण के पहलू पर जोर दिया| उनके अनुसार, एक सम्पूर्ण जीवन के तीन पहलू लम्बाई,चैडाई और ऊचाई हैं, जो निम्नानुसार हैं:-

लम्बाई - जीवन की लम्बाई का अर्थ है, एक व्यक्ति का अपने कल्याण के प्रति सर्मपण। उन्होंने कहा अपने आप को प्रेम करो, अगर यह तार्किक और स्वस्थ्य आत्म-प्रेम है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि व्यक्ति इतना आत्म केन्द्रित हो जाए कि सामाजिक पहलू ही भूज जाए।

चैड़ाई - सम्पूर्ण जीवन के लिए आवश्यक है कि किस प्रकार व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर, समाज कल्याण की बात के बारे में विचार करे, समस्त मानवता के बारे में महसूस करे।

ऊचांई - इस प्रेम के आधार पर व्यक्ति ईश्वर तक पहुँचता है, जो कि समस्त यर्थाथ का स्त्रोत है। इसलिए उन्होंने सभी को कहा कि अपने समस्त मस्तिष्क और आत्मा से ईश्वर को प्रेम करों। दिसम्बर 11, 1964, के अपने नोबेल अभिभाषण में उन्होंने कहा कि नफरत की राह आत्म-घातक है। इतिहास उन राष्ट्रों के मलबों से भरा हुआ है जिन्होंने नफरत की आवश्यक राह को चुना। प्यार में वह शक्ति है जो कि शत्रुओं का मित्रों में तब्दील कर सकता है, जबकि नफरत से उस व्यक्ति का व्यक्तित्व विकृत हो सकता है और आत्मा दूषित हो सकती है। दोनो गाँधी और किंग यह मानते थे कि कोई व्यक्ति कितना भी नीचे गिर जाए, प्यार में वह शक्ति है कि उसे ऊपर उठाया जा सकता है।

बर्मिंगहैंम आन्दोलन के दौरान हर कार्यकर्ता को एक समर्पण कार्ड पर हस्ताक्षर करने होते थे। उसमें एक दिशा निर्देश था - प्यार की भाषा में चलो, प्यार की भाषा बोलो, क्योंकि, प्यार ही ईश्वर है।" 2 मार्च,1930 को सविनय अवज्ञा आन्दोनल आरम्भ करने से पहले महात्मा गाँधी ने वायसराय लोर्ड इरविन को एक पत्र में लिखा था। "मैं किसी भी जीवित प्राणी से नुक्सान नहीं पहुँचा सकता, विशेष कर मानव जाति को, अगर वे मुझे कितना भी नुक्सान पहुँचाए तोन्मी-मेरी महत्वांकाक्षा केवल यहां तक है कि मै अहिंसा से आप सभी का हृदय परिवर्तन कर दूँ।

1930 में, डांडी यात्रा के दौरान जब गाँधी और उनके समर्थकों ने नमक कानून तोड़ा तो ब्रिटिश शासकों ने हिंसा का सहारा लेकर यह अहिंसक आन्दोलन तोडना चाहा, किन्तु गाँधी और उसके समर्थकों ने अपनी ओर से हिंसा का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया।

12 दिसम्बर 1955 को दी मोन्टगोमेरी एडर्वटाईजर में जूलियट मोर्गन द्वारा लिखा गया पत्र "आपकों याद होगा, गाँधी ने साबरमती आश्रम से समुद्र तट तक 150 मील दूर-तक सरकार के नमक कानून के विरूद्ध डांडी यात्रा आरम्भ की। उन्होंने अपने साथ, एक लंगोट, एक लाठी और एक विचार लिया। उन्होंने यह प्रण किया कि वे तब तक वापिस नहीं आएंगे जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होता है। किसी ने उनका मजाक बनाया, किसी ने अपने सिर हिलाए, किन्तु सत्रह वर्ष पश्चात भारत स्वतन्त्र हो गया। सविनय अवज्ञा और नफरत से स्वतन्त्रता निःसन्देह एक सशक्त हथियार हैं मोन्टगोमेंरी की अश्वेत जनता ने गाँधी और थोरो से सबक लिया हैं।"

11.5 सारांश

मार्टिन लूथर किंग जूनियर की मौलिक चिंताऐं आरंभिक तौर पर एक ईसाई पादरी की थी। उन्होंने न केवल अमेरिकी आदर्शों में विश्वास किया बल्कि यह भी मानते थे कि अहिंसक साधनों के माध्यम से वह उनके में विद्यमान नस्लीय तनाव के वातावरण को सुधार सकते हैं। उन्होंने अपने आपको काले लोगों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि उसकी दृष्टि में श्वेत और काले दोनों ही लोग समान थे। न्याय, स्वतंत्रता, समानता और सम्मानजनक जीवन के लिए उन्होंने कई रैलियों का नेतृत्व बड़ी सफलता के साथ किया जिसमें सबसे महत्वपूर्ण थी- मोन्टगोमरी बस बहिष्कार (1955-56) जो आज भी मानव इतिहास में न्याय के लिए किए गए प्रयासों में सबसे भव्य मानी जाती है।

उसने 1963 में वाशिंगटन में एक विशाल रैली का नेतृत्व सफलतापूर्वक किया, सदरन् क्रिश्चियन लीडरशिप कांफेरेंस के अध्यक्ष और संस्थापक के रूप में और उनका 'I have a Dream' नामक भाषण दिया जो उनके कुशल वक्ता और पवित्र भावनाओं का शास्त्रीय उदाहरण माना जाता है।

जब किंग की 1969 में हत्या की गई, तब वह मानव के भ्रातृत्व के पहरेदार बन गये और आशा के नये युग के पैगम्बर बन गये। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि अहिंसा कमजोर व्यक्ति का हथियार नहीं है, बल्कि यह साहसी का हथियार है जैसे गाँधी जैसे महान नेताओं ने बड़े-बड़े लक्ष्यों को प्रभावी रूप ये प्राप्त करने में सफलता पायी है। गाँधी के समान ही मार्टिन लुथर किंग जुनियर ने अहिंसा में अपनी पूर्ण आस्था जताई। गाँधी के समान ही किंग ने अहिंसा का व्यापक अर्थ लगाया और इस बात पर बल दिया कि इसके सफल प्रयोग के लिए सही प्रशिक्षण भी जरूरी है। किंग द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम के महत्व को स्वीकार करते हुए बाद में उनके सहयोगी डॉ. बर्नार्ड लफाएट्टे और कैप्टिन चार्ल्स एलफिन द्वारा विश्व स्तर पर विकसित व संगठित किया गया। किंग ने "अहिंसा को एक शक्तिशाली और न्यायपूर्ण 'हथियार' माना जो बिना काटे घाव करता है और घाव भरता भी है।" उन्होंने विस्तार से अहिंसा के सिद्धान्तों की व्याख्या ही नहीं की अपितु गाँधी के समान इसका सशक्त प्रयोग भी किया है।

11.5 अभ्यास प्रश्न

1. डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या रही हैं ?
2. किंग और गाँधी की अहिंसा संबंधी दर्शन का तुल्नात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. किंग की अहिंसा के अनुप्रयोगों का वर्णन कीजिए।

11.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेबर, थामस, गाँधी: एस डीसैपल एण्ड मेन्टर, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007.
2. फिशर, लुईस, दी लाईफ ऑफ महात्मा गाँधी, द हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006.
3. हार्डिमेन, डेविड, गाँधी: इन हिज टाइम एण्ड अवर्स, परमानेन्ट ब्लेक, नई दिल्ली, 2005.

इकाई – 12

नेल्सन मण्डेला

इकाई रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृत

12.3 नेल्सन मण्डेला का राजनैतिक जीवन

12.3.1 अफ्रीकी राष्ट्रीय कॉंग्रेस की युवा शाखा (1944)

12.3.2 1964 में कटघेरे से उद्बोधन

12.4 सारांश

12.5 अभ्यास प्रश्न

12.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को यह जानकारी देना है कि -

- नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृत क्या है,
- नेल्सन मण्डेला ने दक्षिण अफ्रीका की राजनीति में क्या योगदान दिया,
- नेल्सन मण्डेला ने महात्मा गाँधी से क्या शिक्षाऐं ग्रहण की, तथा
- नेल्सन मण्डेला ने विश्व राजनीति को कैसे प्रभावित किया।

12.1 प्रस्तावना

नोबेल शान्ति पुरस्कार विजेता नेल्सन मण्डेला, महात्मा गाँधी, मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसी महान हस्तियों की श्रेणी में आते हैं। वे महात्मा गाँधी के दक्षिण अफ्रिका में रंगभेद के विरूद्ध चलाये गए आन्दोलन और फिर महात्मा गाँधी द्वारा भारत लौटकर ब्रिटिश भौतिकवादी-साम्राज्यवादी ताकत के विरूद्ध अहिंसा की आध्यात्मिक लड़ाई लडी, जिसमें वे विजय रहे, उससे प्रभावित होकर उन्होनें अन्याय, नस्लवाद और राजनैतिक अत्याचार के विरूद्ध अहिंसा, और सविनय अवज्ञा के माध्यम से एक संघर्ष छेड़कर दक्षिण अफ्रीकी-समाज में अपने अथक प्रयासों से सामाजिक न्याय की स्थापना की। इस क्रम वे 27 वर्षों तक जेल की कालकोठरी में बन्द रहें और निरन्तर गाँधीवादी व्यक्तित्व व दर्शन की सनातन रश्मियों से ऊर्जा प्राप्त कर भावी अफ्रीका समाज व राजनीति तथा सम्पूर्ण मानवता के भविष्य के बारे में सकारात्मक चिन्तन करते रहे और परिणामतः 1994 में दक्षिण अफ्रिका में उनके नेतृत्व में पहली अश्वेत सरकार का गठन कर गाँधीजी को सच्ची शृद्धान्जली प्रदान की।

12.2 नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृत

नेल्सन रोलीहलाहला मण्डेला का जन्म 18 जुलाई, 1918 को दक्षिण अफ्रीका के उमटाटा जिले के एक छोटे से गाँव मवेसो में हुआ था। उनके पिता वहाँ के राजा के अत्यधिक करीब थे, और 1927 में उनकी मृत्यु के पश्चात् नए राजा जोंगिनटाबा दलिनदयेबो ने नौ वर्ष के रोलीहलाहला को गोद ले लिया, और उनकी शिक्षा की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली। इन्होनें अपनी स्कूली शिक्षा 'क्लार्कऐबैरी बोर्डिंग' संस्था में प्राप्त की और वे अपने परिवार के प्रथम सदस्य थे जिसने विद्यालय में कदम रखा था| बोर्डिंग स्कूल के पश्चात् उन्होनें फोर्ट हैर मिशनरी कॉलेज में उच्च शिक्षा ग्रहण की।

उन्हें प्यार से 'मडीबा' कहा गया, जो कि उनके कबीले का भी नाम था, अपनी जीवनी लॉन्ग वाल्क टू फ्रीडम में वे कहते हैं कि उन्हें नेल्सन नाम सात वर्ष की उम्र में स्कूल में कदम रखने पर पहले ही दिन अपनी टीचर मिस. मडिन्गाने द्वारा दिया गया। गडिया हैनरी मैपहाकानीईस्वा उनके पिता थे, और उनहोंने उनका नाम रोलीहलाहला (Rolihlahla) रखा था, जिसका अर्थ था - पेड़ की शाखा को तोड़ना, बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ है उपद्रवी| सोलह साल की उम्र में उन्हें 'दालीबुन्गा' नाम भी दिया गया जिसका अर्थ है 'परिषद का निर्माता या संस्थापक' और 'बातचीत का संयोजक'| मण्डेला ने अपने आत्मकथा में लिखा है कि, "मुझे जो शिक्षा मिली वह ब्रिटिश शिक्षा थी, जिसमें ब्रिटिश विचार, ब्रिटिश संस्कृति, ब्रिटिश संस्थाएं स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ मानी गई थी।"

"अफ्रीकी संस्कृति जैसी कोई चीज़ नहीं थी। श्वेत लोग अफ्रीकी नामों का उच्चारण नहीं कर पाते थे या वे इन नामों का उच्चारण नहीं करना चाहते थे। क्योंकि अफ्रीकी नाम होना असभ्यता की निशानी माना जाता था।

अतः उस दिन मिस मडिन्गाने ने कहा कि अब से आपका नाम ‘नेल्सन’ होगा। यह नाम मुझे क्यों दिया गया, मुझे नहीं पता। सम्भवतः यह नाम महान ब्रिटिश नौसेना अध्यक्ष ‘लार्ड नेल्सन’ से प्रेरित था, किन्तु यह केवल मेरा अनुमान ही था।"

"बहुत ही छोटी उम्र में अपना अधिकांश समय गांव के बच्चों के साथ खेलने और लड़ने में बिताया था। वह बच्चा जो अपनी माँ से चिपका रहता था, वह मज़ाक का पात्र बन जाता था। रात के समय मैं अपना खाना और कम्बल इन बच्चों के साथ बांटता था। मैं मुश्किल से पाँच वर्ष का था जब मैं एक गड़रिया बन गया और बकरियों और गायों की देखभाल करने लगा।"

प्रकृति की गोद में विभिन्न खेल खेलते हुए इस बालक ने कई बातें सीखीं - गुलेल से पक्षियों का शिकार करना, जंगली शहद और फल एकत्रित करना, ठंडे स्वच्छ झरने में नहाना और तैरना, मछली पकड़ना, स्वयं बनाए हुए खिलौनों से खेलना, प्रकृति से लगाव उनके बचपन की ही देन थे।

नेल्सन मंडेला लिखते हैं, "कुन्नू में मेरा आमना-सामना कुछ ही श्वेत लोगों से हुआ। उनमें कुछ पुलिसकर्मी, एक न्यायाधीश, पास का एक दुकानदार आदि शामिल थे। ये सभी मुझे भगवान जैसे लगते थे और मुझे इस बात का ज्ञान था कि इन्हें भय मिश्रित सम्मान से देखना चाहिए।"

सात वर्ष की उम्र में जब उन्होनें स्कूल जाने की तैयारी की, तो उनके पिताजी ने अलग ले जाकर उनसे कहा कि अब स्कूल जाने के लिए उन्हें ढंग के कपड़े पहनने होंगे। तब तक कुन्नू के हर बालक की तरह, वे भी एक कम्बल पहनते थे जो कि एक कंधे से लिपटी होती थी, और कमर पर एक पिन से बंधी होती थी। उनके पिताजी ने अपनी पतलून को घुटनों से काटा और उन्हें पहनने को दी। ये कमर से ढीली थी, तो उनके पिता ने उसे रस्सी से कमर पर कस कर बांध दिया।

नेल्सन मण्डेला ने अपनी जीवनी ‘लॉन्ग वाल्क टू फ्रीडम’ में लिखा है कि "यद्यपि ये एक हास्यास्पद दृश्य रहा होगा, किन्तु मैंने कभी भी इतना गर्व महसूस नहीं किया, जितना उस दिन अपने पिता की कटी हुई पतलून पहनकर किया था।"

जिस व्यक्ति ने आगे जाकर यह कहा कि "वह व्यक्ति जो दूसरे की स्वतन्त्रता का हनन करता है, वह नफरत का कैदी है, " बचपन से ही इस बात को महसूस किया कि अगर कोई खेल में पराजित होता है तो उसे अपमानित नहीं करना चाहिए।

फोर्ट हैर विश्वविद्यालय में उनकी मित्रता औलिवर टैम्बो से हुई, और विधार्थियों की एक हड़ताल में भाग लेने के कारण इन्हें वहाँ से निकाल दिया गया।

सन् 1941 में, तेईस साल की उम्र में शादी करने के दबाव से बचने के लिए वे जौहान्सबर्ग के दक्षिण-पश्चिम प्रदेश सोवेटो चले गए वहां पर उन्होनें एक सोने की खान में चैकीदार की नौकरी की। विटकिन, साईडैलस्की और ऐडलमैन नामक कानून की कम्पनी के क्लर्क की नौकरी भी की। तत्पश्चात् दक्षिण अफ्रीका के विश्वविद्यालय से उन्होनें कानून में डिग्री हासिल की, और एक कानून की कम्पनी में नौकरी की। शीघ्र ही वे एक जाने माने वकील बन गए, जिन्होनें अश्वेत दक्षिण अफ्रीकी लोगों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध लड़ाई लड़ी।

सिसलु के घर में उनकी मुलाकात एक विनम्र, शान्त और खूबसूरत लड़की, एवलिन मेस से हुई, जिससे कि उनकी पहली शादी सम्पन्न हुई, वे आर्थिक दृष्टि से इतने सक्षम नहीं थे कि परम्परागत ढंग से शादी कर सकते, अतः जौहान्सबर्ग में उन्होनें न्यायालय में शादी की। उनकी चार सन्तानें हुई - थैम्बीकीले (1946), माकाज़ीवे (1947), जिसकी नौ महीने में ही मृत्यु हो गई, माकगाथो (1951) और माकाज़ीव (1954)| 1958 में एवलिन मेस से उनका तलाक हो गया।

सन् 1958 में विनी मडिकीज़ेला (1958-1996) से उनकी दूसरी शादी सम्पन्न हुई। जब मण्डेला जेल में थे, इस दौरान विनी मण्डेला राजनीतिक दृष्टि से काफी सशक्त हो गई। 1992 में, कई घोटालों में उनका नाम आने के कारण दोनों में दरार पड़ गई, और 1995 में उन्हें मन्त्रिमण्डल से भी निष्कासित कर दिया गया। 1996 में वे मण्डेला से कानूनन अलग हो गई।

सन् 1998 में उन्होनें ग्रेसा मैशल से तीसरी शादी की जो कि मौज़ाम्बिक के राष्ट्रपति समोरा माईकल की विधवा थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के क्षेत्र में सक्रिय कार्यकर्ता रही।

सन् 1942 में ही उन्हें पत्राचार द्वारा स्नातक की डिग्री प्राप्त हुई। सन् 1943 में उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' की सदस्यता प्राप्त की।

12.3 नेल्सन मण्डेला का राजनैतिक जीवन

12.3.1 अफ्रीकी राष्ट्रीय काँग्रेस की युवा शाखा (1944)

1944 में जब द्वितीय विश्व युद्ध चरम सीमा पर था, तो ‘अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस’ के कुछ युवा सदस्यों ने एन्टन लेम्बेडे के नेतृत्व में ‘अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस’ को एक उग्र जन आन्दोलन का रूप देना चाहा। विलियम नकोमो, वाल्टर सिसलु, आलिवर टैम्बो, ऐश्बी पीमदा के अलावा इन युवाओं में नेल्सन मण्डेला भी थे। ये 60 सदस्य थे| इनका यह तर्क था कि अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस का परम्परावादी संविधानवाद और विनम्र प्रतिनिधिमंडलवाद राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं दिला सकता। इसके स्थान पर लैम्बैडे और उसके साथियों ने एक

क्रान्तिकारी अफ्रीकी राष्ट्रवाद की वकालत की जो कि राष्ट्रीय आत्म-निर्धारण (National Self Determination) पर आधारित थी।

सितम्बर 1944 में उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस यूथ लींग का गठन किया। शीघ्र ही उन्होनें अपने साथियों को अपने अनुशासित काम और अथक प्रयासों से प्रभावित किया और 1948 में उन्हें लीग का राष्ट्रीय सचिव निर्वाचित किया गया। इन्होनें काफी प्रचारात्मक कार्यवाहियों के माध्यम से अपनी नीतियों के लिए अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के सदस्यों में समर्थन प्राप्त किया। सन् 1949 में औपचारिक रूप से अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने बहिष्कार, सविनय अवज्ञा, असहयोग, हड़ताल को अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की नीति के रूप में स्वीकारा।

1952 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने अन्यायपूर्ण कानूनों के विरूद्ध एक आन्दोलन छेड़ा, तो मण्डेला जो कि अब तक युवा लीग के अध्यक्ष थे, राष्ट्रीय मुख्य स्वयंसेवक चुने गये। मुट्ठी भर लोगों से आरम्भ किया हुआ यह आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया। अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए मण्डेला ने पूरे देश का दौरा किया और लोगों को अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने के लिए प्रेरित किया।

सिसलु, मोरोक्का और सत्रह अन्य लोगों के साथ मण्डेला के विरूद्ध न्यायिक कार्यवाही हुई, जिसमें यह पाया गया कि मण्डेला ने लगातार अपने सहयोगियों का अहिंसा का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया था, उन्हें आस्थगित कारावास की सजा सुनाई गई और छः माह तक जोहन्सबर्ग में ही रहने की हिदायत दी गई और सम्मेलनों में भाग लेने की मनाही कर दी गई। इस दौरान उन्होनें वकालत के लिए परीक्षा दी, और उन्हें वकालत करने की अनुमति मिल गई।

1947 में विटकिन, सिडलस्की और ईडलमैन की कानून की कम्पनी में उनका कार्यकाल समाप्त हुआ और उन्होनें अब कानून की अपनी पढ़ाई को अपना पूरा समय दिया। इसी वर्ष उनकी पुत्री माकाज़ीब्रे का जन्म हुआ, किन्तु नौ माह पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। 1953 में एक और पुत्री के जन्म पर उन्होनें उसका नाम भी माकाज़ीब्रे रखा। 26 जून 1950 में मण्डेला ने नस्लवाद विद्रोह के राष्ट्रीय दिवस में हिस्सा लिया और उसी दिन उनके दूसरे पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होनें माकगाथो रखा।

1952 में अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के उप-राष्ट्रीय राष्ट्रपति बन कर उन्होनें नस्लवाद के विरूद्ध अहिंसक साधनों के प्रयोग पर ज़ोर दिया, किन्तु 1960 में शार्पविल में जब कुछ अहिंसक प्रदर्शनकर्ताओं की मौत हुई, तो उन्होनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की एक और शाखा उमखोन्टो वी सिज़व की नींव रखी, जिसके माध्यम से उन्होनें गुरिल्ला युद्ध को प्रोत्साहित किया। इसी वर्ष अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस को गैर-कानूनी घोषित किया गया और उसे अपराधी ठहराया गया।

सन 1960 के शार्पविल नरसंहार के पश्चात् मण्डेला ने अपनी अहिंसात्मक नीति का परित्याग कर दिया, क्योंकि उन्हें इस बात का आभास हुआ कि श्वेत लोगों के विरूद्ध एक हिंसात्मक आन्दोलन ही कारगर सिद्ध हो सकता था।

21 मार्च, 1960 को अफ्रीकी पुलिस ने अश्वेत विद्रोहयों पर तब गोलियां दागनी आरम्भ कर दी जब 5 हजार से 7 हजार लोगों की भीड़ ने जोहन्सबर्ग के समीप शार्पविल क्षेत्र में शान्तिपूर्ण तरीके से विरोध प्रदर्शन किया, और स्वयं को बन्दी बनाने के लिए पुलिस के समक्ष पेश किया। ये पास कानून (Pass Laws) के विरूद्ध प्रदर्शन कर रहे थे, जो कि 1920 से अश्वेत दक्षिण अफ्रीकियों के आवागमन को प्रतिबन्धित करते थे, और नस्लवाद समर्थक राष्ट्रीय दल ने हैन्डरिक वरवोरड़ के नेतृत्व में 1960 के पश्चात् इन कानूनों को और कड़ा कर दिया था। इस आधार पर अश्वेत लोगों को बन्दी बनाकर अत्याचार किया जाता था।

विद्रोहियों के पास पत्थरों के अतिरिक्त कोई हथियार नहीं थे, किन्तु पुलिस बन्दूकों से लैस थी और उन्होनें इस शान्तिपूर्ण भीड़ पर आक्रमण कर दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, इसमें मरने वालों की संख्या 69 थी और 180 लोग घायल हुए।

इस नरसंहार की अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आलोचना की गई। 30 मार्च 1960 को सरकार ने आपातकाल घोषित कर दिया और अठारह हज़ार लोगों को गिरफ्तार किया गया। 1 अप्रैल 1960 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने संकल्प पारित किया। शार्पविल नरसंहार दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में एक नया मोड़ था। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में यह निरन्तर अकेला और पृथक पड़ता गया।

सन् 1961 में दक्षिण अफ्रीका राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations) से भी पृथक हो गया। सन् 1994 के पश्चात् 21 मार्च को दक्षिण अफ्रीका में 'मानव अधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 10 दिसम्बर 1996 को राष्ट्रपति मण्डेला ने शार्पविल में ही दक्षिण अफ्रीका के संविधान को कानूनन स्वीकृति दी।

सन् 1998 में, सत्य और सामंजस्य आयोग (Truth and Reconciliation Committee) ने यह निर्णय दिया कि पुलिस कर्मियों द्वारा निहत्थे लोगों पर आक्रमण और शक्ति प्रदर्शन मानव अधिकारों का घोर हनन था। यूनेस्को द्वारा प्रतिवर्ष 21 मार्च को 'नस्लवाद उन्मूलन दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

शार्पविल नरसंहार के पश्चात् पैन अफ्रीकन काँग्रेस (PAC) और अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस को प्रतिबन्धित किया गया। पैन अफ्रीकन काँग्रेस ने भी PQQ (सैन्य प्रभाग) की नींव रखी और अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने उमखोन्टो वी सिज़व की नींव रखी।

यह शार्पविल नरसंहार भारत के जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की याद दिलाता है जब 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में बैसाखी के दिन हज़ारों की मात्रा में भारतीय, विशेषकर सिख लोग एकत्रित हुए थे और ब्रिगेडियर जनरल डायर ने और उसके सैनिकों ने उन निहत्थे लोगों पर अन्धाधुन्ध गोलियां दाग दी थी।

इस नरसंहार ने पूरे भारतवर्ष को दहला कर रख दिया था। महात्मा गाँधी ने कहा कि वे इस शैतान सरकार के साथ सहयोग नहीं कर सकते, और इस दुर्घटना ने सहयोगी गाँधी को असहयोगी गाँधी बना दिया। उसी प्रकार शार्पविल नरसंहार के पश्चात् मण्डेला ने सशस्त्र विरोध पर ज़ोर दिया।

जून, 1961 में मण्डेला के इस सुझाव पर अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने मंथन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के वे सदस्य जो अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की सैनिक शाखा में सम्मिलित होकर हिंसात्मक तरीके अपनाना चाहते हैं, उन्हें रोका नहीं जाएगा।

इसके फलस्वरूप उमखोन्टो वी सिज़व (राष्ट्र का भाला) का निर्माण हुआ। जो कि 1961 से 1990 तक सक्रिय रहा। इसे संक्षेप में एम.के. के नाम से भी जाना जाता था। 'लॉन्ग वाल्क टू फ्रीडम' के 42वें अध्याय 'द ब्लैक पिम्परनेल' में वे कहते हैं, "मैं जो कि कभी सैनिक नहीं रहा, जो कि कभी युद्ध में नहीं लड़ा, जिसने कभी शत्रु पर बन्दूक नहीं दागी को एक सैना के निर्माण करने का कार्य सौंपा गया था। इस नई संस्था का नाम उमखोन्टो वी सिज़वे था। संक्षेप में इसे एम.के. अर्थात 'राष्ट्र का भाला' कहा जाता है। 'भाले' को प्रतीक चुना गया था क्योंकि सदियों तक अफ्रीकी लोगों ने श्वेतों के आक्रमणों को भालों के आधार पर ही रौंदा था।"

इस संस्था में उन्हानें हिंसात्मक साधनों पर ज़ोर दिया, जैसे सरकारी टेलीफोन की तारें काटना और अन्य संचार के साधन भी जिन्होंने अपने लक्ष्य के प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "हमारा उद्देश्य था उन हिंसात्मक तरीकों को अपनाना जो कि राज्य को नुकसान पहुँचाएँ न कि व्यक्ति को। इस राह पर काफी कठिनाईयाँ और खतरे विद्यमान हैं। मुझे अपने आप को अपने परिवार से दूर करना पड़ा है, मुझे अपने काम को त्यागना पड़ा है.... मैं सरकार का विरोध हर इंच, हर मील तक करूंगा, जब तक हम जीत हासिल न करें। मैं तब तक दक्षिण अफ्रीका नहीं छोड़ूंगा, और न हीं सरकार के सामने घूटने टेकूगा। स्वतन्त्रता कठिनाईयों, त्याग और सशस्त्र आन्दोलन से ही सम्भव है। मेरा जीवन मेरा संघर्ष है। मैं स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु पर्यन्त संघर्ष करूंगा।"

इस दौरान मण्डेला ने कई पुस्तकें पढ़ीं और विशेषज्ञों से सलाह ली, मूलतः वे यह जानना चाहते थे कि एक क्रान्ति आरम्भ करने के मूल आधार क्या थे। मण्डेला लिखते हैं, "मैं यह जानना चाहता था कि गुरिल्ला युद्ध कैसे लड़ा जाता है, उसके लिए कौनसी परिस्थितियां सर्वोच्च थीं, और गुरिल्ला योद्धाओं को किस प्रकार का प्रशिक्षण मिलना चाहिए।"

उन्होनें इस दौरान आंग्ल-बोयर युद्ध के बारे में पढ़ा, चैग्वेरा के बारे में और उनकी रचनाओं को पढ़ा, माओत्स तुंग और फिडैल कास्ट्रो को पढ़ा, दक्षिण अफ्रीका के इतिहास को भी पढ़ा। उन्होंने कहा है कि, "26 जून, 1961, हमारे स्वतन्त्रता दिवस पर मैंने एक पत्र दक्षिण अफ्रीकी समाचारपत्रों को भेजा, जिसमें मैंने पुनः एक राष्ट्रीय संविधानिक अधिवेशन का आहवान किया। मैनें पुनः कहा कि अगर ऐसा अधिवेशन नहीं रखा गया तो एक राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया जाएगा।" उनके पत्र के कुछ अंश ऐसे थे, "मुझे पता चला है कि मुझे बन्दी बनाने के लिए वारंट जारी हो चुका है, और पुलिस को मेरी तलाश है.... मैं सस्ते बलिदान की खोज में नहीं हूँ। मैं यह समझता हूँ कि पुलिस के सामने आत्मसमर्पण करना आपराधिक ही नहीं बेवकूफाना भी है।" मंडेला ने कहा, "स्वतन्त्रता की राह पर हम में से अधिकांश लोगों को बार-बार मौत की घाटी से गुज़रना होगा, जब तक कि हम अपनी इच्छाओं के पहाड़ तक नहीं पहुँच जाते।"

1962 में उन्हें बन्दी बनाकर पाँच साल के कठिन परिश्रम की सज़ा सुनाई गई। 1963 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस और उमखोन्टो वी सिज़व के कुछ सदस्यों को बन्दी बनाया गया तो सरकार को हिंसात्मक तरीकों से हटाने के लिए मण्डेला पर भी उनके साथ केस चलाया गया, कटघरे से उनका जो उद्बोधन था उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।

12.3.2 1964 में कटघेरे से उद्बोधन

"सर्वप्रथम तो मैं यह कहना चाहूँगा कि राज्य का यह सुझाव कि दक्षिण अफ्रीका का संघर्ष विदेशियों और साम्यवादियों के प्रभाव के कारण है, सर्वथा गलत है, व्यक्तिगत तौर पर, अपने लोगों के नेता के रूप में मैंने जो कुछ भी किया वह मेरे दक्षिण अफ्रीकी अनुभवों पर आधारित था, और अपनी पृष्ठभूमि में गर्व के कारण किया।

ट्रांस्काई में अपनी जवानी में, मैनें अपने बुजुर्गों से पुराने ज़माने की कहानियां सुनी थीं, विशेषकर उन पूर्वजों की जिन्होनें अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए कई युद्धों में हिस्सा लिया.... मैं तभी से इस तलाश में था कि मुझे कोई अवसर मिले जब मैं भी अपने देश के लिए कोई योगदान दूं।

जहाँ तक हिंसा का प्रश्न है, मैं इस बात को नकार नहीं रहा कि मैंने तोड़-फोड़ की, किन्तु मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि मुझे हिंसा से प्यार है, बल्कि बहुत सोच विचार के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि श्वेत लोगों द्वारा वर्षो से किए गए शोषण और अत्याचार को हिंसा द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है उमखोन्टो वी सिज़वे की स्थापना के पीछे दो मुख्य कारण थे। एक तो यह है कि, मुझे यह विश्वास हो चुका था कि सरकार की नीति के कारण, जनता द्वारा हिंसा, अवश्वम्भावी हो चुकी थी, और अगर जनता के आक्रोश और क्रोध को कोई मंच नहीं मिलेगा, तो पूरी सम्भावना थी कि ये आतंकवाद का रूप ले लेगा जो कि युद्ध से भी अधिक घातक होगा, और द्वितीय यह है कि हमें इस बात का भी अहसास हो चुका था कि श्वेत लोगों की सर्वोच्चता के विरूद्ध एक हिंसात्मक आन्दोलन ही सफल हो सकता था।

विरोध के कानूनी तरीके हमारे लिए उपलब्ध नहीं थे, और हम इस स्थिति में आ चुके थे जहाँ पर हमें अपनी हीन स्थिति को स्वीकारने के लिए बाध्य होना पड़ता, या हम सरकार का विरोध करते। हमने सरकार के विरोध करने का निर्णय लिया, हमने पहले तो बिना हिंसा के कानून का उल्लंघन किया, जब इसका कानूनन विरोध किया गया और सरकार ने दमनात्मक कार्यवाही का सहारा लिया, तो हमने हिंसा का जवाब हिंसा से देना उचित समझा।" परिणामतय गिरफ्तारी हुई। इस प्रकार मेण्डला कई वर्षों तक जेल की सजाऐं काटते रहे।

12.4 सारांश

आरम्भ में रोलीहलाहला के नाम से पुकारे जाने वाले मण्डेला का आगे चलकर नेल्सन नाम दिया गया और उन्होंने फोर्ट हैर विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण की और 1944 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध चर्म पर था तब उन्होंने अफ्रीकी नेशनल काँग्रेस की सदस्यता ग्रहण की और वे निरन्तर दक्षिण अफ्रीका की श्वेत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन में संलग्न रहे इस आन्दोलन की प्रेरणा उन्हें महात्मा गाँधी से मिली। उन्होंने अपनी आत्मकथा (लॉन्ग वाल्क टू फ्रीडम) में लिखा है - 'मैं 27 वर्षों तक जेल की काटकोठरी में महात्मा गाँधी जैसी महान् विभूति के व्यक्तित्व और विचार दर्शन की अर्मूत तंरगों की अंगाध ऊर्जा पाकर जीवित रहा हूँ।' अन्ततः वे दक्षिण अफ्रीकी गौरी सरकार के विरूद्ध अपने अहिंसक आन्दोलन में विजय रहें और 1994 में दक्षिण अफ्रीका में पहली अश्वेत सरकार का गठन उन्हीं के नेतृत्व में हुआ। उनका गौरी सरकार के विरूद्ध आन्दोलन ने शेष अफ्रीकी राष्ट्रों की जनता के लिए प्रेरणा व उत्साहवर्धन का काम किया।

12.5 अभ्यास प्रश्न

1. नेल्सन मण्डेला का जीवन-वृंत बताइये?
2. नेल्सन मण्डेला द्वारा अफ्रीका की गौरी सरकार के विरूद्ध चलाये गये आन्दोलन पर एक लेख लिखिए।
3. नेल्सन मण्डेला के जीवन पर गाँधीजी के प्रभाव पर लेख लिखिए।

12.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मण्डेला, नेल्सन, स्वतंत्रता की पैदल यात्रा (आत्मकथा), राजकमल एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
2. कार्लिन, जॉन, प्लेईंग द एनीमी: नेल्सन मण्डेला एण्ड द गेम देट ए नेशन, पेंगुईन, न्यूयार्क, 2008
3. स्मिथ, यंग मण्डेला: द रिवोल्यूशनरी ईयर्स, लिटिल ब्राउन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 2010

इकाई – 13

अर्ने नेस

इकाई रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 जीवन और कार्य

13.3 सारांश

13.4 अभ्यास प्रश्न

13.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्नलिखित जानकारी देना है :

- अर्ने नेस का जीवन-वृत
- पर्यावरण सम्बन्धी अर्ने नेस के विचार और कार्य

13.1 प्रस्तावना

आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण संकट के प्रति जाग चुका है। वैश्विक गर्मी में तीवता और परिणाम स्वरूप प्रजातियों का विलोपन तथा प्रदूषण के विपरीत प्रभाव के कारण अब सम्पूर्ण विश्व यह महसूस करने लगा है कि परम्परागत रूप से युद्ध को रोकने की बात या प्रयास करके मानव और विश्व को बचाने की बात तक सीमित रहना उचित नहीं है। विदेशी धमकियों/खतरों से केवल सैनिक सुरक्षा द्वारा देश के नागरिकों की रक्षा करने की बातें करना ही पर्याप्त नहीं बल्कि पारिस्थितिकी की सुरक्षा करके मानुष्य और प्रकृति के मध्य सन्तुलन को बनाये रख कर सम्पूर्ण विश्व की सुरक्षा और प्रगति की बात करनी होगी। असीमित उपभोक्तावादी संस्कृति प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव पूँजी के शोषण पर आधारित हैऔर यह भू-मंडल में अनेक पारिस्थितिक जन्य

समस्याओं को जन्म देता है। आज पर्यावरण शिक्षा का महत्व बढ़ता जा रहा है। औपचारिक और अनौपचारिक रूप से पर्यावरण संरक्षण और संतुलन की बात की जाती है। विश्व स्तर पर अनेक पर्यावरणविद् हैं जो इस कार्य में संलग्न है। इनमें एक प्रसिद्ध नाम है अर्ने नेस।

अर्ने नेस एक प्रकृतिवादी थे और इस दृष्टि से वे पर्यावरण और मानवीय संबंधों के पारस्परिक संबंधों का उचित ब्यौरा प्रस्तुत कर पाए, जिसमें अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान था। उनकी 'डीप इकोलोजी' की संकल्पना का निष्कर्ष भी यही था। नेस ने पर्यावरणीय विध्वंस की रोकथाम के लिए अहिंसा को हथियार बनाया, और इसी कार्य के लिए वे जीवनभर संघर्षरत रहे। इस चैप्टर के माध्यम से छात्र यह जान पाएंगे कि कैसे नेस के विचारों से पर्यावरण के प्रति दुनिया में जागरुकता आई और इसमें गाँधी के अहिंसक सिद्धान्त कितने उपयोगी हुए।

13.2 जीवन और कार्य

अर्ने नेस को हम एक ऐसे षख्स के तौर पर परिभाशित कर सकते हैं जिन्होंने अपने पारिस्थितिकी दर्शन को महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धान्त के साथ सम्बद्ध किया और इसके माध्यम से अनेक अवसरों पर वृहत् सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त किया। पर्यावरण के साथ गहराई तक जुड़े नेस ने इस विषय के संबंध में अपना स्वयं का दर्शन और नजरिया विकसित किया तथा इसी दर्शन के जरिए उन्होंने 'इकोसोफी' की एक नई संकल्पना दी। यह शब्द इकोलोजी और फिलोसोफी के योग से बना है, और इस संकल्पना को परिभाषित करते हुए नेस ने कहा, 'इकोसोफी से मेरा मतलब पारिस्थितिकी समन्वय या सामंजस्य से है।' नेस को 'डीप इकोलोजी' आंदोलन का पिता भी कहा जाता है। इस आंदोलन के जरिए नेस ने यह बताने का प्रयास किया कि मानवता की तरह ही सम्पूर्ण पर्यावरण को भी जीवित रहने और फलने-फूलने का अधिकार है। यह आंदोलन पर्यावरण और मानवीय संबंधों से जुड़े 'क्यों' और 'कैसे' आदि सवालों के जवाब देने का प्रयास करता है।

अर्ने नेस का जन्म 27 जनवरी 1912 को नार्वे की राजधानी ओस्लो के निकट स्लेमडेल नामक कस्बे में हुआ। इनके पिता एक बैंककर्मी थे। अर्ने के जन्म के एक वर्ष के अंदर ही इनके पिता का देहांत हो गया और इनका पालन-पोषण इनकी मां और बड़े भाई एरलिंग ने किया जो आगे चलकर जहाज कंपनी के मालिक बने। पर्यावरण के प्रति छोटे भाई का लगाव देखकर एरलिंग ने लिखा था, "ऐसा कम ही होता है कि दो भाई अपने जीने के तरीके और पेशे में इतने अलग हों जितना कि मैं और अर्ने हैं|" हालांकि साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ा कि "एक दूसरे के प्रति आदर और समर्पण में वे बेहद निकट हैं।" एक युवा के तौर पर अर्ने पर्यावरण और दर्शन के अध्ययन के प्रति आकर्षित हुए। ओस्लो विश्वविद्यालय से वर्श 1933 में स्नातक करने के बाद उन्होंने अपना अध्ययन पेरिस और वियना में जारी रखा। वियना में वे एक दार्शनिक संप्रदाय वियना सर्किल के साथ भी जुड़े। 'नॉलेज एंड साइंटिफिक बिहेवियर' नामक विषय पर अपना शोध पूरा करने के बाद नेस सन 1939 में ओस्लो विश्वविद्यालय में दर्शनशस्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए और वर्ष 1954 तक नार्वे में दर्शनशस्त्र के एकमात्र प्रोफेसर

बने रहे। यह पद प्राप्त करने वाले नेस विश्वविद्यालय के सबसे युवा शख्स थे और यहां वे वर्ष 1970 में अपनी सेवानिवृत्ति तक बने रहे।

नेस ने दर्शन और पर्यावरण पर वृहत्त साहित्य की रचना की। दर्शन की सभी विधाओं पर लिखी गई उनकी पुस्तकें स्केंडिनेवियन देशों (डेनमार्क, नार्वे और स्वीडन) के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। इन वर्षों में नेस ने करीब 30 से अधिक पुस्तकें लिखने के साथ अनेक निबन्ध और पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे और इनमें दर्शन से जुड़े विभिन्न मुद्दों और समस्याओं को शामिल किया। नेस ने वर्ष 1975 में प्रकाशित 'फ्रीडम, इमोशन एंड सेल्फ सब्सिस्टेंस', 1989 में प्रकाशित 'इकोलोजी, कम्यूनिटी एंड लाइफस्टाइल' और 2002 में प्रकाशित 'लाइफ्स फिलोसोफीरू रीजन एंड फीलिंग इन ए डीपर वर्ल्ड' में इकोलोजी और इकोसोफी से संबंधित अपने विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने दो महान चिंतकों गाँधी और स्पित्नोजा पर भी लेखन कार्य किया, जो नेस के विचारों के केन्द्र में थे। अंग्रेजी में लिखी गई उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में शामिल हैं, वर्ष 1968 में लिखी गई 'स्केपटिसिस्म' और 1974 में लिखी गई 'गाँधी एंड ग्रुप कनफ्लिक्ट'। एक पर्यावरणविद् के तौर पर नेस को रशेल कारसन की 1962 में प्रकाशित पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' ने बेहद प्रभावित किया। इसके बाद से नेस पर्यावरण से जुड़े प्रदर्शनों और आंदोलनों में सक्रिय तौर पर भागीदारी करने लगे और वर्ष 1970 में अपनी सेवानिवृत्ति के बाद से उन्होंने अपना पूरा समय पर्यावरण की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया। नेस ने गाँधी और बुद्ध की शिक्षाओं को आधार बनाकर 80 के दशक में हरित आंदोलन चलाया और वर्ष 1988 में स्थापित ग्रीनपीस नार्वे के पहले अध्यक्ष नियुक्त हुए।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति नेस के प्रेम का अनुमान एक घटना से लगाया जा सकता है। वर्ष 1970 में एक बांध बनाए जाने का विरोध करते हुए नेस प्रदर्शनकारियों के साथ नार्वे फियोर्ड स्थित मारडेल जलप्रपात के सम्मुख स्थित एक चट्टान पर चढ़ गए और तब तक नीचे उतरने से मना कर दिया, जब तक कि बांध निर्माण की योजना को रद्द नहीं कर दिया जाता। यह बांध उस जलस्त्रोत पर बनाया जा रहा था जिससे इस जल प्रपात को पानी मिलता था। नार्वे की सरकार पर दबाव बनाने का उनका यह प्रयास कारगर रहा और इस घटना ने नार्वे में पर्यावरण संरक्षण के लिए किए जा रहे प्रयासों को गति देने का कार्य किया। 'डीप इकोलोजी' आंदोलन के प्रणेता के रुप में नेस ने माना कि डीप इकोलोजी के प्रति जागरुकता हम सभी में, विशेषकर बच्चों में, मौजूद है। उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि बचपन में जब हम तितली को देखते हैं तो हम उससे अपना निकट का संबंध स्थापित कर लेते हैं लेकिन बाद के जीवन में पौधों और जानवरों के प्रति हमारी यह जागरुकता कहीं खो जाती है और हमारा उनसे संबंध समाप्त हो जाता है। मनुष्य और प्रकृति के इन्हीं अन्तर्संबंधों को उन्होंने डीप इकोलोजी में परिभाषित किया।

नेस को उत्तर आधुनिकतावाद और पारस्थितिकीय विनाश के दौर में सामाजिक सापेक्षवाद कदापि स्वीकार्य नहीं था। यह वह विचार था जिसमें आप किसी भी प्रकार के मत का निर्माण नहीं कर पाते हो। यह एक प्रकार

की फासीवादी स्थिति थी और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वह इस फासीवाद का प्रभाव नार्वे पर भली भांति देख चुके थे। लिहाजा उन्होंने डीप इकोलोजी के विचार को, जो उनके नाम के साथ घनिष्ठ तौर पर सम्बद्ध हो चुका था, पूरी तरह से गैर फासीवादी करार दिया। नेस हमशा अहिंसा के समर्थक रहे लेकिन उन्होंने अपने लेखन में यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि उन्हें हिंसा और कायरता में से कोई एक विकल्प चुनना पड़े तो वह बेझिझक हिंसा को कायरता पर तवज्जों देंगे। उन्होंने यह भी कहा कि अहिंसा के सिद्धान्त पर किसी प्रकार के मत का निर्माण करने और उससे जनित परिणामों को स्वीकार करने से पहले व्यक्ति का आत्म-सम्मान महत्वूर्ण होता है।

नेस की यह खूबी थी कि वे दो परस्पर विरोधी विचारों के बीच से भी सकारात्मक विचार खोज लाते थे और उनकी आत्मसात करने वाली व्यक्तिगत शैली उस दौर के कई प्रसिद्ध समाजिक पारिस्थितिकीविदों से भिन्न थी। नेस अपने लेखन के जरिए न केवल एक गहन विचारक के तौर पर जाने गए बल्कि उन्हें एक ऐसे शख्स के तौर पर भी जाने गए जो भद्र और विनम्र होने के साथ-साथ कुछ हद तक अस्पष्ट और नटखट भी थे। सम्भवतया उनकी यह विशेषता उनकी एक पर्वतारोही के तौर बनी छवि को ही पुख्ता करती हैं। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि पर्यावरणीय गतिविधियों के लिए परस्पर विरोधी विचारों को भी पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए न कि तोड़-मरोड़ कर।

अर्ने नेस ने अपना अधिकांश लेखन और चिंतन कार्य एकान्त में ही किया। नार्वे के पहाड़ों पर हाथ से तैयार की गई एक झोपड़ी में, जहाँ जीवन के लिए जरुरी सभी वस्तुएं विशेष ध्यान में लाई गई, इन्हें नेस अपने दर्शन में मानव की 'अत्यावश्यक जरुरतें' कहते हैं। इनमें पानी, भोजन, आवास, साफ हवा आदि शामिल हैं। नेस ने हमेशा ही धनी देशों को जीवन के भौतिकतावादी मानदण्डों को कम करने की सलाह दी और हमेशा इस विचार के समर्थक बने रहे। वास्तव में नेस का व्यक्तित्व खासा रहस्यवादी था क्योंकि नार्वे के एक बेहद धनी परिवार में जन्म लेने के बावजूद नेस ने हमेशा भौतिकतावाद की मुखालफत की।

नेस ने अपने डीप इकोलोजी आंदोलन की व्याख्या करते हुए वर्ग विभेद को रोकने के लिए स्थानीय स्वायत्तता और विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने अपने लेखन में बताया कि किस प्रकार जीवन के लिए जरुरी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि वर्ग विभेद को बढ़ाती है। फ्रेड बेन्डर की वर्ष 2003 में लिखित पुस्तक 'द कल्चर ऑफ एक्सटिन्क्शन टूवड्र्स ए फिलोसॉफी ऑफ डीप इकोलोजी' स्पष्ट करती है कि नेस ने शेल्लो और डीप इकोलोजी संकल्पना का प्रतिपादन करते हुए एक बेहद प्रगतिशील और अद्वैतवादी दृष्टिकोण आम जन के सामने रखा। यह विचार पारिस्थितिकी के साथ पूरी तरह मेल खाता था क्योंकि इसमें प्रकृति का प्रत्येक पहलू एक दूसरे से परस्पर संबंधित था। इसके साथ ही नेस ने अपने मूल निबन्ध में सांस्कृतिक विविधता और वर्ग तथा राजनैतिक चेतना की समझ को भी बखूबी प्रस्तुत किया।

नेस एक प्रसिद्ध पर्वतारोही भी थे। उन्हें इस क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल थी और उन्होंने पर्वतारोहण के सिद्धान्त विषय पर निरन्तर और व्यापक लेखन कार्य किया। नेस ने अपना पहला पर्वतारोहण अभियान 1950 में आरंभ किया और पाकिस्तान स्थित हिंदुकुश पर्वत की 25 हजार फुट ऊंची तिरिच मीर नामक चोटी पर चढ़ने में सफलता प्राप्त की। इसके बाद नेस ने हिमालय में भी कई पर्वतारोही अभियान सफलतापूर्वक संपन्न किए। पर्वतों के प्रति उनके प्रेम का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे पर्वतों को अपना पिता मानते थे। ऐसा सुनने में भले ही अजीब लगे लेकिन नेस इसका जवाब बेहद रोचक और दार्शनिक अंदाज में देते हैं। उनका कहना था कि "मनुष्य प्रतीकों में जीता है। वह प्रतीकों के साथ इस तरह सम्बद्ध है कि उसका जीवन प्रतीक मात्र ही जान पड़ता है। ऐसे लोगों के लिए पर्वतों का अर्थ केवल खनिजों से है और वहां कोई संस्कृति विद्यमान नहीं है।" वे आगे कहते हैं, "किसी भी प्राचीन सभ्यता ने कभी भी पर्वतों को एक खनिज के तौर पर नहीं देखा बल्कि इसके विपरीत प्राचीन सभ्यताओं ने पर्वतों के साथ एक खास रिश्ता कायम किया। ईश्वर ने भी कहीं ओर निवास करने का शायद ही कभी सोचा हो क्योंकि या तो ईश्वर स्वर्ग में रहता है या फिर पहाड़ों पर। कुछ पर्वत तो कई संस्कृतियों में इतने पवित्र माने जाते हैं कि आप उनसे बातें कर सकते हो, उनसे नेक सलाह ले सकते हो और यही एक स्थान है जहाँ आप सुरक्षा और संरक्षण पा सकते हो।"

अर्ने नेस कहा करते थे कि पर्वत कभी नहीं लड़ते और जहाँ तक सम्भव हो वह हिमस्खलन को थामे रहते हैं। नेस पर्वत के साथ एक सजीव और सक्रिय व्यक्ति की तरह व्यवहार करते थे। वे उसके साथ बातें करते थे। एक बार जब उनसे पूछा गया कि पर्वतों में स्थित खनिजों को किस प्रकार सजीव माना जा सकता है तो नेस ने जवाब दिया, "पर्वतों या खनिजों की सजीवता जीव विज्ञान में पाई जाने वाली सजीव की संकल्पना से भिन्न है क्योंकि आम इंसान के विचार में 'सजीव रहना' एक व्यापक अवधारणा है।" वे नार्वे का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि किस प्रकार से उत्तरी नार्वे के लोग 'नदियां जीवित रहे' का नारा देते हैं। इसी प्रकार का विचार आम जन प्रकृति, खनिजों आदि के लिए भी रखता है। यही नहीं, उन्होंने चीन का उदाहरण देते हुए बताया कि कैसे माउत्सो तुंग पर्वतों को 'मिलिट्री मैन' कहा करते थे।

अर्ने नेस डीप इकोलोजी आंदोलन को पारिस्थितिकी संकट से निपटने का एक जरिया मानते थे। उनका मानना था कि इस क्षेत्र में काम करने की प्रेरणा व्यक्ति को उसके धार्मिक और दार्शनिक विचारों से मिलती है। जब व्यक्ति मुक्त प्रकृति के लिए कार्य करने लगता है तो एक प्रकार से वह स्वयं के लिए कार्य कर रहा होता है। नेस ने पारिस्थितिकी संकट के लिए धनी देशों के भौतिक उपभोग को जिम्मेदार माना और उनसे ऐसा उपभोग कम करने की अपील की। उन्होंने कहा कि इस दुनिया में प्रकृति को देखने के दो नजरिए और समूह हैं। एक समूह प्रकृति को संसाधन के तौर पर देखता है जबकि दूसरा समूह प्रकृति में मूल्यों को निहित मानता है और यही समूह डीप इकोलोजी आंदोलन का समर्थक कहलाता है। प्रत्येक जीवित प्राणी में कुछ मूलभूत मूल्य निहित होते हैं और यही मूल्य जीवित प्राणियों के लिए कुछ करने की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य को यह अधिकार नहीं है कि

वह प्रकृति की विविधता और समृद्धता को नष्ट करे बल्कि उसे मात्र इतना अधिकार है कि वह प्रकृति के माध्यम से अपनी आधारभूत जरुरतों को पूरा सके। डीप इकोलोजी आंदोलन के माध्यम से भी नेस का यही मानना था कि मनुष्य को प्रकृति में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

नेस कहते हैं कि दुनिया भर में पर्यावरण के प्रति लोगों में जागरुकता आई है और लोगों ने डीप इकोलोजी आंदोलन के बारे में जाने बिना भी इस क्षेत्र में खासा योगदान दिया है। वे कहते हैं कि पर्यावरण संरक्षण के लिए किए जा रहे सभी आंदोलन डीप इकोलोजी आंदोलन का ही हिस्सा हैं। इसके लिए नेस भारत में चलाए गए चिपको आंदोलन का उदाहरण देते हुए इसकी खासी प्रषंसा करते हैं। वे कहते हैं कि तीसरी दुनिया के देशों में जब भी प्रकृति के संरक्षण के लिए लोग खड़े हुए तो उन्होंने अपने बात को काफी प्रभावी तरीके से सामने रखा और इसके लिए उन्होंने अपनी जान तक की परवाह नहीं की। जैसे चिपको आंदोलन में लोगों ने पेड़ो के साथ चिपकर अपनी जान को खतरे में डाला था। नेस ने यह भी कहा कि डीप इकोलोजी आंदोलन ने हमेशा ही गाँधीवादी तरीकों और सिद्धान्तों को अपनाया।

एक साक्षात्कार में जब अर्ने नेस से यह पूछा गया कि क्यों वे प्रकृति की समृद्धता और विविधता को इतना महत्व देते हैं तो नेस ने बड़ा रोचक जवाब दिया। उन्होंने कहा कि जिन लोगों को अपने बचपन में यह अवसर मिला कि वे प्रकृति की स्वच्छंदता में विचरण कर सकें, उन लोगों के लिए जीवन की गुणवत्ता अधिक मायने रखती है। स्वाभाविक है कि नेस ने भी अपना बचपन प्रकृति की स्वच्छंदता में ही गुजारा था। उन्होंने आगे कहा, जब आप स्वच्छंद प्राकृतिक वातावरण में निवास करते हैं तो आप उसकी समृद्धता और विविधता को बरकरार रखने के लिए प्रेरित होते हैं और आप देखते हैं कि किस प्रकार आप मानवता के लिए एक बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। जब कभी आप उदास होते हैं तो यह प्रकृति ही है जो आपको उदासी से बाहर निकाल सकती है।

डीप इकोलोजी के जरिए पर्यावरण संरक्षण का संदेश देने वाले नेस ने जैव विवधता के साथ सांस्कृतिक विविधता को भी बेहद महत्वपूर्ण माना। उन्होंने कहा कि वे मानव की सांस्कृतिक विविधता को वनस्पति और प्राणी जगत में पाई जाने वाली प्रजातीय विविधता के समकक्ष मानते हैं। नेस ने माना कि जिस प्रकार से प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं उसी प्रकार हर वर्ष बड़ी संख्या में विभिन्न संस्कृतियां भी विलुप्त हो रही है या विलुप्त होने के कगार पर जा पहुंची है| लिहाजा डीप इकोलोजी के दृष्टिकोण से यह सांस्कृतिक विलुप्ता दुनिया के आर्थिक एकीकरण की दिशा में एक बड़ी अड़चन है। नेस कहते हैं कि यदि सभी जगह एक संस्कृति मौजूद होगी तो निश्चित है कि इस पृथ्वी पर मानवीय संभावनाएं बेहद संकुचित हो जाएंगी। वहीं जब हम प्राचीन सांस्कृतिक उपलब्धियों के बारे में पढ़ते हैं तो यह सब हमें असंभव सा जान पड़ता है। यह प्राचीन संस्कृतियां अपने स्वरुप में संक्षिप्त थी और दूसरी संस्कृतियों से भी प्रभावित थी, फिर इन्होंने दूसरी संस्कृतियों को अपने पर हावी नहीं होने दिया। प्राचीन भारतीय संस्कृत संस्कृति भी एक ऐसी ही संस्कृति थी।

पर्यारवण के निरन्तर विनाश को देखकर नेस 21 वीं सदी को लेकर निराशावादी लेकिन 23 वीं सदी को लेकर आशावादी थे। इस आशावाद का कारण वे जनसंख्या नियंत्रण के नतीजों का सामने आना मानते थे। नेस को अपने पर्यावरणवादी कार्यों के लिए दुनिया भर में सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हुई। वर्ष 1975 में उन्हें स्टॉकहोम विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि दी गई, वहीं 1977 में कोपेनहेगन विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। उनके स्वयं के देश नार्वे ने भी उन्हें कई बार सम्मानित और पुरस्कृत किया। गाँधी के अहिंसा के सिद्धान्त को अपना पथ-प्रदर्शक मानने वाले नेस का निधन 12 जनवरी 2009 को 97 वर्ष की आयु में हुआ।

13.3 सारांश

पारिस्थितिकी और व्यक्ति के जीवन में गहरा संबंध है। विकास के लक्ष्य को चयन करने और उसको पूरा करने में प्रकृकि का दोहन बहुत सावधनी से करना होगा। नियोजन और संरक्षण में संतुलन और सावधानी पारिस्थितिकी और विकास में कोई विरोधाभास उत्पन्न नहीं करेगा। पर्यावरण आन्दोलन अपनी इस विचारधारा की प्रबल वकालत करता है कि पारिस्थितिकीय संरक्षण विकास की ओर ले जा सकता है। इनमें से अनेक पर्यावरणविद् और आन्दोलन गाँधीवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित हैं। भारत में चिपको आंदोलन और सुन्दरलाल बहुगुणा और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्ने नेस इसके प्रमुख उदाहरण है।

अर्ने नेस के विचार और कार्य विकास के पूंजीवादी पक्ष के दोषों के प्रति संवेदी बनाता है तथा सीमान्त, जनजातीय तथा स्थानीय स्वदेशी लोगों के लिए गम्भीर चुनौती को बताता है। अर्ने नेस एक उदारवादी पर्यावरणवादी थे, जो यह मानते थे कि प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा तभी हो सकती है जबकि सांस्कृतिक पर्यावरण की रक्षा की जाए। उन्होंने पर्यावरण से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का न केवल उत्तर दिया, बल्कि इस कार्य में अहिंसक प्रयासों को विशेष स्थान दिया। हम उन्हें प्रकृति के प्रति अपने समर्पण के लिए हमेशा याद करते रहेंगे।

13.4 अभ्यास प्रश्न

1. अर्ने नेस के पर्यावरण और उसके संरक्षण संबंधी विचार और कार्यों की विवेचना कीजिए।

2. ड़ीप एकॉलोजी इकोलाजी सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

13.5 अभ्यास प्रश्न

1. अर्ने नेस, इकोलोजी कम्यूनिटी एंड लैफ्स्तइल, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1989

इकाई – 14

जीन शार्प

इकाई रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 जीवन और कार्य

14.3 अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियाँ

14.3.1 औपचारिक वक्तव्य

14.3.2 विशाल श्रोता समूह के साथ संचार

14.3.3 समूह प्रतिवेदन

14.3.4 प्रतिकात्मक सार्वजनिक कार्य

14.3.5 व्यक्तिगत दबाव

14.3.6 नाटक और संगीत

14.3.7 जूलूस निकालना

14.3.8 मृतक सम्मान

14.3.9 सार्वजनिक सभाऐं

14.3.10 वापसी और त्याग

14.4 सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ

14.4.1 लोगों का निर्वासन (निष्कासन)

14.4.1.1 सामाजिक बहिष्कार

14.4.1.2 चुनिंदा सामाजिक बहिष्कार

14.4.1.3 अपघटनीय अ-कार्यवाही (लैसिसट्रेटिक नॉन-एक्शन)

14.4.1.4 बहिष्करण

14.4.1.5 निषेध (प्रत्यारव्यान)

14.4.2 सामाजिक घटनाओं, परम्पराओं व संस्थाओं के साथ असहयोग

14.4.2.1 सामाजिक एवं खेलकुद गतिविधियों का स्थगन

14.4.2.2 सामाजिक मामलों का बहिष्कार

14.4.2.3 छात्र-हड़ताल

14.4.2.4 सामाजिक अवज्ञा

14.4.2.5 सामाजिक संस्थाओं से प्रत्यावर्तन

14.4.3 सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन

14.4.3.1 घर-बैठना (स्टे-एट-होम)

14.4.3.2 पूर्ण-व्यक्तिगत असहयोग

14.4.3.3 श्रमिकों का पलायन

14.4.3.4 आश्रय या पुण्य स्थान

14.4.3.5 सामुहिक तिरोभाव

14.4.3.6 हिजरत या प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास

14.5 सारांश

14.6 अभ्यास प्रश्न

14.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्धेश्य विद्यार्थियों को अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों के बारे में जानकारी प्रदान करना हैं। अहिंसक प्रतिरोध की विविध प्रकार की पद्धतियों का अर्थ और साधन से पाठकों को जागरूक करना है। इस इकाई का उद्धेश्य छात्रों को यह कि-

- जीन शार्प के जीवन और कार्य के बारे में जानकारी देना है
- अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों के बारे में जानकारी देना है।
- सामाजिक असहयोग की प्रमुख पद्धतियाँ कौन-कौन सी है, इसकी जानकारी देना।

14.1 प्रस्तावना

जीन शार्प का दुनिया में अहिंसक संघर्ष पर किए गए अपने कार्यों के लिए जाना जाता है। उनको यह श्रेय दिया जाएगा कि उन्होंने दुनिया के अनेक देशों में आम जनता को अहिंसा की ताकत से परिचित कराया। अहिंसा पर उनके द्वारा किए गए कार्यों ने लाखों लोगों को प्रोत्साहित किया और यही कारण रहा कि हिंसा की ओर उन्मुख लोगों ने भी शार्प के साहित्य को पढ़ने के बाद अहिंसा को संघर्ष का अस्त्र बना लिया। अहिंसक संघर्ष पर किए गए उनके सैद्धान्तिक योगदान का दुनिया की 30 से अधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों जीन शार्प पॉलिटिक्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन वोल्यूम -2 दी मेथोड्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन: गाँधी वील्ड्स द वैपन आफ मोरल पॉवर, 'वेजिंग नॉनवायलेन्ट स्ट्रगलस 20^{यथ} सेंचुरी प्रैक्टिस एंड 21$^{फस्ट}$ सेंचुरी पोटेंशियल, इत्यादि लोकप्रिय हैं और किसी एक देश तक सीमित नहीं है। सर्बिया से लेकर यूक्रेन तक में हुए अहिंसक और लोकतांत्रिक आंदोलनों की सफलता के पीछे जीन शार्प का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। यही नहीं, हाल ही मिश्र में हुए लोकतंत्र समर्थक आंदोलन के दौरान भी प्रदर्शनकारियों ने शार्प की अहिंसक विषय पर लिखी गई पुस्तकों से प्रेरणा पाई और तहरीर चैक पर यह प्रदर्शनकारी टैंकों के पीछे टार्च की रोशनी में जीन शार्प की पुस्तकें पढ़ते देखे गए।

उन्होंने अहिंसा को नित नए रुपों में ढाला और उन्हें बेहद प्रैक्टिकल बनाया। वे बताते हैं कि अहिंसक कार्यवाही पद्धतियों में विरोधी के साथ व्यापक रूप से असहयोग जुड़ा होता हैं। संघर्ष में सलंग्न व्यक्ति विभिन्न गतिविधियों, संस्थाओं या व्यवस्थाओं के साथ असहयोग की कार्यवाही करते वक्त इनसे सोच-समझकर स्वयं

को अलग कर लेते हैं। वे निश्चित उत्पादनों को खरीदने से या कार्यों को करने से मना करते हैं। वे उन कानूनों को, जिन्हें वे अनैतिक मानते है, का आज्ञापालन से मना कर सकते हैं, धरने पर बैठ सकते है या कर चुकाने से मना कर सकते हैं। वे अपने सामान्य सहयोग में कमी करके अपने संघर्ष को संचालित करते हैं या सहायता के नये रूपों के अनुसमर्थन नहीं करके या दोनों प्रकार से, सामान्य गतिविधियों को धीमी या ठप्प कर देते हैं। यह कार्यवाही स्वतः प्रवर्तित या नियोजित हो सकती है और यह कानूनी या गैर-कानूनी भी हो सकती हैं। जीन शार्प ने बताया है कि असहयोग की पद्धतियों में सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ (सामाजिक बहिष्कार) आर्थिक असहयोग की पद्धतियाँ (आर्थिक बहिष्कार एवं हडताल) तथा राजनीतिक असहयोग की पद्धतियाँ (राजनीतिक बहिष्कार) शामिल होती है।

शार्प का मुख्य संदेश यही है कि तानाशाही की शक्ति शासित लोगों की आज्ञाकारिता से मिलती है, और यदि लोग सहमति की अपनी शक्ति पर विराम लगा दें तो शासन शीघ्र ही विखण्डित हो जाएगा। वर्षों से जो लोग तानाशाह शासन के अधीन रह रहे हैं, उनके लिए जीन शार्प के पास सलाह के लिए आना तीर्थयात्रा पर आने के समान है क्योंकि शार्प के लेखन ने दुनिया के लाखो-करोड़ों लोगों को यह शक्ति दी है कि वे हिंसा का सहारा लिए बिना अहिंसक तरीकों से स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो सकें। शार्प कहते हैं, ‘जब लोग मेरे पास आते हैं तो वे थोड़ा आश्चर्यचकित होते हैं क्योंकि मैं उनसे यह नहीं कहता कि उन्हें क्या करना है बल्कि यहां वे स्वंय ही सीख जाते हैं कि कैसे अहिंसक संघर्ष कार्य करेंगे, लिहाजा वे स्वयं इसका प्रयोग कर लेते हैं।’

14.2 जीवन और कार्य

जीन शार्प का जन्म ओहियो के उत्तरी बाल्टीमोर नामक प्रांत में 21 जनवरी 1928 को हुआ। उनके पिता भ्रमणशील प्रोटेस्टेन्ट थे। उन्होंने वर्ष 1949 में ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी से सामाजिक विज्ञान में स्नातक और वर्ष 1951 में इसी विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। वर्श 1953-54 में कोरिया से युद्ध के लिए सैनिकों की अनिवार्य भर्ती का विरोध करने के कारण उन्हें नौ माह की सजा हुई। वर्श 1968 में शार्प को राजनीतिक सिद्धान्त विषय पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से पीचडी की उपाधि प्राप्त हुई। शार्पवर्श 1972 में यूनिवर्सिटी आफ मैसाचुसेट्स डार्टमाउथ में राजनीतिक विज्ञान विषय के प्रोफेसर नियुक्त हुए और तब से इसी विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं। जीन शार्प ने दुनियाभर के विवादों का समाधान अहिंसक तरीकों से करने के उद्देष्य से अहिंसक कार्यों के अध्ययन और प्रोत्साहन के लिए वर्ष 1983 में अलबर्ट आइंस्टाइन इंस्टीट्यूट नामक एक गैर सरकारी संगठन की स्थापना की। वर्ष 2009 और 2012 में शार्प को नोबेल षांति पुरस्कार के लिए नामांकित भी किया गया।

जीन शार्प की पहली पुस्तक वर्ष 1960 में प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक ‘गाँधी वील्ड्स द वैपन ऑफ मोरल पॉवर (थ्री केस हिस्ट्रीज)’ था। इस पुस्तक की प्रस्तावना प्रख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाइन ने लिखी थी।

शार्प ने अपने विचारों के पीछे महात्मा गाँधी और हेनरी डेविड थोरो सहित अन्य स्त्रोतों के गहन अध्ययन को आधार माना। इसकी चर्चा उन्होंने 1973 में लिखी अपनी पुस्तक, ‘द पॉलीटिक्स आफ नॉनवायलेन्ट एक्शन’ में भी की, जो उनकी पीएचडी थीसिस पर आधारित थी। अपनी इस पुस्तक में शार्प ने तीन अध्याय नागरिक अवज्ञा पर केन्द्रित किए। शार्प ने वर्ष 2005 में ‘वेजिंग नॉनवायलेन्ट स्ट्रगलस 20यथ सेंचुरी प्रैक्टिस एंड 21फस्ट सेंचुरी पोटेंशियल’ पुस्तक प्रकाशित की। विश्व के जिन स्थानों पर अहिंसक कार्यवाहियों का प्रयोग किया गया था, शार्प ने उन सभी की केस स्टडी तैयार की और इस पुस्तक में उन्हीं केस स्टडीज को शामिल किया गया। जीन शार्प के विश्वव्यापी कार्यों और उसके प्रभावों पर स्कॉटलैण्ड के निर्देशक रुआरिड एरो ने ‘हाउ टू स्टार्ट ए रिवोल्यूशन’ नामक एक वृत्तचित्र का निर्माण किया जिसे सितम्बर 2011 में रिलीज किया गया। इस वृत्तचित्र ने बोस्टन फिल्म फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ वृत्तचित्र सहित ‘द मॉस इंम्पेक्ट अवॉर्ड’ जीता।

शार्प की सबसे लोकप्रिय पुस्तक ‘फ्राम डिक्टेटरशिप टू डेमोक्रेसी’ बर्मा के लोकतंत्र समर्थक आंदोलन और इसकी नेता आंग सान सू की की गिरफ्तारी के बाद वर्ष 1993 में लिखी गई। अब तक इस पुस्तक का 31 भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। बर्मा में पुस्तक की लोकप्रियता बढ़ने के बाद इसकी प्रशंसा थाईलैंड से लेकर इंडोनेशिया तक फैली, जहाँ इसके आधार पर आम जनता सैनिक तानाशाही का विरोध करने के लिए सड़कों पर उतरी। इसके बाद पूर्वी यूरोप, दक्षिण अमरीका और मध्य पूर्व में हुई लोकतंत्र समर्थक आंदोलनों में भी शार्प लिखित इस पुस्तक का विशेष योगदान रहा।

अपनी ऐतिहासिक पुस्तक ‘फ्राम डिक्टेटरशिप टू डेमोक्रेसी’ लिखने के पीछे की कहानी बताते हुए शार्प कहते हैं कि इस पुस्तक को लिखने के लिए उनसे बर्मा के निर्वासित लोगों ने आग्रह किया था जिसे वे ठुकरा ना सके। हालांकि शार्प मानते हैं कि यह पुस्तक लिखना एक चुनौतिपूर्ण कार्य था क्योंकि वे बर्मा, वहां के समाज आदि के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते थे। वे कहते हैं कि जब आप किसी संघर्ष की योजना बनाते हैं तो आपको एक रणनीति तैयार करनी पड़ती है, एक विस्तृत योजना बनानी पड़ती है। आपको अहिंसक आंदोलनों और वहां के समाज के बारे में समझ विकसित करनी होती है। बर्मा के बारे में मुझे यह समझ नहीं थी इसलिए मैंने अहिंसा की अपनी समझ, तानाषाही के पिछले कुछ अनुभवों के अध्ययनों के आधार पर एक सामान्यज्ञ पुस्तक लिखने का विचार बनाया। इसके लिए हमने बर्मा में दो कार्यषालाएं भी आयोजित की।

शार्प की यह पुस्तक बैंकाक से बर्मीज और अंग्रजी दोनों भाशाओं में प्रकाशित हुई और इसके प्रकाशित होते ही बर्मा की सैनिक तानाशाही बेहद घबरा गई और उन्होंने शार्प को इस कार्य के लिए दोषी ठहराते हुए समाचार पत्रों, रेडियो और टेलीविजन में उनकी निंदा करना शुरु कर दिया। इसके बाद शार्प अन्य चार क्षेत्रीय भाषाओं में इसका अनुवाद कराने में सफल रहे। शार्प के इस कदम से बर्मा की सरकार बेहद भयभीत हो गई और वह इस कार्य से जुडे लोगों को प्रताड़ित करने लगी। शार्प बताते हैं कि कैसे हाल ही में उनकी इस पुस्तक की कॉपी करने के आरोप में चार लोगों को सात वर्ष की कारावास की सजा दी गई।

शार्प ने अपनी पुस्तक में 198 अहिंसक शस्त्रों की सूची प्रस्तुत की जिसमें रंगों और चिन्हों के प्रयोग से लेकर बहिष्कार तक के तरीके शामिल हैं। उन्होंने अहिंसा की इन तकनीकों को सेना के शस्त्रों के समक्ष माना। शार्प की यह तकनीकें इतिहास में तानाशाही को दी गई चुनौती या उसकी अवज्ञा से जनित परिणामों के अध्ययन पर आधारित थी। शार्प ने इन अहिंसक तकनीकों के बारे में कहा कि 'यह अहिंसक तकनीकें बेहद महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह आमजन को विकल्प उपलब्ध कराती हैं।' उन्होंने आगे कहा कि, 'यदि आमजन के पास यह तकनीकें नहीं हैं, और यदि वे यह नहीं जानते कि वे बेहद शक्तिशाली हैं तो वे हरेक बार युद्ध और हिंसा की ओर आकर्षित होंगे।' इरान में वर्ष 2009 में हुई ग्रीन क्रान्ति के बारे में भी कहा जाता है कि इसमें प्रदर्शनकारियों ने शार्प द्वारा बताई गई 198 तकनीकों में से 100 तकनीकों का प्रयोग किया।

जीन शार्प के लिए अहिंसा का अर्थ विरोध के वैकल्पिक तरीकों की खोज कर उनका शांति के लिए प्रयोग करना था। अहिंसा की ओर उनका झुकाव कैसे हुआ? यह पूछने पर शार्प कहते हैं, 'दुनिया को संकट में घिरता देख मेरी अहिंसा के वैकल्पिक तरीकों में दिलचस्पी जागी और मेरे सामने गाँधी का भी उदाहरण था जो अहिंसा का सफलतापूर्वक प्रयोग कर चुके थे।' शार्पआगे कहते हैं, 'उस दौर में विश्व के सामने कई चुनौतियां थीं। द्वितीय विश्व युद्ध अभी समाप्त ही हुआ था। परमाणु अस्त्रों का निर्माण होना शुरु हो गया था और संयुक्त राज्य अमरीका हाइड्रोजन बम बनाने लगा था। इसके अलावा संयुक्त राज्य में जातीय वैमनस्य बढता ही जा रहा था। साथ ही यूरोपीय औपनिवेशिक शासन भी अपनी जगह बरकरार था। ऐसे समय में मैंने ऐसी वैकल्पिक तकनीकें खोजने में स्वयं को लगाया जिसे मैं दुनिया में संघर्षों की रोकथाम और शांति स्थापना के लिए इस्तेमाल कर सकूं। यह सब वैकल्पिक तकनीकें मैं अहिंसक सिद्धान्तों में पा सका।'

पिछले कुछ दशकों में अहिंसक विरोध के सबसे सफल उदाहरणों के बारे में पूछने पर शार्प कहते हैं कि, पिछले दशकों में दुनिया में कई ऐसे आंदोलन हुए जिनमें अहिंसा के हथियार का बखूबी इस्तेमाल हुआ। इसके लिए वे एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि कैसे अहिंसक तकनीकों का प्रयोग कर इन तीनों देशों ने अपने को सोवियत संघ के कब्जे से मुक्त कराया। वे कहते हैं कि बिना हथियार उठाए और बिना कोई युद्ध लड़े एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया सोवियत संघ से अपने को स्वतंत्र करा सके। इस आंदोलन के दौरान लिथुआनिया में 12 और लाटविया में 7 लोगों की जान गई, जबकि एस्टोनिया में किसी की जान नहीं गई, जबकि इससे पूर्व भी यह राष्ट्र अपने को स्वतंत्र कराने के लिए गुरिल्ला युद्ध लड़ चुके थे जिसमें सैंकड़ों लोगों ने अपनी जान गंवाई थी, फिर भी इन्हें कामयाबी नहीं मिल सकी थी। इसके अलावा पौलेंड, चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, सर्बिया और यूक्रेन आदि देशों ने भी मुक्ति का अहिंसक मार्ग अपनाया और सफलता पाई।

शार्प का मानना था कि जो लोग अहिंसा के धार्मिक दृष्टिकोण के समर्थक हैं, वे इस तकनीक का व्यावहारिक प्रयोग करने में हिचकते हैं, वहीं कुछ ऐसे लोग भी हैं जो संघर्षों में अहिंसा का प्रयोग कर रहे हैं। यह वह लोग हैं

जो नहीं मानते कि अहिंसा एक आदर्श है और जिसका व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जा सकता। शार्पकहते हैं कि भारत में भी स्वतंत्रता संघर्ष में भागीदारी करने वाले अधिकांश लोग धार्मिक सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करते थे, फिर भी उन्होंने अहिंसा का इस्तेमाल किया। जीन शार्प कहते हैं कि, यही कारण है कि भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उन लोगों ने भी अहिंसक तरीकों का प्रयोग किया जो इसमें यकीन नहीं करते थे। मैंने भी गाँधी से यही सीखा।

14.3 अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियाँ

14.3 अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियाँ

जीन शार्प ने अपनी पुस्तक प्रोटेस्ट एण्ड पर्सुएशन में अहिंसक प्रतिरोध और अनुनय के चैवन तरीके बताये है जो इस प्रकार है-

14.3.1 औपचारिक वक्तव्य

सामान्यतया लिखित और मौखिक होता है चाहे वे एक व्यक्ति, समूह या संस्था के द्वारा दिये गये हों। वे साधारणतया मत, विमत या इरादे की मौखिक अभिव्यक्ति होते है न कि अहिंसक प्रतिरोध या समझाईस के तरीके। हालांकि कुछ निश्चित परिस्थतियों में दिये गये ऐसे वक्तव्य जो सामान्य प्रभावों की तुलना में ज्यादा प्रभावकारी होते है, चाहे वे राजनीतिक परिस्थितियों में दिये गये वक्तव्य हो या ना हों, उनको अहिंसक प्रतिरोध के रूप में माना जाता हैं। ऐसे वक्तव्य मुख्य रूप से किसी मामलें, व्यवस्था, नीति या शासन के पक्ष में या विपक्ष में हो सकते है। इनमें वक्तव्यों के कई रूप शामिल हैं और इनके आधार पर हम छः विशेष पद्धतियों में भेद कर सकते है, जो इस प्रकार है-

14.3.1.1 सार्वजनिक भाषण- कुछ सार्वजनिक भाषण अहिंसक प्रतिरोध के महत्वपूर्ण तरीके बन जाते हैं वे कुछ अप्रत्याशित स्थितियों में एकाएक उत्तेजना भर सकते है। वे औपचारिक भाषण हो सकते है या वे धार्मिक सेवाओं के दौरान दिये गये उपदेश हो सकते है। उदाहरण के लिए 1934 में हिटलर ने चांसलर के पद पर रहते हुए गठबंधन सरकार में अल्पसंख्यक होते हुए भी ऐसा भाषण दिया।

14.3.1.2 विरोध या समर्थन के शब्द- इस वर्ग की पद्धति के रूप में शब्द कई रूप ले सकते है। इनमें मुख्य रूप से निजी शब्द शामिल होते है जो एक व्यक्ति या निकाय को एक विशेष राजनैतिक दृष्टिकोण या इरादों की घोषणा के बारे में बताने या समझाने के लिए कहे जाते हैं। यह शब्द व्यक्तिगत रूप में या समूह के रूप में हो सकते हैं। इन्हें सार्वजनिक भी किया जा सकता है, जो मुख्य रूप से आम जनता को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले होते हैं।

14.3.1.3 सगंठनों और संस्थाओं द्वारा घोषणाएं- ऐसी घोषणाओं का एक रूप ग्वालगीत शब्दों और समान चर्च के पदाधिकारियों के वक्तव्यों के रूप में होते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में, अगस्त और सितम्बर 1942 में यहूदियों के वापसी के विरोध में विरोधी घोषणाएं हुई जिन्हें चर्च के पादरियों द्वारा पढ़ा गया था।

14.3.1.4 महत्वपूर्ण सार्वजनिक वक्तव्य- एक घोषणा जो मुख्य रूप से आम जनता को निर्देशित होती है, या सार्वजनिक और विरोधी दोनों को, और समर्थको के हस्ताक्षरों के साथ जारी होती हैं। यह अहिंसक प्रतिरोध की एक पद्धति हैं। यह हस्ताक्षर विशेष सगंठन, व्यवसायों या आजिविकाओं से जुड़े लोगों के हो सकते हैं या समाज के विविध भागों के लोगों के हो सकते हैं।

14.3.1.5 अभियोग पत्र एवं इरादों की घोषणाएं- शिकायत के निश्चित लिखित अभिकथनों या नई स्थिति उत्पन्न करने के भावी इरादो या दोनों का समिश्रण ऐसी योग्यता दिखाता है या ऐसी प्रतिक्रिया को पूरा करता है जो लोगों की निष्ठाओं और व्यवहार को प्रभावित करने वाला प्रभावकारी तत्व बन जाता हैं। ऐसी एक घोषण अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा थी जो 4 जुलाई 1776 में कांग्रेस द्वारा स्वीकार की गई थी।

14.3.1.6 समूह या जनयाचिकाएं- समूह या जनयाचिकाएं जनता की एक विशेष शिकायत का निपटारा चाहने हेतु लिखित रूप में प्रार्थना होती है जो बड़ी संख्या में लोगों द्वारा हस्ताक्षरित होती है या सगंठनो, संस्थाओं या निर्वाचन क्षेत्रों के विश्वास पर काम करने वाले थोड़े से लोगों की ओर से हस्ताक्षर कर दायर की जाती है या इस तरह की याचिकाओं के उदाहरण सर्वप्रथम रोमन साम्राज्य में देखने को मिलते हैं।

14.3.2 विशाल श्रोता समूह के साथ संचार

इस समूह की कई पद्धतियाँ विशाल जनसमूह को विचारों और दृष्टिकोणों से अवगत कराने और उनकी सूचना देने के लिए निर्मित की गई है। इसका उद्धेश्य विरोधी समूह को प्रभावित करना, सहानुभूति ग्रहण करना और तृतीय पक्ष से समर्थन हासिल करना या लाभों का रूपांतरण करना हो सकता हैं। इसमें शामिल छः दृश्य और मौखिक रूप की पद्धतियाँ इस प्रकार हैं-

14.3.2.1 नारे, प्रतीक और व्यंग्यचित्र- नारेबाजी, व्यंग्यचित्र और प्रतीक अहिंसक प्रतिरोध के बहुत आम रूपों में से है, वे लिखित, चित्रित, मुद्रित, भाव-भंगिमा या मौखिक हो सकते हैं। 1941 की गर्मी से लेकर मई 1942 तक बर्लीन में यहूदी युवाओं के समूह ने बिना किसी गिरतारी के इस तरह की गतिविधियों को जारी रखा।

14.3.2.2 बैनर्स, पोस्टर्स और डिस्प्ले संचार- बेनर्स, पोस्टर्स और डिस्प्ले जैसे संचार के साधन लिखित, मुद्रित या चित्रित जैसे साधनों के समान ही होते है लेकिन इनकी श्रैणियों में व्यापक विविधता होती हैं। 4 दिसम्बर 1916 को राष्ट्रपति विल्सन द्वारा कांग्रेस के सम्बोधन के दौरान एक महिला मताधिकार सगंठन की पाँच

महिलाओं ने पीले रंग का बैनर गैलेरी में खड़े होकर कांग्रेस प्रतिनिधियों को दिखाया और कहा कि मिस्टर पे्रसिडेंट आप महिला मताधिकार के लिए क्या करेंगे?

14.3.2.3 पैम्फ़लेट, किताबे और इश्तहार- इश्तहारों, पैम्फलेटों या किताबों का प्रकाशन और वितरण के द्वारा एक विशेष या आम नीतियों या एक शासन व्यवस्था के विरूद्ध अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए अहिंसक कार्यवाही की एक मुख्य पद्धति बन गया हैं। इश्तहारों का वितरण विमत समूह के द्वारा संचार हेतु सबसे ज्यादा आम पद्धति के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाला तरीका हैं। अमेरिका की आजादी की घोषणा के समारोह के दौरान महिला मताधिकार समूह के द्वारा इस तरह के इश्तहार वितरित किये गये थे। गाँधी ने भी इन पर बहुत बल दिया।

14.3.2.4 समाचार पत्र और जर्नलस- समाचार पत्रों और जर्नलस, कानूनी और गैरकानूनी दोनों सामाजिक और राजनीतिक संघर्षो के सम्पूर्ण इतिहास में नियमित रूप से प्रकट हुए हैं। प्रकाशकों के कार्यो और मतो को बढ़ावा देने के रूप में, 19वीं और 20वीं सदी के आरम्भ में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन में अवैध समाचार पत्रों और जर्नलस के प्रकाशन और वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। गाँधी ने भी दक्षिण अफ्रिका मे सत्याग्रह को बढ़ावा देने के लिए इंण्डियन ओपिनियन और बाद में भारत में आकर यंग इंड़िया नामक समाचार पत्र शुरू किया।

14.3.2.5 प्रलेखों, रेड़ियों और दूरदर्शन- कुछ विशेष परिस्थितियों में रेडियों टेलिविजन और अभिलेख और समझाईस के महत्वपूर्ण साधन बन जाते हैं। फोनोग्राफ द्वारा की गई रिकार्डिंग संगीत, भाषण या घोषणाओं के द्वारा विचारों को आम जनता तक पहुँचाने और समझाने का महत्वपूर्ण साधन बन जाता हैं। 1960 के दशक में अमेरिका में रॉक म्यूजिक ने विमति और असंतुष्टि के बारे में जाकरूकता को बढ़ाया।

14.3.2.6 आकाश और भूतल पर लेख- यह शब्दों या प्रतीकों के द्वारा सुदूर लोगों को असाधारण माध्यम से विचारों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। स्काइ राइटिंग 15 अक्टूबर 1969 में हवाई जहाज के द्वारा प्रयुक्त किया गया था। वियतनाम युद्ध के विरूद्ध निकाली गई रैली के ऊपर आकाश से आणविक निशस्त्रीकरण के प्रतीक गिराये गये थे जो कि बाद में बोस्टन में आम घटना बन गई थी।

14.3.3 समूह प्रतिवेदन

समूह के द्वारा कुछ नीतियों के विरूद्ध या उसके पक्ष में प्रतिवेदन दिया जा सकता हैं, विविध रूपो में। इस श्रैणी की अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों में शामिल तरीके इस प्रकार हैं-

14.3.31 प्रतिनिधिमण्डल- एक सगंठन या नागरिकों के द्वारा अपनी विशेष शिकायत दर्ज कराने के लिए कुछ चुनिंदा लोगों या प्रतिनिधियों के द्वारा अपना विरोध अभिव्यक्त किया जा सकता हैं। कई अवसरों पर नये

मापदण्ड अपनाने या नई नीतियों का अनुसरण करवाने के लिए प्रतिनिधि मण्डल भेजे जा सकते हैं। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उदारवादियों ने पद्धति के इस रूप का बार-बार अनुसरण किया था।

14.3.3.2 छदम् पुरस्कार- उपहासात्मक पुरस्कार विरोधियो की शिकायतो को सार्वजनिक करने के क्रम में दिये जा सकते हैं और ये उपहार प्राप्तकर्ता से अपील करते है कि वह शिकायतो को ठीक करे। उदाहरण के लिए नवम्बर 1969 में अमेरिका के मैसाचूसेटस में आद्योगिक प्रदूषण पर सुनवाई के समय बोस्टन ऐडिशन कम्पनी को पोल्यूटर ऑफ द मन्थ का सम्मान दिया गया।

14.3.3.3 समूह लोब्बियंग- लोब्बियंग संसदीय प्रतिनिधि से व्यक्तिगत मुलाकात कर संसद और विधानसभा में मतो को प्रभावित करने का प्रयास से किया जाता हैं। सामान्यतः यह मत का मौखिक अभिव्यक्ति होती है जब एक समूह के द्वारा कार्यवाही यह प्रक्रिया की जाती है। यह अहिंसक कार्यवाही का एक रूप बन जाता है, और जब लोगों का एक बड़ा समूह लोब्बियंग के क्रम में एकत्रित होते है तो एक प्रदर्शन का रूप ले लेता हैं। यह पद्धति अमेरिका में सबसे अधिक प्रचलित है।

14.3.3.4 पिकेटिंग- यह दूसरों को एक विशेष कार्य करने या न करने को समझाने का तरीका है, या यह एक पद्धति है जिसके द्वारा एक प्रश्न में अंतर्निहित मामले के संदर्भ में व्यक्ति भौतिक रूप से एक स्थान विशेष पर एकत्रित होते है। यह खड़े रहकर, बैठकर या आगे-पिछे चल कर संचालित हो सकती हैं। इसमें दूसरे लोगों के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पिकेटर बातचीत कर सकते है या नहीं भी कर सकते हैं।

14.3.3.5 छदम्-चुनाव- यह समूह प्रतिवेदन का आखिरी पद्धति है इसमें विरोधी समूह प्रतिरोध के एक साधन के रूप में संबंधित शिकायत या मामले पर प्रत्यक्ष्य या कानूनोत्तर चुनाव करवाते है, इसमे घर-घर जाकर लोगों को मत ड़ालने के लिए पे्ररित किया जाता है और एक विशेष प्रकार की पोलिंग होती हैं। इस पद्धति का प्रयोग बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक दोनों के द्वारा ही किया जा सकता हैं। विशेषकर के जब उन्हें नियमित संवैधानिक निर्वाचन तंत्र में भाग लेने से रोक दिया जाए।

14.2.4 प्रतीकात्मक सार्वजनिक कार्य

इस पद्धति के तहत अहिंसक तरीके से लोग अपने मतो या शिकायतों को अभिव्यक्त करते हैं, जिसमें बहुत सारी कार्यवाहियां शामिल है, जो इस प्रकार है-

14.2.4.1 ध्वजो व प्रतीकात्मक रंगो का प्रदर्शन- एक राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक समूह के ध्वज का प्रदर्शन, या एक समूह के रंगो का प्रदर्शन या ध्वज और रंग के साथ अन्य प्रतीको का प्रयोग अहिंसक प्रतिरोध का एक आम तरीका है। इस तरह के प्रदर्शन से लोगों की आंतरिक भावनाएं प्रेरित होती हैं। भारत में

26 जनवरी 1930 को जब पहला स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया तो बड़ी संख्या में राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान में पदर्शन और समारोह आयोजित किये गये।

14.2.4.2 प्रतीको का धारण करना या पहनना- यह किसी राजनीतिक विरोध को व्यक्तियों द्वारा कपड़े, रंग, बिल्ला, फूल या इसी तरह की अन्य वस्तु को धारण कर अभिव्यक्त किया जाता हैं उदाहरण के लिए 1972 की शरद ऋतु के दौरान आजादी की लाल टोपी सेंसकुलोटर्स के बीच फैशन बन गया था। इसी प्रकार भारत में कांग्रेस विचारधारा के समर्थक गाँधी टोपी को धारण करते हैं।

14.2.4.3 प्रार्थना और पूजा- प्रार्थना और पूजा इस लिए आयोजित की जाती है ताकि सहभागियो के द्वारा नैतिक निंदा और राजनीतिक प्रतिरोध को धार्मिक तरीके से अभिव्यक्त किया जा सकें। यह प्रार्थना या पूजा सेवा के तत्वों के द्वारा स्प्ष्ट रूप से किया जाता है, जिस स्थान पर प्रार्थना की जाती है या जिस दिन की जाती है वह तात्कालिक परिस्थितियां पर निर्भर करता हैं।

14.2.4.4 प्रतीकात्मक वस्तुएं प्रदान करना- ऐसा कार्य एक वस्तु को प्रदान कर एक शिकायत के रूप में या सरकार और सरकार से जुड़े मामलो के उद्देश्यों को विरोधियों के द्वारा प्रतीकात्म्क रूप से अभिव्यक्त किया जाता हैं। सोवियत आणविक शस्त्रों के परिक्षण के विरूद्ध अक्टूबर 1961 में लंदन में 1000 समर्थकों की समिति के द्वारा दूध की हजारों बोतलो पर डेंजर-रेडियों एक्टिव का लेबल लगाकर विरोध जताया।

14.2.4.5 कपड़े उतार कर प्रतिरोध करना- कपड़े उतारकर किसी राजनीतिक या धार्मिक मामले के संबंध में अपना मत या विमति को अभिव्यक्त करने का तरीका पुराना है। यह अहिंसक प्रतिरोध का एक तरीका है जिसका प्रयोग अहिंसक कार्यवाही समर्थक लोगों ने कई बार किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में युद्ध विरोधी और सामाजिक प्रतिरोध आंदोलन के समर्थक युवाओं ने हाल के वर्षो में इस पद्धति का बहुत अनुसरण किया।

14.2.4.6 निजी सम्पति का विनाश- यह अहिंसक प्रतिरोध का एक असाधारण तरीका हैं जिसमें विरोध के प्रति अपनी भावना का प्रदर्शन करने के क्रम में स्वैच्छिक रूप से व्यक्ति अपनी निजी सम्पति का विनाश करते है। जहाँ कहीं विनाश का कार्य सभी लोगों के लिए खतरनाख रूप धारण करता है तो वहां से लोगों को सुरक्षित रूप से हटा दिया जाता है ताकि किसी को शारिरिक रूप से नुकसान न पहुँचे। जुलाई 1770 में न्यूयोर्क के व्यापारियों ने ब्रिटिश उपनिवेश की ब्रिटिश वस्तुओं के गैर आयात की आम नीति के विरोध में इस पद्धति का अनुसरण किया था।

14.2.4.7 प्रतीकात्मक प्रकाश- मशाल और मोमबत्तियां प्रायः परेड के दौरान प्रतिरोध करने में प्रयुक्त की जाती है और कभी-कभी इनका प्रयोग प्रतिरोध गतिविधियों के अन्य प्रकारों में भी प्रयोग किया जाता हैं। 19 जनवरी 1969 को सोवियत आक्रमण के विरोध में जान पलाच ने विरोध करते हुए अपने आपको जलाया लिया था।

14.2.4.8 कलाकृतियों का प्रदर्शन- इस प्रतिरोध की पद्धति में प्रतिरोध करने वाले नेताओं या लोगों की तस्वीरों का प्रदर्शन किया जाता है ताकि दूसरे लोगों की राजनीतिक निष्ठाओं का प्रयोग एक साधन के रूप में आंदोलन के उद्धेश्यों और प्रतीको को दूसरे लोगों को समझाया जा सकें। 1930-31 में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान लोगों ने घरों और दुकानों पर गाँधी और नेहरू के चित्रों का प्रदर्शन किया।

14.2.4.9 प्रतिरोध के रूप में चित्रकारी- कभी-कभी चित्रकारी को प्रतिरोध के साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं। पूर्वी जर्मनी में इस पद्धति का बहुत प्रयोग हुआ। इसमें व्यक्ति अपने शरीर के किसी अंग पर चित्रकारी करवाकर दूसरे लोगों का अपनी ओर ध्यान आकृषित करते है।

14.2.4.10 नये नाम और प्रतीक- विरोध प्रदर्शन के तरीके कभी पुराने सड़कों व गलियों, स्थानों आदि के नाम बदलने तथा उनके नये नाम रखने के लिए किए जाते हैं।

14.2.4.11 प्रतीकात्मक आवाजें- मौखिक या यांत्रिक आवाजें भी संघर्ष की स्थिति में विचारों को समझाने में प्रयुक्त की जाती हैं। प्राचीनकाल से ही घंटियां नगाड़े बजाकर इस तरीके को काम में लिया जाता रहा हैं।

14.2.4.12 कठोर भाव-भंगिमा- कठोर भाव-भंगिमा और व्यवहार के कई तरीके उपलब्ध है जिनके द्वारा दूसरों की बेइज्जती की जाती है। यह कभी-कभी राजनीतिक दशाओं में और यहां तक की अंतर्राट्रीय संघर्षो की स्थितियों में भी प्रयुक्त किए जाते हैं। इसका एक उदाहरण जनवरी 1967 में रूस चीन संघर्षो के दौरान देखने को मिलता हैं।

14.2.4.13 प्रतीकात्मक भूमि- कुछ विशेष प्रकार के प्रतिरोध एक भू-भाग के स्वामित्व या उसके उपयोग के मामले में विवाद को समाप्त करने के लिए इस पद्धति को काम में लेते है जिसमें उस भू-भाग पर बीज रोपण किया जाता है, पेड़ पाधे लगाये जाते है, बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया जाता है, इमारतों का निर्माण किया जाता हैं।

14.2.5 व्यक्तियों पर दबाव

विरोधी समूह के व्यक्तिगत सदस्यों पर दबाव डालने का प्रयास कई पद्धतियों में किया जाता हैं, चाहे वे सरकारी अधिकारी हो या सामान्य सेवक। यह उपाय प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति विशेष या लोगों के समूह के विरूद्ध हो सकते हैं या व्यक्तियों पर दबाव के रूप में प्रयुक्त हो सकते है जो कि बड़े निकाय का एक भाग होते है, जैसे सेना के लोग। इसमें शामिल कार्यवाहियां इस प्रकार हैं-

14.2.5.1 सरकारी अधिकारियों को तंग करना- सरकारी अधिकारियों को उनके अनैतिक व्यवहार के बारे में स्मरण कराने हेतु अहिंसक प्रतिरोध के आंदोलन के साधन के रूप में सरकारी अधिकारियों को तंग करना

शामिल होता हैं। इसका अनुसरण करने वाले लोग दृढ़ निश्चय और निर्भीक होते है जो स्वैच्छिक रूप से सरकारी अधिकारियों को उनके अनैतिक कार्यो को रोकने का दबाव बनाते है। भारत में 1928 के बारदोली सत्याग्रह के दौरान इस कार्यवाही का प्रयोग किया गया था।

14.2.5.2 सरकारी अधिकारियों पर टिप्पणियां करना- इस कार्यवाही के तहत् मौन रूप से या गरिमामय व्यवहार का बिना ध्यान रखे लोगों के द्वारा सरकारी अधिकारियों की छदम् रूप से या प्रकट रूप से बेईज्जती की जाती है ताकि वे समाज विरोधी अनैतिक कार्यों को करने से बाज आये। 1942 की गर्मियों में हनोन, चीन में इस पद्धति का प्रयोग किया गया था।

14.2.5.3 भ्रातृत्वीकरण- सैनिको या पुलिस का सामाजिक बहिष्कार के विकल्प के रूप में उनके साथ (विरोधी) भ्रातृत्व भाव को बढ़ावा देने की प्रक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लोगों पर गहरा प्रभाव छौडती है। इसमें प्रतिरोधक सैनिकों के साथ व्यक्तिगत मित्रता करते हैं, उनको यह बताते है कि शासक के उद्धेश्य सद्भावनापूर्ण नहीं है, सैनिकों को समझाते है कि इससे समाज के उद्धेश्य प्रभावित होंगे और जनता के लिए शासन की नीतियों के बारे में जानकारी देते हैं। 1956 की हंगेरियन क्रांति इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

14.2.5.4 रात्रि जागरण- सामान्य रूप से न केवल एक या कुछ लोगों को सम्बोधित होता बल्कि यह कई लोगों से अपील करता हैं। धरने के समान रात्रि जागरण में लोग एक स्थान विशेष पर बने रहते हैं और अपने मत को अभिव्यक्त करने का साधन बनता हैं। जहाँ धरना एक लम्बे समय के लिए होता हैं जबकि रात्रि जागरण अल्प समय या कुछ घंटों के लिए होता हैं। 1917 में निदरलैंण्ड की महिलाओं ने उस बिल्डिंग के बाहर धरना दिया जहाँ उस देश के संविधान का प्रारूप तैयार हो रहा था, जिसमें उन्होंने महिला मताधिकार का उपबंध करने की मांग की थी।

14.2.6 नाटक और संगीत

अहिंसक प्रतिरोध और समझाईश की कार्यवाही में नाटक और संगीत की पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रयुक्त संभव पद्धतियाँ इस प्रकार हैं-

14.2.6.1 हास्यकार व्यंग्य एवं झलकियाँ- राजनैतिक हास्य अहिंसक कार्यवाही की एक पद्धति हो सकती है जब इसमें कुछ सामाजिक रूपों को अभिव्यक्त किया जाता है जैस एक हास्यकार व्यंग्य या झलकियाँ या एक राजनीतिक हास्य खेला जाता है। ऐसे मामलों में हास्य साधारण रूप से मौखिक राजनीतिक विमति तथा सार्वजनिक राजनीतिक प्रतिरोध की कार्यवाही बन सकती हैं। इसका कोई प्रलेख प्राप्त करना असम्भव है लेकिन शान्ति संधि से पहले ऑस्ट्रिया में इस तरह की कहानियां सुनने को मिलती है।

14.2.6.2 नाटकों और संगीत का आयोजन- कुछ राजनीतिक दशाओं के तहत, कुछ नाटकों के आयोजन के तहत् और अन्य संगीत कार्यक्रमों के आयोजन के द्वारा अहिंसक राजनीतिक प्रतिरोध किया जा सकता हैं। जनवरी 1923 में फ्रांस और ब्राजील के अधिग्रहण के विरूद्ध रूर-केम्प की आरम्भिव अवस्थाओं में इस तरह के आयोजन किये गये थे।

14.2.6.3 गायन- कुछ उपयुक्त दशाओं में गायन भी अहिंसक प्रतिरोध की पद्धति बन सकता हैं। उदाहरण के लिए अवांछित भाषण के समय गायन प्रस्तुत कर, राष्ट्रीय या धार्मिक गानों या मंत्रों के गायन के द्वारा विरोधियों की और से एक सगंठित बहिष्कार कर विरोधी नीतियों को बदलने का दबाव बनाया जा सकता हैं। भारत में 1905 के बंग-भंग आंदोलन के दौरान इस कार्यवाही का प्रयोग अंग्रेजों के विरूद्ध किया गया था।

14.2.7 जूलूस निकालना

यह अहिंक प्रतिरोध की सबसे जानी पहचानी पद्धतियों में से एक हैं जैसे लोगों द्वारा पैदल यात्राऐ करना। इसमें आम तौर पर शामिल तरीके इस प्रकार हैं-

14.2.7.1 पैदल यात्रा- पैदल यात्रा अहिंक प्रतिरोध और समझाईश के तरीके के रूप में तब प्रयुक्त की जाती है। जब लोगों का एक समूह संगठित रूप से एक स्थान विशेष की ओर पैदल यात्रा करता है, जो मूल रूप से किसी मुद्दे विशेष से संबंधित होता हैं। पैदल मार्च का समय एक घंटा या दो घंटे या कई सप्ताह या उससे भी ज्यादा लम्बा हो सकता हैं। इसमें यात्रा करने वाले लोग पोस्टर्स और बैनर्स साथ ले जा भी सकते है। 1930 में गाँधी जी ने नमक आंदोलन के दौरान दाण्डी मार्च का आयोजन कर इस पद्धति के बारे में सम्पूर्ण दुनिया को इसका महत्व सिद्ध कर बताया।

14.2.7..2 प्रदर्शन या जुलूस- इसमें लोगों का एक समूह एकमत या शिकायत के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षण करने के लिए संगठित रूप से पैदल प्रदर्शन या जुलूस निकालते हुए विरोध प्रदर्शन करते हैं। यह पैदल मार्च से भिन्न होता है। 1913 में वाशिंगटन डीसी में नेशनल अमेिरिकन विमेन सफरेज के द्वारा महिला मताधिकार के लिए पहलीबार परेड का आयोजन किया था, जिसमें 8-10 हजार सहभागियों ने भाग लिया था, जिसमें कई सिनेटरों की पत्नियां भी शामिल थी।

14.2.7..3 एक धार्मिक जुलूस भी पैदल यात्रा या प्रदर्शन के रूप में अहिंसक प्रतिरोध की पद्धति के रूप में ही प्रयुक्त होता है लेकिन इसमें कुछ निश्चित धार्मिक विशेषताऐं होती है जो जुलूस में शामिल लोगों द्वारा गाये जाने वाले धार्मिक गानों, प्रतीकों, तस्वीरों तथा साधु संतो की महत्वपूर्ण सहभागिता के द्वारा प्रकट होता हैं। इस तरह के जुलूसों का अन्य जुलूसों की तुलना में ज्यादा गहरा व भावनात्मक प्रभाव होता हैं। बालगंगाधर तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणपति उत्सव के आयोजन में इसी तरह की कार्यवाही का प्रयोग किया किया था।

14.2.7.4 तीर्थ यात्राऐं- यह नैतिक निंदा का एक रूप है जिसमें गहरी नैतिक और धार्मिक विशेषता शामिल होती है, इसमें एक या एक से ज्यादा व्यक्ति लोगों के लिए संदेश पहुँचाते हैं और सरकार या लोगों द्वारा अपनाई गई नीतियों से होने वाले दुःखों को बतलाते हैं। ऐसी यात्राऐं सामान्य तौर पर कई दिनों तक और कभी-कभी कहीं महिनों तक चलती हैं। इनमें प्रायः बैनर्स और पोस्टर्स का प्रयोग नहीं किया जाता हैं, हालांकि पैम्फलेट बांटे जाते हैं। गाँधी जी ने 1946 में बंगाल के नोआखाली सामप्रदायिक दंगों में इस पद्धति का प्रयोग किया था।

14.2.7.5 मोटर गाड़ियों का जुलूस- यह तरीका पश्चिम में प्रचलित है, इसमें पैदल यात्रा के बजाय धीमी गति से मोटर गाड़ियां चलाई जाती हैं और मोटर गाडियों पर सवार लोगों के हाथों में पोस्टर्स और बैनर्स होते हैं जिसके द्वारा विरोधी मुद्धों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया जाता हैं।

14.2.8 मृतक सम्मान

अहिंसक प्रतिरोध की कई पद्धतियों में जीवन लीला समाप्त कर चुके व्यक्तियों की स्मृति के सम्मान में कई कार्यवाहियां शामिल होती हैं। इसमें संघर्ष में शामिल लोगों की यादगार में कई कार्यक्रम आयोजित किए जाते है, जिनमें शामिल है-

14.2.8.1 राजनीतिक शोक मनाना- इस तरह के प्रतीक विशेष राजनीतिक घटनाओं और नीतियों के प्रति राजनीतिक विरोध और खेद प्रकट करने के लिए प्रायः एक व्यक्ति की मृत्यु के शोक के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। 1765 के स्टाम्प एक्ट के विरूद्ध अमेरिकी लोगों के संघर्ष के दौरान राजनीतिक शोक सभाओं के आयोजन का महत्व प्रकट हुआ।

14.2.8.2 छदम् दाह-संस्कार- राजनीतिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए दाह-संस्कार के रूप का भी प्रयोग किया जाता हैं। इसमें सरकार की विरोधी नीतियों का प्रतिरोध या अवज्ञा करने के लिए छदम् दाह-संस्कार का कार्यक्रम का आयोजन किया जाता हैं जिसमें शामिल सभी सहभागी सरकार से अन्यायपूर्ण नीतियों को ठीक करने और जनता का उस ओर ध्यान आकर्षण करने का प्रयास किया जाता हैं।

14.2.8.3 प्रदर्शनात्मक दाह-संस्कार- इसमें विशेंष राजनीतिक तनाव, यादगार सेवाओं के क्रम में संघर्ष के दौरान मृतक व्यक्तियों का दाह-संस्कार जुलूस का आयोजन किया जाता हैं और विरोधी के प्रति प्रतिरोध तथा नैतिक निंदा का प्रदर्शन किया जाता हैं। इसमें जरूरी नहीं हैं कि मृतक व्यक्ति कोई नेता हों बल्कि संघर्ष के दौरान मारे गये आम आदमी को भी इस तरह की कार्यवाही के लिए मुद्दा बनाया जा सकता हैं। इस तरह की कार्यवाही के उदाहरण अमेरिकी ओपनिवेशिक प्रतिरोध की कार्यवाहियों के दौरान देखने को मिलते हैं।

14.2.8.4 कब्रगाहों पर श्रृद्धांजली- इस कार्यवाही के तहत संबंधित व्यक्ति की कब्र पर जाकर श्रृद्धांजली दी जाती हैं, इसमें बहुत सारे लोग शामिल होते हैं और इस दौरान जिन कार्यो के लिए वह व्यक्ति जीवन भर

प्रयासरत रहा उनको याद किया जाता है और उनके बारे में जनता को बताया जाता हैं। आज भी 30 जनवरी को गाँधी जी की पुण्यतिथी को शहिद दिवस के रूप में मनाया जाता हैं और इसी तरह अन्य लोगों की पुण्य तिथियों को भी उनके योगदान के लिए स्मरण किया जाता है।

14.2.9 सार्वजनिक सभाऐं

जब लोग अपने दृष्टिकोणों को विशाल जनसमूह को बताने या विरोधी को बताने के लिए एक स्थान पर एकत्रित हो अपना मत अभिव्यक्त करते है तो उसमें कई रूपों का सहारा लेते हैं, जो इस प्रकार हैं-

14.2.9.1 विरोध या समर्थन में सभाऐं- विरोधी के कार्यो या नीतियों का विरोध या समर्थन करने के लिए लोग एक सार्वज्निक सभा का आयोजन करते हैं और उस सभा के समक्ष संबंधित मामले के बिंदुओं को रखते है और उन बिंदुओं के पक्ष या विपक्ष में जनता के दृष्टिकोण का निर्माण करते है। यह जनता के मत निर्माण का सबसे प्रचलित तरीका रहा। गाँधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इस तरह की गतिविधियों का अत्यधिक प्रयोग किया।

14.2.9.2 विरोध बैठकें- इस तरह की बैठके स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा आयोजित की जाती हैं जिसमें बहुत से लोग भाग लेते है, जिनमें विरोधी की नितियों और उनके उद्धेश्यों को जन समूह के समक्ष रखा जाता है और उनके प्रति उनके दृष्टिकोण या समर्थन का निर्माण किया जाता हैं।

14.2.9.3 विरोध की छद्मावरण बैठके- कुछ राजनीतिक दशाओं के तहत कभी-कभी विरोध की इरादतन बैठके आयोजित की जाती हैं, जो ज्यादा कानूनी और अनुमोदित उद्धेश्यों के लिए होती हैं। इस तरह की बैठके तानाशाही शासन के विरूद्ध ज्यादा होती हैं।

14.2.9.4 शिक्षण- प्रतिरोध के इस अहिंसक तरीके में एक मुद्दे विशेष पर विचारणीय बहस होती हैं। यह सार्वजनिक प्रतिरोध की बैठक से भिन्न होता है क्योंकि वहां लम्बे भाषण दिये जाते, जबकि शिक्षण में लोगों को मुद्दे के प्रति जानकारी प्रदान की जाती हैं।

14.2.10 वापसी और त्याग

यह अहिंसक प्रतिरोध और समझाईश की पद्धतियों की अंतिम उपश्रैणी हैं, जिसमें लोगों के संक्षेप और सीमित तरीके शामिल किये जाते हैं। इसमें निश्चित साधारण व्यवहार से वापसी या दिये गये सम्मान को नकारना शामिल होता हैं। इसमें शामिल प्रतिरोध के तरीके इस प्रकार हैं-

14.2.10.1 बहिष्कार- इसमें लोगों का एक समूह, प्रतिनिधि मण्ड़ल या एक व्यक्ति एक सम्मेलन, सभा या बैठक से अपने राजनीतिक उद्धेश्यों को अभिव्यक्त करने के लिए उसके समापन से पूर्व बहिष्कार करता हैं।

1923 में स्वराजवादियों ने अंग्रेजों की नीतियों का विरोध करने के लिए विधान परिषद्ों के बहिष्कार की पद्धति का प्रयोग किया था।

14.2.10.2 मौन या चुप्पी- यह पद्धति नैतिक निंदा की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रायः काम में ली जाती हैं। मौन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति का या किसी अन्य पद्धति के सहायक के रूप में अभिव्यक्ति का साधन हो सकता हैं। उदाहरण के लिए पैदल मार्च या एक स्थान पर प्रदर्शन करने के साथ।

14.2.10.3 सम्मान प्राप्ति से नकारना- इस पद्धति में एक सरकार द्वारा दिये गये सम्मान को वापस लौटाने का काम किया जाता हैं ताकि अनैतिक सरकार की अनैतिक नितियों के प्रति व्यक्तिगत रूप से विरोध जताया जा सकें। इस तरह की कार्यवाही का व्यापक प्रभाव होता हैं। भारतीय स्वतंत्रता के दौरान हजारों सिक्ख सैनिकों ने अंग्रेज सरकार द्वारा दिये गये सम्मानों को वापस लौटा दिया गया। इसी प्रकार नोबल पुरस्कार विजेता भारतीय कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिशा नाईट हुड की पदवी को वापस लौटा दिया।

14.2.10.4 पलटकर चल देना/वापसी- इसमें विरोधी का प्रतिनिधि जो एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह के रूप में हो सकता है, वह चुपचाप वापसी का कदम उठा सकता है, इससे विरोधी को अपनी नीतियों में सुधार करने में दबाव बनता हैं।

14.4 सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ

इसमें अन्याय या अनैतिक कार्य करने वाले या समझे जाने वाले लोगो या समूहों के साथ सामान्य सामाजिक संबंधों को जारी रखने से मनाही या विशेष व्यवहार प्रतिमानों की अनुपालना शामिल होती है। यहां सूचीबद्ध किये गये सामाजिक असहयोग की पद्धतियों के अतिरिक्त कई अन्य रूप सम्भवतया संवेदनों, शोध एवं खोज के द्वारा विकसित होते रहते है। इस समय अहिंसक कार्य पद्धतियों के सबसे छोटे वर्ग में 15 विशेष पद्धतियों को शामिल किया गया है, जिन्हें तीन उपवर्गो में बांटा गया है, जो इस प्रकार है।

14.4.1 लोगों का निर्वासन (निष्कासन)

इस वर्ग में कई पद्धतियाँ शामिल है, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है-

14.4.1.1 सामाजिक बहिष्कार-यह इस वर्ग की सबसे आम प्रचलित पद्धति है, सामाजिक बहिष्कार में लोगों या लोगों के समूह के साथ सामान्य सामाजिक सबंधों को बनाये रखने पर रोक होती है। यह नकार या मनाही निष्कासन या निर्वासन भी कहलाता है, क्योंकि निष्कासन भी अंग्रेजी शब्द ऑस्ट्रसिजम का हिन्दी रूपांतरण है और ऑस्ट्रसिजम ऐथेनियन शब्द ऑस्ट्रकान से बना है, जिसक अर्थ है प्रतिबंधित करना या रोकना। आधुनिक इगलैण्ड में सामाजिक बहिष्कार का प्रयोग विशेष तौर पर श्रम संघवादियों द्वारा उन श्रमिकों के विरूद्ध किया

जाता था जो हडताल में या ऐसी अन्य गतिविधियों में भाग लेने से मना करते थे। सामाजिक बहिष्कार नियमित रूप से धार्मिक संघों के साथ भी जुडा हुआ है। क्योंकि समाज में लोगों का धार्मिक आधार पर भी बहिष्कार किया जाता रहा है। भारत और अमेरिका में भी इसके उदाहरण बडी मात्रा में प्राप्त होते है।

14.4.1.2 चुनिदा सामाजिक बहिष्कार- पूर्ण या लगभग-पूर्ण सामाजिक बहिष्कार की बजाये इन्हें एक या ज्यादा सम्बन्धों के विशेष प्रकारो तक सीमित रखा जा सकता है। ये विशेष सम्बन्ध एक रणनितिक निर्णय के परिणाम के रूप मे या विशेष प्रतिरोधको और विरोधी के बीच एक सम्बन्ध के मुख्य बिन्दुओं पर साधारणतया घटित हो सकते है। इस प्रकार दुकानदार और व्यपारी सैना की आजीविका के विरूद्व बोलने की इच्छा रख सकते है लेकिन उन्हें कुछ भी बेचने से मना कर सकते है। यह व्यपारियों के बहिष्कार से भिन्न है जो कि एक आर्थिक बहिष्कार हैं क्यो कि इस में वस्तुओं के बेचान से नही बल्कि व्यक्ति विशेष को बेचान से मना किया गया है उदाहरण के लिये 'रूर कैम्प' के दौरान दुकानदारो ने बेल्जियम व फ्रांस के सैनिको की सेवा करने से मना कर दिया।

14.4.1.3 अपघटनीय अ- कार्यवाही (लैसिसट्रेटीक नॉन एक्शन)-अरिस्टोफन्स के नाटक 'लेसिसट्राटा' में युद्ध रोकने के लिये युद्धकपतियों की पत्नियों के साथ यौन सम्बन्धों को नकार ने पर बल दिया। ये चुनिदा सामाजिक बहिष्कार का विशेष रूप है जो व्यक्तिगत वर्गीकरण योग्यता बतलाता हैं। अमेरिका के प्रथम नारीवादी विद्रोह में 17वीं सदी में इसका आरम्भिक प्रयोग किया गया था।

14.4.1.4 धार्मिक बहिष्कार (बहिष्करण) - सामाजिक और धार्मिक प्रतिबन्धो के रूपो मे से एक हैं जिसमें चर्च द्वारा धार्मिक बहिष्कार किया जा सकता है। जिसके तहत एक व्यक्ति या समूह को उसके विशेषाधिकारो, सहभागिता या सदस्यता से अलग कर दिया जाता हैं। सामाजिक असहयोग का यह रूप चर्च के नेतृत्व मे शुरू किया जाता है बजाय व्यक्तिगत सदस्यों के। कभी-कभी ये कर्यावाही शुद्धतम व्यक्तिगत कारको से कभी कभी अन्य कारको से सम्पन्न कि जाती है। इसका मध्यकालीन युरोप मे बहुत ही निर्दयता से प्रयोग किया गया था। भारत मे भी इस का प्राचीन काल से व्यापक प्रयोग होता रहा है।

14.4.1.5 निषेध (प्रत्याख्यान) - यह धार्मिक सेवाओं और अन्य धार्मिक गतिविधियों का एक निर्दिष्ट जिले या देश के लिए एक निश्चित समय तक चर्च के प्रधान के निर्णय के द्वारा स्थगन करने की प्रक्रिया है। यह आंशिक रूप से प्रकृति में दण्डात्मक भी हो सकती है। सामान्यतया इसका प्राथमिक उद्धेश्य सरकार या जनता का विशेष शिकायत को दूर करने के लिए बाध्य करना है जो कठोर रूप से धार्मिक या आंशिक रूप से राजनीतिक होता हैं।

14.4.2 सामाजिक घटनाओं, परम्पराओं व संस्थाओं के साथ असहयोग- सामाजिक असहयोग के इस रूप में निम्नलिखित तरीके शामिल है-

14.4.2.1 सामाजिक एवं खेल गतिविधियों का स्थगन- सामाजिक असहयोग सामाजिक एवं खेल गतिविधियों की व्यवस्था से नकारने या उनके निरसन के रूप में हो सकती है। इस प्रकार का सामाजिक असहयोग इरादतन रूप से या तो त्याग के प्रतिरोध के रूप में या समानान्तर प्रयासों के रूप में समाज पर नये नियंत्रणों की पहल के रूप में हो सकते है। यह पद्धति रूप में सामाजिक वर्ग में आती है, हालांकि परिणाम या उद्धेश्य की दृष्टि से यह राजनीतिक है। 1940-45 के दौरान नार्वे के निवासियों ने खेल गतिविधियों में एक या अन्य रूपों में सहयोग करने से मना कर दिया। जर्मनी और नार्वे में फासीवादी दल "नासजोनल सामलिंग" सत्ता में था। 1940 की गर्मी की शुरूवात में जर्मन अधिकारियों ने जर्मन-नार्वे फुटबाल मैचों को करवाया।

14.4.2.2 सामाजिक मुद्धो का बहिष्कार- प्रतिरोध की भावना कुछ निश्चित सामाजिक मामलों जैसे स्वागत व पार्टियों का आयोजन व इसी प्रकार के अन्य आयोजनों में शामिल होने से नियमित मनाही के द्वारा अभिव्यक्त हो सकती हैं। नाजी प्रभुत्व के दौरान डेन्स ने जर्मन सैन्य संगीत आयोजनों में भाग लेने से मना कर दिया। 1940 के अंत और 1941 के आरम्भ में नार्वे में सिनेमा हडतालों की हवा बही, इनमें संरक्षकों ने सिनेमाओं का बहिष्कार किया। पा ॅलैण्ड में भी 1942 में जर्मनी द्वारा शुरू किये गये सिनेमाघरों व थियेटरों के विरूद्ध भीतर ही भीतर मनाही के लिए मतदान का आयोजन किया गया था।

14.4.2.3 छात्र हडताल- छात्रों व शिष्यों के द्वारा पाठशालाओं से विश्वविद्यालयों तक के सभी स्तरों पर अस्थाई रूप से कक्षाओं में उपस्थित होने के प्रतिरोध किया जाता हैं या वे व्याख्यानों को कक्षा में ध्यान पूर्वक सुनने से मना कर सकते हैं। यह 1965 में मेड्रिड विश्वविद्यालय में हुआ जब एक स्वतंत्र छात्र संघ के अभियान में भाग लिया। इसमें कई सम्भावित विविधताऐं होती हैं। हालांकि कक्षाओं का बहिष्कार सभी के लिए आम होता है इसलिए छात्र हडताल को पाठशाला बहिष्कार या कक्षाओं का बहिष्कार भी कहा जाता है।

छात्र बहिष्कार का व्यापक रूप में लम्बे समय से चीन, लेटिन अमेरिका ओर कुछ मात्रा तक अफ्रिका में भी प्रयोग किया जाता रहा हैं। मई 1970 में कम्बोडिया पर अमेरिकी आक्रमण के पश्चात् अमेरिका में विश्व विद्यालय जीवन का स्थाई अंग बन गया था। छात्र हडताल कोई आधुनिक खोज नहीं है जैसा कि चिनी उदाहरण बतलाते है। 1899 में रूसी साम्राज्य के सभी विश्वविद्यालयों में व सेंट पीटस्बर्ग में पुलिस ने कुछ छात्रों को कोडे लगाने के प्रतिरोध के रूप में छात्र हडताल हुई थी।

भारत में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध चलाये गये स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गाँधी जी के नेतृत्व में कई छात्र हडताले हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत में 1970-80 के दशकों में व्यापाक रूप से छात्र हडताले हुई। आज भी छात्र अपनी माँगों को मनवाने के रूप में विश्वविद्यालय के स्तर पर इसका प्रयोग करते है।

14.4.2.4 सामाजिक अवज्ञा-यह एक गैर सरकारी सामाजिक संस्था की (एक धार्मिक निकाय, क्लब, आर्थिक संगठन या इसी तरह के अन्य संगठन) की सामाजिक परम्पराओं या नियमों-विनियमों या व्यवहारों की अवज्ञा

हैं। ऐसी सामाजिक अवज्ञा कई रूपों जैसे फैक्ट्री विनियमों को भंग करना या भाषण, वेशभूषा एवं व्यवहार प्रतिमान का उलघंन करना या पादरियों की व्यवस्था का अवज्ञा करना। अन्य मामलों में व्यक्तियों का जो कुछ लोगों के विरूद्ध सामाजिक बहिष्कार का अनुमोदन नही करते है वे सामाजिक अवज्ञा उनके व्यवहार के द्वारा मित्रता कायम कर सकते हैं। भारत में जो लोग अस्पृश्यता को नकारते है प्रायः अस्पृश्यों के साथ सुविचार की मैत्री स्थापित करते हैं। वे धार्मिक नियमों एवं सामाजिक परम्पराओं को नकारते है। हालांकि सामाजिक अवज्ञा कभी भी सरकार के विरूद्ध चुनोती नहीं बन सकती है। यह अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित करती है। हालांकि फिर भी अवज्ञा के द्वारा नाराज लोगों की और से प्रतिक्रिया मिल सकती हैं। ऐसे प्रतिकार में पुलिस द्वारा कार्यकर्ताओं के द्वारा अवज्ञा कभी-कभी प्रतिक्रिया स्वरूप हिंसक रूप ग्रहण कर सकता हैं।

14.4.2.5 सामाजिक संस्थाओं से प्रत्यावर्तन (वापसी) - सामाजिक संगठनों एवं संस्थाओं के विभिन्न रूपों के सदस्य संघर्ष के दौरान अपने मतो के व्यक्त करने के तरीके के रूप में या तो सदस्यता से त्यागपत्र दे देते है या निकाय में सहभागिता से बिना सदस्यता के वास्तविक निष्कासन के रूप में। यह उदाहरण यहां सामाजिक समूह की ओर इंगित करते है लेकिन यह तरीका अन्य संस्थाओं पर भी लागू किया जा सकता है।

1830 के दशक में चर्च के द्वारा दास्ता के विरूद्ध कठोर कदम उठाने में किये गये समझाईस के असफल प्रयासों के दौरान कई गेरिसीयन उन्मूलनवादियों ने उनके परम्परागत प्रभुत्ववादी चर्चो की सदस्यता से प्रत्यावर्तन का उग्र कदम उठाया। इसी प्रकार 1840 में एक उन्मूलनवादी सम्पादक रोगर्स ने न्यू हैम्पशायर के पालीमाउथ कांग्रेसनलन चर्च से अपने को अलग कर लिया दास्ता का समर्थन करने वाले मंत्रियों व कांग्रेस के सदस्यों एवं अध्यतावर्तियों के दास्ता का विरोध करने से मना करने पर।

14.4.3 सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन - इस तरह के सामाजिक असहयोग में कई तरह की पद्धतियाँ शामिल है जो इस प्रकार है-

14.4.3.1 घर-बैठना (Stay at Home) - इसका प्रयोग प्रायः हडताल या स्ट्राइक के रूपो के साथ घनिष्ठ रूप से किया जाता है। हालांकि इसका व्यापक रूप से कार्य के घंटो के बाद किया जा सकता है। असहयोग के इस रूप में एक निश्चित समय के लिए जनसंख्या पूर्ण रूप से घर पर ही बनी रहती हैं। प्रायः इसका प्रयोग राजनीतिक उद्धेश्यों के लिए किया जाता हैं। सामान्य रूप से यह संगठित होती हैं हालांकि यह स्वतः स्फूर्त भी हो सकती है। दुघर्टनाओं में कमी के अतिरिक्त यह जनसंख्या के मध्य स्वअनुशासन एवं एकता की मात्रा को विरोधी के समक्ष बढाने में भी प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग कई अवसरों पर दक्षिण अफ्रिका में भी किया जाता रहा है। 26 जून 1950 को इस देश में एक दिन लोग घर पर ही रहे। यह विरोध समूह क्षैत्र अधिनियम एवं कम्यूनिज्म के निरसन के विरूद्ध किया गया था। यह विशेषकर जोहांसबर्ग, पोर्ट ऐजिजाबैथ एवं डरबन में प्रभावी रहा था। मार्च 1960 में शार्प विलय में भी इस तरह का प्रतिरोध हुआ था।

14.3.3.2 पूर्ण व्यक्तिगत असहयोग - कभी-कभार यह भी मामला होता है कि यदि स्पष्ट रूप से श्वास के अलावा कुछ भी ग्रहण करने से मना कर देते है क्योंकि उनका विश्वास होता है कि उनकी गिरतारी नैतिक रूप से अन्यायपूर्ण है या राजनीतिक कारणों से हुई है। इसका सबसे जाना पहचाना उदाहरण है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक अमेरिकी धार्मिक कर्तव्यनिष्ठ उज्रदार कारबेट बिश्प का है। विश्प आरम्भिक रूप से कर्तव्यनिष्ठ उर्जदारों-सिविल पब्लिक सर्विस के लिए उपलब्ध वैकल्पिक सेवा कार्यक्रम के साथ सहयोग किया था, लेकिन वे एक समय के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें किसी भी रूप से सहयोग नहीं देना चाहिए। जब सिविल पब्लिक सर्विस को निरंतर सहयोग से मना किया तो उन्हें गिरतार कर लिया गया । उसने घोषणा की कि उसकी चेतना स्वतंत्र थी और यदि गिरतारकर्ता उसका शरीर चाहता है तो वे इसे उसकी सहयता के बिना ले जा सकते है।

14.3.3.3 श्रमिकों का पलायन - यह हडताल का पूर्वगामी है जिसमें कार्य का समापन और श्रमिकों का घर छोडकर कहीं अन्यत्र चले जाना बिना मांग या शर्त के मिश्र्र में इस तरह के मामले बहुत ज्यादा देखने को मिलते हैं। वहीं रूप में भी इस तरह के मामले में देखने को मिलते है। यह स्थिति तब होती है तब श्रमिकों या किसानों की दशा असहनीय स्थिति तक खरा हो जाती है और सरकार की और से कोई ध्यान नही दिया जाता है।

14.4.3.4 पूण्य-स्थान या आश्रय - यह एक असाधारण पद्धति है जिसके द्वारा एक व्यक्ति या लोगों का एक समूह एक स्थान से विरोधी का विरोध जताते हुऐ अपने आपको बहार निकाल लेते है। जहा वे धार्मिक, नैतिक, सामाजिक या कानूनी प्रतिबंधों की हिंसा के बिना नहीं रह सकते हैं। ऐसी हिंसा परिणाम स्वरूप विरोधी को एक नहीं और कठिन स्थिति में डाल देती हैं। मंदिर, चर्च व अन्य पवित्र स्थल शरणार्थियों के आश्रय स्थल बनते रहे है। जब प्राचीन मिश्र्रवासी किसानों ने मंदिरों की और पलायन किया जिन्हें प्रिसिंडिंग मैथड के रूप में वर्णित किया गया । इसमें उन्होंने पलायन और आश्रय के मिश्रि्रत रूप का प्रयोग किया । जब वे गुप्त स्थान पर चले गये तब उन्होंने केवल पलायन की पद्धति का ही प्रयोग किया। 1968 में पूण्य स्थल पर आश्र्रय का विचार सयुक्त राज्य अमेरिका में पुनर्जिवित किया गया।

14.4.3.5 सामूहिक तिरोभाव - इसका प्रयोग तब हो सकता है जब एक छोटे क्षेत्र जैसे गांव की जनसंख्या अपने विरोधी के साथ किसी प्रकार का सामाजिक संबंध न रखने के चुनाव के बतौर अपने घर और गांव को त्याग दे और गायब हो जाये । जिसका सबसे अच्छा उदाहरण है ब्रिटिस शासनकाल काल के दौरान 1799 और 1800 में दक्षिण भारत के कन्नड किसानों के द्वारा ब्रिटिस सत्ता का विरोध करने के दौरान मिलता हैं। एक ब्रिटिस प्रभारी अधिकारी सर थामस मुनरो ने लिखा कि जब कभी मैं एक गांव में जाता तो वहा के निवासी अन्यत्र चले जाते थे और मैं कभी-कभी कई सप्ताहों तक उनसे बिना मिले ही आ जाता था। 1881 में मध्य चीन में इस तरह की सामूहिक तिरोभाव की घटनाओं के उदाहरण देखने को मिलते है।

14.4.3.6 प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास (हिजरत) - प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास को भारत में हिजरत के नाम से जाना जाता है। इसमें राज्य के क्षैत्राधिकार से सोच-समझकर उत्प्रवास किया जाता है, क्योंकि उत्प्रवासियों की नजर में राज्य कुछ निश्चित अन्यायों के के लिए उत्तरदायी है या उनकी नजर में राज्य सभी सामाजिक सहयोगो को कठोरता से समाप्त करने का प्रयास कर रहा है। हालांकि कुछ निश्चित विशेष मामलों में ही उत्प्रवास देखने का मिला हैं। यह कभी स्थाई तो कभी अस्थाई होता है। जॉन बोंदुरा ने इस पद्धति को स्वैच्छिक देश निकाला कहा है। अरबी पद हिजरत हाजरा से उत्पन्न हुआ है। हाजरा पैगम्बर मोहम्मद के मक्का से मदीना के पलायन को कहते है। उन्होंने मक्का के तानाशाही शासन के समक्ष आत्म समर्पन के बजाय पलायन को चुना।

हिजरत को भारत में देश त्याग भी कहते है, जिसका ब्रिटिस शासन के दौरान आजादी के लिए और विशेष अन्यायों के विरूद्ध विभिन्न अभियानों के दौरान प्रयोग किया गया था । यह कर नही देने के विविध आन्दोलनों की एक प्रशाखा थी। गाँधी जी की शिक्षाओं में सत्याग्रही प्रशन्नता पूर्वक हिजरत का सहारा लेते थे चाहे उसके कुछ भी दुष्परिणाम हो। जिससे विरोधी के हृदय को पिघलाने और अपने उद्धेश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यापक प्रभाव छोडने के लिए प्रयुक्त किया गया।

हिजरत का प्रयोग गुजरात के किसानों ने किया था जो अंग्रेजों के अधिक कर आरोपण के विरोध में बडौदा पलायन कर गऐ। इसी प्रकार 1928 में बारदोली कर मनाही अभियान के दौरान भी इसका प्रयोग किया गया, जिसमें बारदोली के किसान अस्थाई रूप में बडौदा पलायन कर गऐ।

हिजरत में लोगों की संख्या अधिक भी हो सकती है और कम भी, संख्या का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि सत्याग्रही द्वारा उठाया गया मामला कितना महत्वपूर्ण व गम्भीर हैं।

14.3 सारांश

जीन शार्प एक ऐसे शख्स हैं जिन्होंने अहिंसा को आमजन की दिनचर्या के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने संघर्ष के वैकल्पिक रास्तों को खोजने पर जोर दिया और इस कार्य में अपने अग्रणी थोरो और गाँधी को उन्होंने अपना प्रेरणा स्त्रोत्र माना है। शार्प की ख्याति इसलिए भी है कि उन्होंने अहिंसा पर रचित अपने साहित्य के जरिए वे तकनीकें विकसित की हैं जो एक लोकतांत्रिक समाज के लिए बेहद जरुरी है।

अहिंसक प्रतिरोध और समझाईश के तरीकों में शामिल जुलूस, धरने, प्रदर्शन, वापसी, छद्म दाह-संस्कार, छद्म पुरस्कार, संगीत, नाटक, प्रतिनिधि मण्डल, लोब्बियंग, प्रकाशन, प्रतीक, सार्वजनिक भाषण आदि सभी प्रतिरोध के तरीके कम या ज्यादा मात्रा में विरोधी के ऊपर अपनी नीतियों में बदलाव करने या जनता की शिकायतों को

दूर करने का दबाव बनाते है। इनमें व्यक्ति, व्यक्तियांे का समूह या संगठन और प्ेरस-मीडिया छद्म और मूर्त दोना ही रूप महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

जीन शार्प ने अपने लेखन से यह भी बताया है कि आधुनिक समाजों में असहयोग के कई रूप प्रचलित हैं जिन्हें हम सामाजिक असहयोग, राजनीतिक असहयोग व आर्थिक असहयोग के वर्गों मे विश्लेषित कर सकते हैं। असहयोग की इन विभिन्न पद्धतियों को प्रयोग करके विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और आंदोलनों ने संघर्षों का शांतिमय समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया है। विरोध और समझाइश एवं असहयोग के ऐसे तरीके हमें संघर्ष समाधान के अहिंसात्मक विकल्प बताते हैं। विश्व में इनके प्रयोग के उदाहरण इस सत्य को दर्शाते हैं कि वास्तविकता में इसका प्रयोग अहिंसात्मक संघर्ष समाधान के लिए किया जा सकता है।

14.4 अभ्यास प्रश्न

1. जीन शार्प द्वारा अहिंसक प्रतिरोध के संबंध में किए गए सैद्धान्तिक योगदान का वर्णन कीजिए।
2. अहिंसक प्रतिरोध की औपचारिक विधियों पर प्रकाश डालिए।
3. अहिंसक प्रतिरोध में व्यापाक जनसमूह को प्रभावित करने वाली पद्धतियों व समूह प्रतिवेदन तथा व्यक्तियों पर दबाव पद्धतियों का वर्णन किजिए।
4. अहिंसक प्रतिरोध के संबंध में जीन शार्प द्वारा व्यक्त विचारों का परीक्षण कीजिए।
5. सामाजिक असहयोग की लोगो के निर्वासन के रूपों का वर्णन किजिए।
6. सामाजिक असहयोग की सामाजिक गतिविधियों, परम्पराओं एवं संस्थाओं के साथ असहयोग की पद्धति का वर्णन किजिए।
7. सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन के तरीको को स्पष्ट किजिए।

14.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जीन शार्प, पॉलिटिक्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन, पार्ट-2 द मेथोड्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन, पोर्टर सारजेन्ट, बोस्टन, 1973
2. जीन शार्प एवं जोशुआ पॉलसन, वेजिन्ग नानवायलेन्ट स्ट्रगल: 20एथ सेन्टुरी प्रेक्टीस एण्ड 21स्ट सेन्टुरी पोटेनेशियल, होराइसन बुक्स, 2005

इकाई – 15

एम. एन. रॉय

इकाई रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय का परिचय एवं प्रस्तावना

15.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय की रचनाऐं

15.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचार

15.3.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं मार्क्सवाद

15.3.2. मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं गाँधीवाद

15.3.3 मौलिक लोकतंत्र की अवधारणा

15.3.4 नवीन मानववाद की संकल्पना

15.4 सारांश

15.5 अभ्यास प्रश्न

15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.0 उद्देश्य

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तकों में एम.एन. राय को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंन 'नवीन मानववाद' (New Humanism) का आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसे राजनीतिक चिन्तन में नवीन योगदान समझा जा सकता है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता का जयघोष करके उन्होंने व्यक्ति की गरिमा को आगे बढ़ाया। राय ने 'दलविहीन लोकतन्त्र' (मौलिक लोकतन्त्र) का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया, जो एक

आकर्षक आदर्श है। उन्होंने समाज में नैतिक मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया और साम्यवाद को तानाशाही प्रवृत्ति से बचाने का प्रयत्न किया। उनके और गाँधी के चिन्तन में कुछ भिन्नतायें अवश्य हैं परन्तु व्यक्ति के गरिमामयी जीवन और न्याय, समानता, इत्यादि प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति दोनो ही प्रतिबद्ध थे औद समाज में इसकी स्थापना के जबरदस्त समर्थक थे। प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है -

- मानवेन्द्र नाथ रॉय के चिन्तन का परिचय करना।
- मानवेन्द्र नाथ रॉय की मार्क्सवादी विचार-यात्रा के बारे में समझना।
- गाँधीवाद के सम्बन्ध में मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों को समझना।
- दल विहीन लोकतन्त्र जैसी आदर्श व्यवस्था के बारे में मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों को जानना।
- नवीन मानववाद की संकल्पना जिसके कारण राजनीतिक चिन्तन में महत्वपूर्ण स्थान है, की विवेचना कीजिये।

15.1 मानवेन्द्र नाथ रॉय का परिचय एवं प्रस्तावना

मानवेन्द्र नाथ राय का जन्म 6 फरवरी, 1886 को कलकत्ता के निकट एक गांव में हुआ था। राय का प्रारम्भिक नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य था। तत्कालीन बंगाल में, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की लहर चल रही थी, ऐसे समय में राजनीतिक बोध होना स्वाभाविक है। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में ही वे राष्ट्रवादी विचारों के सम्पर्क में आए। राय के जीवनी लेखक ‘ मुशी और दीक्षित’ के अनुसार, “राय का जीवन स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी दयानन्द से प्रभावित रहा।” इन सन्तों और सुधारकों के अतिरिक्त उनके जीवन पर विपिन चन्द्र पाल और सावरकर का अमिट प्रभाव पड़ा।

मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचारों की यात्रा का आरम्भ अमरीका में मार्क्सवादी विचारधारा से हुआ क्योंकि उस समय वे लेनिन के विचारों से प्रभावित थे। उनका मानना था कि भारत की गरीबी व दुर्दशा को मार्क्सवादी विचारों को साकार रूप देकर सुधारा जा सकता है। भारत आकर मार्क्सवादी विचारधारा को लागू करने का प्रयास किया परन्तु कुछ असहज कमियों के कारण मार्क्सवादी विचारों से मोह भंग हो गया और आदर्शवादी विचारों की ओर मुडे। उन्होंने आदर्शवाद के धरातल पर गाँधीवादी विचारधारा की ओर मुडते हुए ‘दलविहीन लोकतन्त्र’ और ‘नवीन मानववाद’ की संकल्पना देते हुए ‘विश्व राज्य’ की कल्पना की।

15.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय की रचनाऐं

(1) दी वे टू ड्यूरेबिल पीस

(2) वन ईयर ऑफ नॉन-कोआपरेशन

(3) दी रिवोल्यूशन एण्ड काउण्टर रिवोल्यूशन इन चाइना

(4) रीजन, रोमाण्टिसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन

(5) इण्डियन इन ट्रांजीशन

(6) इडियन प्राबलम्स एण्ड देयर सोलयूशन्स

(7) दी फ्यूचर ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स

(8) हिस्टोरिकल रोल ऑफ इस्लाम

(9) फासिज्म: इट्स फिलोसॉफी, प्रोफेशॅन्स एण्ड प्रेक्टिस

(10) मैटिरियलिज्म

(11) न्यू ऑरियन्टेशन

(12) बियोन्ड कम्यूनिस्म टू ह्यूमेनिज्म

(13) न्यू ह्यूमेनिज्म एण्ड पॉलिटिक्स

(14) पॉलिटिक्स, पावर एण्ड पार्टीज

(15) दी प्रिंसिपल ऑफ रेडिकल डेमोक्रेसी

(16) कोन्स्टीट्यूशन ऑफ फ्री इण्डिया

(17) रेडिकल ह्यमेनिज्म

(18) अवर डिफरेंस

(19) साइन्स एण्ड फिलोसॉफी

(20) ट्वेण्टि टू थीसिस

15.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय के विचार

राय अपने चिन्तन के प्रथम काल (1901-1915) में एक रामांटिक क्रांतिकारी रहे। बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' क सामाजिक आदर्शवाद ने भी उन्हें प्रभावित किया। वे 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' से भी प्रभावित थे। उनका मानना था कि हिंसक उपायों से ब्रिटेन को भारतीयों के हाथों में सत्ता सौंप देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। राय ने कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रान्तिकारी हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक साधनों को अपनाया जा सकता है। एम.एन. रॉय के मार्क्सवादी, गाँधीवाद, मौलिक लोकतन्त्र व नवीन मानववाद सम्बन्धी विचार निम्नलिखित है:

15.3.1 मानवेन्द्र नाथ राय और मार्क्सवाद

राय ने सन् 1915-17 के वर्षों में अमरीका में रहते हुए मार्क्स तथा अन्य समाजवादी लेखकों की रचनाओं पर्याप्त अध्ययन किया था। वे मार्क्स के दर्शन से प्रभावित हुए। उन्होंने मैक्सिको में साम्यवादी दल की स्थापना की और 'साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय' के संस्थापक सदस्य के रूप में अपने दृढ़ मार्क्सवादी होने का परिचय दिया। उन्होंने भारत में साम्यवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए भारी प्रयास किए। उन्होंने भारतीय दरिद्रता ब्रिटिश साम्यवाद और देशी सामन्तवाद (जमींदार और पूंजीपति) के शोषण का परिणाम है और इस दरिद्रता का उन्मूलन तभी सम्भव है जबकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके आधार रूप में कार्य करने वाली इस देशी सामन्तवादी व्यवस्था का जड़ से समाप्त कर दिया जाए।

समर्थन:

मानवेन्द्र नाथ राय ने निम्नलिखित मार्क्सवादी आधारों का समर्थन प्रकट किया:-

(1) एक भौतिकवादी विचारा के आधार पर सहमति - राय मूलतः एक भौतिकवादी चिन्तक है और उन्होंने अनुभव किया कि मार्क्स ने विकसित रूप में भौतिकवादी दर्शन को प्रस्तुत किया है। अतः उन्होंने मार्क्सवाद से सहमति प्रकट की। राय मार्क्स के इस विचार से पूर्णतः सहमत थे कि सृष्टि का मूल कारण प्रत्यय या ईश्वर नहीं है, अपितु पदार्थ है। सम्पूर्ण सृष्टि मूलतः पदार्थ की विकसित अवस्था तथा उसके रूप-भेद को प्रकट करती है। इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके स्वरूप के निर्धारण में जो मूल कारण है वह भौतिक है। सृष्टि में जो कुछ घटित हुआ है अथवा घटित हो रहा है उसका मूल कारण वे भौतिक परिस्थितियाँ, जो स्वयं पदार्थ (पदार्थ की गतिशीलता) से उत्पन्न होती हैं।

(2) मार्क्स की वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति- रॉय ने मार्क्स के अनुसर यह मानते हैं कि:आत्मा' या 'चेतना' या 'विचार' की अपनी कोई स्वतन्त्र आध्यात्मिक (प्रत्ययवादी) सत्ता नहीं है, अपितु यह भौतिक पदार्थ का ही अति सूक्ष्म रूपान्तरण (रूप-भेद) है। ज्ञान केवल वस्तुनिष्ठ होता है और ज्ञान का मूल स्रोत इन्द्रियाँ हैं। रॉय ने अपने चिन्तन के इस दौर में मार्क्स की अध्ययन पद्धति को वैज्ञानिक मानकर उसकी प्रशंसा की। रॉय ने मार्क्स को पहला ऐसा भौतिकवादी दार्शनिक माना जिसने किसी मानव-समाज के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दर्शन एवं व्यवस्था का मूल कारण उस समाज की आर्थिक परिस्थितियों में खोजने का प्रयास किया। इसके साथ ही मार्क्स ने इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में पायी जाने वाली आर्थिक परिस्थितियों का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रस्तुत किया।

(3) पूँजीवाद के सम्बन्ध में विचारों का समर्थन- रॉय पूँजीवाद के बारे में मार्क्स के इस विचार से सहमत है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी प्रकृति से अमानवीय है और यह समाज में व्याप्त शोषण एवं अन्याय का मूल कारण है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में गम्भीर कमियाँ हैं जिनके कारण सम्पूर्ण पूँजीवादी समाज व्यवस्था का पतन सुनिश्चित है और उसके बाद समाजवादी समाज की स्थापना होगी जो एक श्रेष्ठ एवं न्यायपूर्ण समाज होगा। रॉय मार्क्स के इस मत से भी पूर्ण सहमत हैं कि पूँजीवादी के नाश के लिए क्रान्ति की जरूरत होगी और इसके लिए सर्वहारा (श्रमिक वर्ग) को संगठित करना होगा।

(4) राष्ट्रवाद की आलोचना का समर्थन - मार्क्स के चिन्तन में संकीर्ण राष्ट्रवाद के लिये कोई स्थान नहीं था। सर्वहारा वर्ग की विश्वव्यापी चेतना मार्क्स के दर्शन की प्रेरक शक्ति थी। मार्क्स ने पूंजीवाद के पतन के पश्चात् एक विश्वव्यापी समाजवादी व्यवस्था का स्वप्न देखा था। रॉय मार्क्स के इस दृष्टिकोण से सहमत थे कि राष्ट्रवाद, पूंजीवाद के विरूद्ध संघर्ष विश्व भर के लोगों की एकता के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करता है।

(5) मानवतावादी चिन्तन- रॉय के अनुसार मार्क्स के चिन्तन का केन्द्रीय लक्ष्य मानव का कल्याण था। प्रारम्भिक दिनों में रॉय मार्क्स के चिन्तन को मानव की मुक्ति के एक विश्वसनीय वैचारिक आधार के रूप में देखते थे। मार्क्स का लक्ष्य शोषण की स्थिति को समाप्त कर एक समतावादी न्यायपूर्ण सन्तुलित समाज की स्थापना करना था। राय मार्क्स के चिन्तन की इस मानवीय तथा उदारवादी प्रवृत्ति और उसके सम्पूर्ण चिन्तन के मूल लक्ष्य के प्रति विश्वास रखते थे। रॉय का उद्देश्य एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति करना था जिसक द्वारा मानव हर प्रकार के दमन, अन्याय और उत्पीडन से मुक्त हो जाय और सर्वागीण विकास हो सके।

(6) धर्म की आलोचना पर सहमति- एक भौतिकवादी विद्वान के रूप में मार्क्स का ईश्वर के अस्तित्व में कोई विश्वास नहीं हे। उसका मत हे कि इतिहास में धर्म की भूमिका सदैव ही प्रतिक्रियावादी रही है। शोषक वर्ग ने शोषित वर्ग के विरूद्ध धर्म का सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया है और उसे मानवीय अन्याय एवं शोषण को सहन करने की प्रेरणा दी है। शोषक वर्ग ने धर्म की आड़ में अपने जुल्मों को छुपाया है और शोषित वर्ग के लिए

धर्म अफीम की गोली सिद्ध हुआ है। रॉय ने मार्क्स के धर्म सम्बन्धी इन विचारों का समर्थन किया और किसी समाज में मौजूद धार्मिक चेतना एवं भक्ति को उस समाज के पिछड़ेपन की पहचान बताया है।

आलोचना

मानवेन्द्र नाथ रॉय ने निम्नलिखित आधारों पर मार्क्सवाद की आलोचना की है:

(1) इतिहास की आर्थिक व्यवस्था - रॉय ने मार्क्स द्वारा दी गई इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भ्रामक और अपूर्ण माना। रॉय का मत है कि मार्क्स ने मनुष्य की गतिविधियों में, उसकी स्वयं की इच्छा, विचारों तथा नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा की। रॉय मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि मनुष्य की नियति का निर्धारण केवल आर्थिक कारकों से ही होता है। उन्होंने कहा “नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन में उत्थान के लिये मनुष्य की आवश्यकताएं केवल आर्थिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रहती है।” रॉय ने यह माना है कि मानव-इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विश्व के वर्तमान स्वरूप के

निर्धारण में आर्थिक कारकों के अतिरिक्त, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रॉय ने कहा कि मार्क्स ने समाज को आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों के समुदाय के रूप में ही देखा, तथा उसने उत्पादन के साधनों और उत्पादन की गतिविधियों के अतिरिक्त, अन्य सामाजिक परिस्थितियों व प्रवृत्तियों की उपेक्षा की।

(2) मानव की स्वतन्त्र चेतना की उपेक्षा- रॉय ने आरोप लगाया कि मार्क्स का ‘आर्थिक नियतिवाद’ मनुष्य की सृजनात्मक क्षमताओं के महत्व को पूर्णतः अस्वीकार कर देता है। उन्होंने कहा कि मनुष्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से भी अच्छे जीवन की इच्छा करता है। रॉय के अनुसार नैतिक उन्नति का, भौतिकवाद से कोई टकराव नहीं है; जबकि आर्थिक कारकों को मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व प्रदान करके मार्क्स ने भौतिकवाद का विरोध किया है। रॉय मनुष्य की स्वतन्त्रता के पक्षधर है। वे मनुष्य को राज्य तथा समाज द्वारा आरोपित बंधनों से मुक्त करना आवश्यक मानते ही हैं, आर्थिक नियतिवाद जैसे रूढ़ सिद्धान्तों से भी उसकी मुक्ति को भी आवश्यक मानते हैं।

(3) मार्क्स के द्वन्द्ववाद की आलोचना - रॉय मार्क्स के द्वन्द्ववाद या उसकी द्वन्द्वात्मक पद्धति से कभी भी सहमत नहीं हो पाए। राय का विचार था कि द्वन्द्ववाद एक वैचारिक प्रक्रिया है, जिसे वैचारिक क्षेत्र में भी अपनाया जा सकता है, लेकिन भौतिक जीवन के विविध चरणों और भौतिक स्थितियों की व्याख्या इस पद्धति के आधार पर कर पाना सम्भव नहीं है।

(4) वर्ग-संघर्ष के समाजशास्त्र में सन्देह- मार्क्स वर्ग-संघर्ष को मानवीय जीवन का एक मूल तत्व मानते हैं। रॉय स्वीकार करते हैं कि मानव समाज में समय-समय पर विभिन्न वर्ग अवश्य रहे हैं कि उनमें संघर्ष भी रहा है, लेकिन उन वर्गों में संघर्ष की तुलना में आपसी सहयोग, सामाजिक एकता और बन्धन के तत्व,

अधिक प्रमुख रूप से रहे हैं, जिनके सहारे मानव समाज अब तक बचा हुआ है। यदि वर्ग-संघर्ष ही मानव समाज में प्रमुख होता है, तो मनुष्य अब तक लड़-भिड़ कर समाप्त हो गए होते।

(5) मध्यम वर्ग की अवहेलना- रॉय के अनुसार मार्क्स की यह धारणा गलत है कि मध्यम वर्ग का लोप हो जाएगा। मार्क्स की भविष्यवाणी के सर्वथा विपरीत मध्यम वर्ग का उलटे विकास हुआ है और आर्थिक प्रक्रियाओं के विस्तार के साथ मध्यम वर्ग की संख्या बढ़ रही है। प्रथम महायुद्ध के बाद विश्व के विभिन्न देशों के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन में मध्यम वर्ग की भूमिका पहले की तुलना में और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। राय मध्यम वर्ग को ही समाज का नेतृत्व सौंपने की वकालत करते हैं और मध्यम वर्ग को ही क्रान्तिकारी कार्यों का सूत्रधार मानते हैं।

(6) नैतिक शक्ति की अवहेलना- मार्क्सवाद के विरूद्ध राय की एक गम्भीर आपत्ति यह रही हे उनमें नैतिक नियमों के चलने के लिए कोई स्थान नहीं है। मार्क्सवादी दर्शन व्यक्ति को अपेक्षित स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करता। यह दर्शन व्यक्ति को केवल इस बात की स्वतन्त्रता देता है कि वह ऐतिहासिक आवश्यकता को समझ ले और स्वयं को उसके समक्ष प्रसन्नतापूर्वक समर्पित कर दे। राय ने कहा, स्वतन्त्रता की यह धारणा तो गुलामी धारणा है जिस पर चलने से समाज 'स्वेच्छापूर्ण गुलामों' का समूह बन जाएगा। समाज के विकास में नैतिक शक्ति की अवहेलना करना मार्क्सवाद का निश्चय ही एक गम्भीर दोष है।

(7) सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद (सर्वाधिकारवाद) की आलोचना- मार्क्स ने पूंजीवादी व्यवस्था के अन्त में बाद 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद' की स्थापना का विचार दिया। व्यवहार में स्थिति यह है कि आधुनिक युग की विशाल राजकीय सेनाओं के सामने सर्वहारा वर्ग की शक्ति नगण्य है और मार्क्स जिसे 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद' कहता है, व्यवहार में वह राज्य का सर्वाधिकारवाद होता है। रॉय व्यक्ति की स्वतन्त्रता की दृष्टि से मार्क्सवाद पर आधारित इस सर्वाधिकारवाद का विरोध और उदारवाद का समर्थन करते हैं।

(8) मार्क्सवादी दर्शन में व्यक्ति की उपेक्षा- व्यक्ति जो कि स्वतन्त्रताप्रिय, कल्पनाशील और रचनात्मक प्रवृत्ति का प्राणी है, मार्क्सवादी दर्शन और उससे भी अधिक मार्क्सवादी व्यवस्था में एक साधन मात्र बना दिया गया है। मानव का विकास नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता से ही सम्भव है। मार्क्सवादी दर्शन में व्यक्ति को इस स्वतन्त्रता से वंचित कर समष्टि की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान कर दिया गया है।" रॉय मार्क्स की तरह समाज को प्राथमिकता देकर व्यक्ति को दूसरे स्थान पर नहीं रखना चाहते।"

(9) हिंसक पद्धति की आलोचना- मार्क्सवाद हिंसा और बल प्रयोग की प्रवृत्ति में विश्वास करता है। रॉय का विचार है कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित हिंसात्मक तरीका ही व्यवस्था में परिवर्तन का एकमात्र उपाय नहीं है, वे शान्तिपूर्ण तरीके से राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियों को सुधारना उचित समझते हैं। साधन तथा साध्य के अटूट सम्बन्धों के विषय में उनका पूरा विश्वास था।

(10) राज्य के लोप होने की धारणा से असहमति- मार्क्स के इस मत से पूर्ण असहमति प्रकट की है कि सर्वहारा के अधिनायकतन्त्र के अन्तर्गत समाजवादी समाज का विकास इस प्रकार से होगा कि राज्य क्रमशः निर्बल होता जायेगा और अन्त में मुरझा जायेगा। मानव सभ्यता के जन्म के साथ ही राज्य का उदय हुआ है और सभ्यता के विकास के साथ-साथ राज्य के रूप में संगठन में परिवर्तन होते रहे हैं। इस प्रकार मानव-सभ्यता एवं राज्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और राज्य के अन्त का अर्थ होगा कि मानव पुनः सभ्यता से पूर्व की अवस्था में पहुँच जाये।

रॉय मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए भी कुछ सिद्धान्तों पर सहमति प्रकट की है। वस्तुतः रॉय के विचार निरन्तर विकसित होते रहे। मार्क्स के दर्शन के प्रति सहमति के सन्दर्भ, उनके प्रारम्भिक दौर के चिन्तन में अभिव्यक्त हुए। स्टेलिनकालीन रूस के अपने अनुभवों तथा निरन्तर विकसित होते हुये अपने मानवतावादी विचारों के कारण वे धीरे-धीरे मार्क्स के दर्शन से दूर होते चले गये। वे मार्क्सवादी से मानवतावादी बन गये। जहाँ मार्क्स का दर्शन व्यक्तिगत चेतना की तुलना में वर्ग-चेतना को महत्व प्रदान करता था और रॉय के मत में मनुष्य और उसकी चेतना को किसी भी व्यवस्था का दास बनाना उचित नहीं हैं।

15.3.2 मानवेन्द्र नाथ रॉय एवं गाँधीवाद

मार्क्सवाद की तरह गाँधीवाद के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों के बारे में भी रॉय के चिन्तन में एक सुनिश्चित स्थायित्व का अभाव दिख पड़ता है, तो भी इन दोनों परस्पर विरोधी दर्शनों (मार्क्सवाद एवं गाँधीवाद) के प्रति रॉय की दृष्टि में एक आधारभूत अन्तर भी दिख पड़ता है। जैसे-जैसे रॉय के राजनीतिक अनुभव एवं चिन्तन में परिपक्वता बढ़ती गयी, वैसे-वैसे ही रॉय की मार्क्सवाद से दूरी बढ़ती गयी और गाँधीवादी विचारो के नजदीक आते रहे। उनके चिन्तन के कुछ पहलुओं पर गाँधीवाद एवं गाँधी का प्रभाव भी पड़ा। अतः यह माना जाता है कि अपने राजनीतिक चिन्तन की परिपक्वता के काल में गाँधीवाद एवं गाँधी के बारे में रॉय का दृष्टिकोण पर्याप्त सन्तुलित एवं मर्यादित हो गया था।

सन् 1920-21 में गाँधी ने जो असहयोग आन्दोलन चलाया, एम.एन. राय उससे प्रभावित हुए थे। सन् 1922 में उन्होंने अपनी पुस्तक श्व्दम ल्मंत व िछवद.ब्व.वचमतंजपवदश् में गाँधी को महान् व्यक्ति बतलाते हुए उनकी तुलना सेण्ट थामस एक्वीनास, रोमा रोलां तथा सेण्ट फ्रांसिस से की। गाँधी असहयोग आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप देने में सफल रहे थे, अतः उन्होंने गाँधी की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए उन्होंने गाँधी के

रचनात्मक योगदान का उल्लेख करते हुए माना कि गाँधी के नेतृत्व ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एकता उत्पन्न की और इसे बड़े वर्गों के प्रभाव से निकालकर राष्ट्रव्यापी एवं जन-साधारण की संस्था बनाया। गाँधी के नेतृत्व ने सामान्य जनता के सहयोग से ब्रिटिश राज के विरुद्ध स्वराज्य की सीधी लड़ाई शुरु की और राष्ट्रीय आन्दोलन को विस्तृत वर्गीय आधार प्रदान किया। गाँधी ने भारतीय राजनीति में असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा कर न देने के अहिंसात्मक उपायों के प्रयोग की शुरूआत की जो उनसे पूर्व के उदारवादी तथा उग्रवादी कांग्रेसी नेतृत्व द्वारा अपनाये गये साधनों की तुलना में अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुये। एम.एन. राय ने यह भी माना कि गाँधी की अहिंसात्मक राजनीति के कारण ब्रिटिश राज अपनी क्रूर दण्डात्मक व दमनात्मक शक्ति का खुलकर प्रयोग करने में असमर्थ रहा और इससे सामान्य जनता में ब्रिटिश राज का भय समाप्त हुआ।

तदापि मानवेन्द्र नाथ रॉय ने निम्नलिखित आधारों पर गाँधीवादी दर्शन की आलोचना की -

(1) राजनीति के आध्यात्मीकरण के संबंध में मतभेद

रॉय ने गाँधी द्वारा राजनीति के आध्यात्मीकरण की आलोचना की है। उनका स्पष्ट मत था कि

आध्यात्मवाद एक पारलौकिक विषय है और उसका कोई महत्त्व वैयक्तिक जीवन में नहीं है। राजनीति का सम्बन्ध मानव के भौतिक जीवन से है। अतः इन दो विपरीत प्रकृति वाले विषयों को मिलाने से राजनीतिक जीवन में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न होंगी। रॉय का मत था कि सत्य, ईश्वर, शाश्वत विधि व नैतिकता, आत्मा की अमरता, कर्म-सिद्धान्त आदि की आध्यात्मिक अवधारणाओं के आधार पर राजनीति का बुद्धिपूर्ण संचालन असम्भव है। साध्य के समान साधन की पवित्रता का गाँधीवादी आध्यात्मिक सिद्धान्त राजनीति के यथार्थवादी क्षेत्र में सफल हो, इस पर रॉय को संदेह था।

(2) गाँधीवाद में ठोस आर्थिक कार्यक्रम का अभाव

रॉय की मान्यता थी कि गाँधीवाद में आर्थिक कार्यक्रम का अभाव था। उनका मत था कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् कृषकों और श्रमिक वर्ग में पनप रहे तीव्र असन्तोष के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में ठोस आर्थिक कार्यक्रमों को सम्मिलित कर के, उन वर्गों को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति आकर्षित किया जा सकता था। किन्तु गाँधी ने जनता के समक्ष ऐसा कोई ठोस आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया, जो उन्हें उनके जीवन-स्तर में सुधार एवं उन्नति कर सके।

(3) गाँधी के वर्ग-सहयोग के सिद्धान्त की आलोचना

रॉय ने गाँधी द्वारा समाज के सर्वथा विपरीत हित रखने वाले वर्गों - जमींदारों और पूंजीपतियों जैसे शोषकों, तथा कृषकों और श्रमिकों जैसे शोषितों के मध्य समन्वय करने के प्रयास की आलोचना की। गाँधी अपने

आन्दोलन में शोषक पूंजीपति और जमींदार, शोषित किसान तथा मजदूर सबको एक साथ लेकर चलना चाहते हैं। रॉय की मान्यता थी कि पूंजीपतियों और श्रमिकों के हितों के मध्य सामंजस्य असम्भव और असंगत है। उन्होंने गाँधी की इस बात के लिये आलोचना की है कि उन्होंने जन-आन्दोलन को संगठित करने के लिये जमींदारों, पूंजीपतियों और भू-पतियों से समर्थन की अपेक्षा की। उन्होंने गाँधी के न्यासिता के सिद्धान्त को अव्यावहारिक और असंगत बताया। उन्होंने सचेत किया कि पूंजीपतियों व शोषकों के हृदय -परिवर्तन के माध्यम से एक न्यायपूर्ण, सन्तुलित, समतावादी, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना एक काल्पनिक भुलावा मात्र है। राय ने कहा है कि गाँधीवाद बहुसंख्यक जनता के असहनीय कष्टों पर मगरमच्छी आंसू बहाने के अतिरिक्त उनके लिए और कुछ नहीं कर रहा।

(4) राजनीति और धर्म के संयोग की आलोचना

गाँधी धर्म और राजनीति के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के समर्थक थे और वे धर्म-विहीन राजनीति को मृत्यु-जाल मानते थे। उन्होंने राजनीति में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, तप, त्याग, आत्म-निरीक्षण, आत्म-संयम, प्रायश्चित आदि धार्मिक प्रकृति के नैतिक नियमों को लागू करने की कोशिश की है। रॉय राजनीतिक जीवन में इन धार्मिक नैतिक नियमों के पालन के कट्टर विरोधी हैं। वे मार्क्स के समान धर्म को अफीम की गोली मानते हैं और धर्म को एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक शक्ति के रूप में ही देखते हैं। इसके साथ ही रॉय का आरोप है कि गाँधी का हिन्दू धर्म के प्रति विशिष्ट झुकाव था जिसके कारण राजनीति के एकीकरण में बाधा आयी। गैर-हिन्दू समुदायों ने उनकी धार्मिक राजनीति को मानवता की राजनीति के रूप में नहीं, अपितु हिन्दू नेता की राजनीति के रूप में स्वीकारा। रॉय का मत है कि गाँधी ने भारतीय राजनीति में हिन्दू धार्मिक पुनरुत्थानवाद को लोकप्रिय बनाया। उन्होंने हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था की संस्थाओं का तथा ऐसे परम्परागत मूल्यों का समर्थन किया जो युगों से मानवीय असमानता एवं शोषण के साधन रहे हैं। रॉय का मत है कि भारत मे गाँधी की धार्मिक राजनीति की लोकप्रियता का मूल कारण भारतीय जनता का बौद्धिक पिछड़ापन रहा है।

(5) औद्योगीकरण और आधुनिक सभ्यता के प्रति गाँधी के दृष्टिकोण पर आपत्ति

गाँधी यन्त्रों पर अंधाधुन्ध आधारित आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था तथा उसके साथ विकसित होने वाली आधुनिक सभ्यता के कटु आलोचक थे। उन्होंने यन्त्र-आधारित भारी भरकम उद्योगों की अपेक्षा लघु और कुटीर उद्योगों पर आधारित विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का प्रतिमान प्रस्तुत किया। रॉय ने गाँधी के इस आर्थिक प्रतिमान की कठोर आलोचना की। उन्होंने गाँधी के 'चरखे के अर्थशास्त्र को 'प्रतिगामी अर्थशास्त्र' कहकर उसका उपहास किया। उन्होंने कहा कि चरखे की ओर लौटने का अर्थ है कि दो हजार वर्षों में हई मानवीय प्रगति और भविष्य की स्वर्णिम आशाओं से मुँह मोड़ लिया जाए। गाँधी जनता के भौतिक और आर्थिक

कल्याण की सुरक्षित करने की अपेक्षा, जनता को आत्मत्याग और भौतिक आवश्यकताओं को सीमित रखने के नैतिक उपदेशों को अधिक महत्व दिया।

रॉय ने मशीनी सभ्यता के प्रति गाँधी की आशंकाओं को अनुचित माना। उनका मत था कि मनुष्य ने, प्रकृति की दासता से मुक्ति पाकर, एक कष्टपूर्ण और लम्बे संघर्ष के बाद मशीन का आविष्कार किया है, अतः उनके परित्याग का गाँधी का विचार अनुचित है। रॉय का कथन था कि पूंजीवाद में मशीन पर श्रमिक की अपेक्षा पूंजीपति का नियन्त्रण होता है, अतः वह शोषण का माध्यम बन गई है। रॉय के अनुसार इसका समाधान यह नहीं है कि मशीन का उन्मूलन करके, उत्पादन की प्रणाली को आदिम दौर में लौटा दिया जाए। उनके अनुसार इसका उपाय समाजवाद में निहित है, जो कि मशीन को मनुष्य की सेवा के लिये प्रयुक्त करेगा।

(6) अहिंसात्मक आन्दोलन की नीति की आलोचना

रॉय के अनुसार गाँधीवाद मूलतः एक रहस्यात्मक एवं अबौद्धिक दर्शन है और इसलिए उसमें आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन की दृष्टि से प्रबुद्ध क्रांतिकारिता का अभाव है। इस दृष्टि से रॉय ने

गाँधी की आन्दोलन की अहिंसात्मक पद्धति की गंभीर आलोचना की है। उनका मत है कि वैयक्तिक जीवन में अहिंसा की नीति का महत्त्व हो सकता है, किन्तु आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के हल के लिए यह बौद्धिक एवं यथार्थवादी नीति नहीं है और इसके सफल होने की कोई सम्भावना भी नहीं है। रॉय का आरोप है कि आर्थिक क्षेत्र में गाँधी की अहिंसात्मक आन्दोलन की नीति ने जमींदार एवं औद्योगिक घरानों को कांग्रेस का समर्थक बना दिया है, क्योंकि उन्होंने इस अहिंसा की नीति के कारण शोषितों के उग्र विरोध से स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया है। रॉय का मत है कि राजनीति क्षेत्र में भी अहिंसा की नीति पर आधारित असहयोग आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन भारत को स्वराज्य दिलाने में असफल रहे हैं। उनका सुझाव है कि आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में अहिंसात्मक आन्दोलन के स्थान पर 'जुझारू सामूहिक कार्यवाही' की नीति अपनायी जानी चाहिए।

गाँधी और गाँधीवाद के विरोध के प्रति रॉय की प्रतिक्रिया स्थाई नहीं रह सकी। जैसे-जैसे उनके विचारों का साम्यवाद से बुनियादी लोकतन्त्रवाद और नव-मानवतावाद की ओर रूपान्तरण होता गया, गाँधी के विचारों के प्रति उनके विरोध का स्वर क्रमशः कोमल होता गया। उन्होंने गाँधी की मृत्यु के बाद अपने दो लेखों- दी मैसेज ऑफ दी मार्टेयर तथा होमेज टू दी मार्टेयर में पहली बार गाँधी एवं उनके सिद्धान्तों की सराहना की और उनके साथ अपनी वैचारिक सहमति भी प्रकट की। उनका यह दृष्टिकोण भविष्य में भी स्थायी रूप से बना रहा। अपने जीवन के अन्तिम दौर में तो वे गाँधी के नैतिक व्यक्तित्व की प्रशंसा करने लगे।

15.3.3 मानवेन्द्र नाथ रॉय और मौलिक लोकतन्त्र की अवधारणा

राय पूंजीवादी लोकन्त्र और साम्यवाद दोनों ही के विरूद्ध थे, क्योंकि इन दोनों के द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता का ह्रास होता है। राय का कहना था कि वर्तमान सामाजिक ढाँचा ही ऐसा है जिसमें व्यक्ति अपने जन्मसिद्ध अधिकार अर्थात् स्वतन्त्रता का समुचित उपभोग नहीं कर पाता। राज्य का निर्माण स्वतन्त्र और शान्तिपूर्ण जीवन के लिए मनुष्यों के सहकारी प्रयास द्वारा हुआ है, यह शक्ति पर नहीं बल्कि व्यक्ति की नैतिक भावना पर आधारित है, अतः आवश्यक है कि यह एक बाध्यकारक संस्था के रूप में न रहे अपितु ऐसे वातावरण की सृष्टि में सहायक हो जिसमें मनुष्य मानसिक रूप से स्वयं का स्वतन्त्र अनुभव करते हुए स्वतन्त्रता का निर्माण करने में प्रयत्नशील रहे। एम. एन. राय ने अपनी कृति 'दी प्रिसिपिल्स ऑफ रेडिकल डेमोक्रेसी' में अपनी मौलिक लोकतन्त्र सम्बन्धी आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। रॉय के मौलिक लोकतन्त्र का मूल आदर्श है प्रबुद्ध आधार पर एक ऐसे स्वतन्त्र समाज का संगठन करना, जिसमें व्यक्ति पूर्णतः स्वतन्त्र हो और उसका सर्वांगीण विकास एवं कल्याण भी सम्भव हो।

एम.एन. राय ने एक ऐसी लोकतांन्त्रिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की है जो साम्यवादी लोकतन्त्र तथा उदारवादी संसदीय लोकतन्त्र दोनों के अवगुणों से मुक्त है। उन्होंने व्यक्ति का मूल अधिकार स्वतन्त्रता माना है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था का भी मूल लक्षण स्वतन्त्रता को ही स्वीकारा है। रॉय ने स्वतन्त्रता को अपनी लोकतन्त्र की अवधारणा में केन्द्रीय स्थान दिया है। अतः उन्होंने अपनी लोकतन्त्र की अवधारणा को बुनियादी (मौलिक) लोकतन्त्र, अथवा प्रबुद्ध लोकतन्त्र कहा है। यह प्रबुद्ध लोकन्त्र मानवीय तर्क एवं विवेक के आधार पर समाज की एक संगठित अवस्था है, अतः रॉय ने इसे संगठित लोकतन्त्र भी कहा है। बुनियादी लोकतन्त्र के अन्तर्गत समाज का संगठन तथा संचालन सहकारिता के आधार पर होगा, अत रॉय ने इसे 'सहकारी समाजवाद' भी नाम दिया है।

मानवेन्द्र नाथ रॉय की मौलिक या संगठित लोकतन्त्र की अवधारणा की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित हैं:

1. विकेन्द्रीकृत सत्ता:

एम. एन. रॉय का 'बुनियादी लोकतन्त्र' सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। रॉय के अनुसार यह विकेन्द्रीकृत लोकतान्त्रिक प्रणाली, शासन के अधिकतम कार्यों में व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी पर आधारित होगी। रॉय के अनुसार इस व्यवस्था में वास्तविक राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय स्तर पर संगठित सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों में नहीं, अपितु व्यापक तौर पर स्थानीय, तालुका और जिला स्तर पर संगठित 'जन-समितियों' में निहित होगी। इन जन-समितियों में जनता प्रत्यक्षतः अपनी शक्ति का प्रयोग करेगी और अपने विषयों का स्वयं निर्धारण करेगी। रॉय ने कहा कि इस व्यवस्था में राज्य और समुदाय के मध्य कोई टकराव नहीं होगा। समुदाय में व्यक्ति की स्वतन्त्रता पुष्पित और पल्लवित होगी, तथा राज्य व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरणकर्ता

बनने की अपेक्षा, व्यक्ति स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने का उपकरण बनेगा तथा व्यक्ति के जीवन में राज्य का हस्तक्षेप कम से कम रहेगा।

2. दलविहीन लोकतन्त्र की स्थापना:

रॉय आज के लोकतन्त्र का सर्वप्रमुख दोष राजनीतिक दलों की वर्तमान व्यवस्था को मानते हैं। राजनीतिक दलों ने वर्तमान लोकतन्त्र को अपने बाहुपाश में इस प्रकार से जकड़ लिया है कि लोकतन्त्र मात्र एक 'दलीय यन्त्र' बनकर रह गया है। दलों ने व्यक्ति की प्रेरणा शक्ति और निर्णय शक्ति दोनों को ही कुण्ठित कर दिया है और व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना असम्भव हो गई। राजनीतिक दलों का उद्देश्य शासन-सत्ता के लिए छीना-झपटी करना ही रह गया है, उन्हें जनता के वास्तविक हितों की कोई परवाह नहीं होती। राजनीतिक दल अपनी स्वार्थ साधना के लिए नैतिकता और न्याय की बलि चढ़ा देते हैं। रॉय ने कहा कि यदि नैतिक उत्थान करना है, तो वर्तमान दल-पद्धति को समाप्त करना ही होगा। विश्व के नैतिक पतन का एक मूल कारण यह वर्तमान दल पद्धति ही है। अतः रॉय के अनुसार, "यदि हमें लोकतन्त्रवाद की रक्षा करनी है तो उसे 'दलरहित' बनाना होगा अर्थात् एक 'दलविहीन लोकतन्त्र'की स्थापना करनी होगी" यह दलविहीन लोकतन्त्र आत्मनिर्भर समितियों के सक्रिय योगदान पर आधारित होगा।

3. जन समितियों पर आधारित व्यवस्था:

रॉय ने अनुभव किया कि वर्तमान समय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीति सत्ता केन्द्रित हो गई है और उदारवादी लोकतन्त्र में जिस चुनाव पद्धति का प्रचलन है, उसमें योग्य व्यक्तियों के चुने जाने की कोई संम्भावना नहीं है। वे जनता के बौद्धिक और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता अनुभव करते हैं और आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के दोषों का निवारण करने के लिए 'संगठित लोकतन्त्र' का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिसका सबसे प्रमुख तत्व है, ' जन समितियों के माध्यम से समस्त कार्यों का सम्पादन।

4. मौलिक लोकतन्त्र की संरचना:

रॉय ने मौलिक लोकतन्त्र की राजनीतिक संरचना एवं संगठन में जन समितियों का उल्लेख किया है- स्थानीय तालुका, जिला, प्रान्त तथा राष्ट्र। रॉय के अनुसार वयस्क मताधिकार के आधार पर सभी व्यस्क स्त्री-पुरुषों द्वारा स्थानीय जन-समिति के सदस्यों (जन-प्रतिनिधियों) का चुनाव किया जायेगा। किसी स्थानीय जन-समिति के लिए प्रत्येक 50 मतदाताओं के द्वारा एक जन-प्रतिनिधि का चुनाव किया जायेगा। जन-प्रतिनिधि का कार्यकाल मात्र एक वर्ष होगा। प्रत्येक तालुका की एक अपनी जन-समिति होगी, जिसके सदस्यों का निर्वाचन उस तालुका के क्षेत्र में आने वाली स्थानीय जन-समितियों द्वारा किया जायेगा। प्रत्येक जिले के स्तर पर एक जिला जन-समिति होगी, जिसके सदस्यों का निर्वाचन उस जिला-क्षेत्र में आने वाली तालुका जन-समितियों द्वारा किया

जायेगा। प्रत्येक तालुका जन-समिति अपने से सम्बन्धित जिला जन-समिति के लिए 5 प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी।

प्रत्येक प्रान्त के सामान्य प्रशासन के लिए उसकी प्रान्तीय जन-समिति का गठन किया जायेगा।

इसके सदस्य उस प्रान्त का गवर्नर तथा जन-प्रतिनिधि होंगे, जिनका चुनाव उस प्रान्त की समस्त जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जायेगा। गवर्नर का चुनाव पाँच वर्ष के लिए किया जायेगा तथा जन-प्रतिनिधियों का चुनाव चार वर्ष के लिए होगा। प्रान्तीय जन-समिति के पास प्रान्तीय शासन से सम्बन्धित विधायी व कार्यपालिका शक्तियाँ होंगी।

सम्पूर्ण राष्ट्र के सामान्य प्रशासन का कार्य सर्वोच्च जन-समिति द्वारा किया जायेगा। सर्वोच्च जन-समिति का निर्माण गर्वनर जनरल तथा दो सभाओं द्वारा होगा। इन सभाओं के नाम हैं- संघीय सभा तथा राज्य सभा। गवर्नर जनरल का चुनाव सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर पाँच वर्ष के लिए किया जायेगा। संघीय सभा के सदस्यों (जन-प्रतिनिधियों) का चुनाव सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चार वर्ष के लिए किया जायेगा। राज्य सभा का गठन विभिन्न प्रान्तों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होगा। सभी प्रान्तों को समान संख्या में प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त होगा। रॉय राज्य सभा में विशिष्ट व्यावसायिक समूहों एवं बौद्धिक वर्ग को स्थान देने के समर्थक हैं। प्रत्येक प्रान्त की प्रान्तीय जन-समिति चिकित्सकों, इन्जीनियरों, वैज्ञानिकों, वकीलों आदि तकनीकी व्यावसायिक समूहों में से प्रत्येक समूह के दो-दो प्रतिनिधियों को चुनकर राज्य सभा में भेजेगी। इस प्रकार राज्य सभा के गठन में व्यावसायिक लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकारा गया है।

रॉय ने प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिए विभिन्न सुझाव दिये हैं। उन्होंने प्रान्तीय जन-समिति के सन्दर्भ में स्थानीय जन-समितियों को प्रत्याह्वान (Recall) तथा विधि पर लोक-मत संग्रह (Referendum) का अधिकार दिया है।

रॉय ने अपनी बुनियादी लोकतन्त्र की अवधारणा के अन्तर्गत जिस राष्ट्रीय संघ के निर्माण का सुझाव दिया है, वह अपनी प्रकृति से एक परिसंघ है। इसकी इकाइयों को संघ के परित्याग का अधिकार प्राप्त होगा। इस प्रकार राष्ट्रीय प्रशासन का संचालन संघ की इकाइयों की सहमति एवं सहयोग से किया जायेगा।

5. संक्रमणकालीन व्यवस्था:

रॉय इस तथ्य से अवगत थे कि दलीय राजनीति को, दलविहीन प्रजातन्त्र में बदलना तत्काल सम्भव नहीं है। वे यह जानते थे कि राजनीति का यह मौलिक रूपान्तरण धीरे-धीरे ही किया जा सकता है। रॉय ने सुझाव दिया कि दलविहीन प्रजातन्त्र की स्थापना हो पाने के पूर्व संक्रमणकालीन अवस्था में तानाशाही की अपेक्षा संसदीय

प्रजातन्त्र ही अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने सुझाव दिया कि संक्रमणकाल में संसदीय प्रजातन्त्र के दोषों का धीरे-धीरे निवारण करने का प्रयास किया जायेगा। उनका मत था कि संक्रमणकाल में शासन के पदों पर, विवेकशील, सृजनात्मक क्षमतों के धनी, निष्ठावान और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध लोगों को प्रतिष्ठित करके संसदीय प्रणाली के स्वरूप में सुधारों को सम्भव बनाया जा सकता है। इस संक्रमण काल में स्थानीय जन समितियों का संगठन किया जायेगा और इनके माध्यम से स्थानीय जनता स्थानीय विषयों से सम्बन्धित समस्त राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों का प्रयोग करेगी। रॉय के अनुसार संक्रमण-काल में बुनियादी लोकतन्त्र की स्थापना के लिए अग्रलिखित दो दिशाओं में विशेष प्रयत्न करने की जरूरत होगी- (1) लोक-शिक्षण, तथा (2) आर्थिक पुनः नियोजन।

i) लोक शिक्षण

लोक शिक्षण का अर्थ सम्पूर्ण जनता को मात्र साक्षर बनाने से या उसे परम्परागत ढंग से शिक्षित करने से नहीं है, अपितु जनता के विवेक एवं उसकी रचनात्मक शक्तियों को जागृत करने से है। रॉय के अनुसार लोक शिक्षण एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति का नाम है, जो व्यक्ति को उसकी स्वतन्त्रता, गरिमा एवं अधिकारों के साथ ही उसे सार्वजनिक कत्त्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति भी जागृत एवं सक्रिय बनाती है। यह व्यक्ति की रचनात्मक क्षमताओं एवं सहयोग मूलक प्रवृत्तियों को विकसित करती है। लोक शिक्षा व्यक्ति को एक ओर निजी स्वतन्त्रता व सम्प्रभुता की रक्षा की प्रेरणा देती है और दूसरी ओर उसे सार्वजनिक (सामुदायिक) हित के साथ इनका ताल-मेल स्थापित करने की प्रेरणा भी देती है।

ii) आर्थिक पुनः नियोजन:

रॉय के अनुसार बुनियादी लोकतन्त्र की स्थापना तभी सम्भव है जबकि समाज में इसके लिये उपयुक्त आर्थिक परिस्थितियाँ विद्यमान हों। उनका स्पष्ट मत था कि जब तक आर्थिक असमानता, आर्थिक शक्तियों का कुछ हाथों में केन्द्रीयकरण और शोषण विद्यमान है तब तक सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना सम्भव नहीं है। धीरे- धीरे अर्थव्यवस्था को इस प्रकार रूपान्तरित किया जाना चाहिये कि उसमें केन्द्रीयकरण और शोषण की सम्भावनाएं कम हाती जाएं और समुदाय के प्रत्येक सदस्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। इस रूपान्तरित अर्थव्यवस्था में उत्पादन और वितरण मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिये। इस दृष्टि से उन्होंने अर्थव्यवस्था के सामाजिक नियोजन पर बल दिया; किन्तु उन्होंने इस विषय में भी सतर्क रहने का सुझाव दिया कि नियोजन के नाम पर, व्यक्ति की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता का हनन नहीं किया जाये। उन्होंने कहा "नया समाज, विवेक और ज्ञान पर आधारित होगा। अतः स्वाभाविक रूप से नियोजित होगा, किन्तु नियोजन में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को प्रमुख उद्देश्य माना जायेगा।"

इस प्रकार राय का ‘संगठित लोकतन्त्र’ प्रत्यक्ष तथा विकेन्द्रित लोकतन्त्र था, जिसमें राय ने राजनीतिक दलों के लिए कोई स्थान नहीं रखा था। राय ने बताया कि छोटे-छोटे सहकारी संगठनों के द्वारा आधुनिक राज्यों में यह प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्थापित किया जा सकता है। इस व्यवस्था में शक्ति जनता के हाथों में रहेगी और जनता ही शासन कार्य में भाग लेकर इसका नियन्त्रण करेगी।

राय की संगठित लोकतन्त्र की योजना और विनोबा, जयप्रकाश नारायण, आदि सर्वोदयी विचारकों की विचारधारा में बहुत कुछ समानता है। सर्वोदयी विचारक भी राजनीति को समाज के सभी रोगों का मूल कारण मानते हुये राजनीति के स्थान पर लोकनीति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, राजनीतिक-आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं तथा गाँवों को स्वशासी और आत्मनिर्भर इकाइयां बनाना चाहते हैं। राय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था का चित्र भी ऐसा ही है। राय और सर्वोदयी विचारक, दोनों ही राजनीतिक दलों की व्यवस्था को समाप्त करने पर बल देते हैं। राय और सर्वोदयी विचारकों की योजना में मुख्य अन्तर यही है कि राय स्वायत्तशासित ग्राम गणराज्य के स्थान पर जन समितियों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

15.3.4 मानवेन्द्र नाथ रॉय की नवीन मानववाद की संकल्पना

एम.एन. रॉय के राजनीतिक चिन्तन का सर्वश्रेष्ठ रूप उनकी नवीन मानववाद की अवधारणा में दिखाया है, यह उनके समस्त चिन्तन का सार एवं निष्कर्ष है। यद्यपि मानवाद का आधुनिक काल तक विभिन्न रूपों में विकास हुआ है, किन्तु रॉय ने पहले के मानववाद से अपनी इस अवधारणा को मूलतः भिन्न बताया है। उन्होंने अपनी मानववाद की अवधारणा के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर इसे विभिन्न नाम दिये हैं; जैसे- मौलिक या प्रबुद्ध मानववाद (Radical Humanism), नव मानववाद (New Humanism), सम्पूर्ण मानववाद (Integral Humanism), वैज्ञानिक मानववाद (Scientific Humanism) आदि। रॉय ने अपना नवीन मानववादी दर्शन मुख्यतः ‘रेडिकल ह्यूमेनिज्म’ नामक पुसतक में दिया है। इस दर्शन की दृष्टि से उनकी एक अन्य प्रमुख रचना है- ‘नयू ह्यूमेनिज्म एण्ड पॉलिटिक्स’।

रॉय से पहले समस्त मानववादी चिन्तन को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा जा सकता हे- आध्यात्मिक मानववादी तथा भौतिक (पदार्थवादी) मानववादी चिंतन। रॉय का मत है कि प्राचीन काल से आधुनिक युग तक इन दोनों प्रकार के मानववादी विचारकों ने मानव की प्रकृति, उसकी समस्याओं एवं उसके कल्याण के बारे में पर्याप्त चिन्तन किया है, किन्तु उन्होंने मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं स्वीकारा है। इसलिए मानव को केन्द्रीय स्थान नहीं मिला, वे अन्तिम रूप से मानव की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार नहीं कर सके। वस्तुतः काण्ट जैसे आध्यात्मिक मानववादी चिन्तकों ने सृष्टि की आध्यात्मिक सत्ता (परा-सत्ता) की व्यवस्था के एक अंग के रूप में मानव पर विचार किया है और मानव के अस्तित्व पर ईश्वरीय विधि एवं दैवी नैतिकता के बन्धन को मान्यता दी है और मार्क्स जैसे भौतिक मानववादी विद्वान ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के आधार पर मानव कल्याण

आर्थिक नियमों के द्वारा माना है जिन पर मानव का कोई नियन्त्रण नहीं है। मार्क्सवाद वह मानव के भौतिक कल्याण को तो सुनिश्चित करता है, किन्तु आर्थिक कारकों से अलग जीवन के अन्य कारक जैसे नैतिक कारकों की अवहेलना की है। इसलिए उन सभी के चिन्तन में मानव को केन्द्रीय स्थान भी नहीं मिल पाया है और वे अन्तिम रूप से मानव को अपने भाग्य (नियति) का निर्माता भी नहीं स्वीकार पाये हैं।

रॉय के अनुसार पश्चिमी व्यक्तिवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर राज्य तथा समाज द्वारा किए जाने वाले अतिक्रमणों का तो विरोध किया गया, किन्तु इसमें व्यक्ति की आर्थिक स्वतंत्रता के महत्व की उपेक्षा की गई। रॉय का मत था कि आर्थिक अभावों से मुक्त, आत्मनिर्भर व्यक्ति ही वस्तुतः स्वतंत्रता का उपयोग करने में सक्षम हो सकता है।

अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगौर तथा गाँधी जैसे विचारकों के चिन्तन को भी रॉय पूर्ण अर्थ में मानवतावादी नहीं मानते।इस 'आध्यात्मिक मानवतावादियों' के बारे में रॉय का मत है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को स्वतंत्र मानने की अपेक्षा वे उस पर आध्यात्मिकता का प्रतिबंध लगा देते हैं। रॉय का आरोप है कि गाँधी जैसे विचारकों के चिन्तन में आध्यात्मवाद की प्रबलता के कारण व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा हो गई है। गाँधी के अनुसार व्यक्ति परमात्मा का अंश मात्र है, तथा उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा में विलीन हो जाने में ही निहित है। रॉय का मानना है कि ईश्वर और आध्यात्मिक सत्ता के वर्चस्व के कारण गाँधी मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते है।

रॉय का मत है कि उन्होंने पहली बार मानववादी दर्शन में मानव को केन्द्रीय एवं मौलिक स्थान दिया है। रॉय ने मानव पर किसी परा-सत्ता या अति प्राकृतिक सत्ता जैसे किसी बाह्य अधिबन्धन को मान्यता नहीं दी है। उनके अनुसार मानव स्वयं अपना केन्द्र है; वह पूर्ण स्वतन्त्र है और अपने भाग्य का स्वयं ही निर्माता है।

मानवेन्द्र नाथ रॉय के इस नवीन मानववाद की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं:

(1) मानव सम्पूर्ण जीवन का मूल है और प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड:

नवीन मानववाद के अनुसार, 'मनुष्य की मानव जाति का मूल है- तथा प्रोटेगोरस के इस विचार को स्वीकार करता है कि 'मनुष्य ही प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है।' पहले कथन का आशय है कि मानव जीवन अपने आप में पूर्ण है अतः मानव को किसी बाहरी और अति प्राकृतिक सत्ता का आश्रय लेने की न तो कोई आवश्यकता है और न ही इसका कोई औचित्य है। दूसरे कथन के अनुसार जो कि विख्यात यूनानी दार्शनिक प्रोटेगोरस का है, रॉय ने यह माना है कि प्रत्येक वस्तु के मूल्यांकन का आधार यही हो सकता है कि वह मानव जीवन को किस रूप से प्रभावित करती है। रॉय के अनुसार, मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है और उसमें इतनी क्षमता है कि वह विश्व को आज की तुलना में श्रेष्ठ और सुन्दर बना सके। रॉय का कहना था कि हम सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों

और ग्रहों, आदि के अध्ययन में रुचि भले ही लें लकिन हमें यह नहीं मानना चाहिए कि ये नक्षत्र हमारे भाग्य के निर्धारक हैं अथवा हमारे चरित्र या क्षमता पर इनका कोई प्रभाव पड़ता है।

मानवेन्द्र नाथ रॉय के अनुसार मानव की दृष्टि से स्वयं मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। अत संसार की अन्य सभी वस्तुओं के महत्त्व को केवल मानव के सन्दर्भ में ही प्रकट किया जा सकता है। एक मानव के रूप में हमारा सम्बंध केवल उन वस्तुओं से हो सकता है, जो हमारे जीवन को प्रभावित करती है। रॉय का मत है कि ईश्वर, निरपेक्ष प्रज्ञा, दैवी विधान आदि कोई अस्तित्व नहीं है और इसलिए वे हमारे जीवन को प्रभावित भी नहीं करते हैं। अतः मनुष्य का इनसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है और उनका अध्ययन भी नहीं किया जाना चाहिए। मानव किसी बाह्य सत्ता के कारण नहीं अपितु, अपनी स्वयं की प्रकृति से नैतिक प्राणी है। रॉय के अनुसार यह एक ऐसा तथ्य है जिसे विज्ञान की मदद से सिद्ध किया जा सकता है। मानव का स्वयं का महत्त्व है, समाज का या राज्य का नहीं। वास्तव में मानव स्वयं अपना साध्य है, अन्य सभी साधन मात्र है। सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं की रचना स्वयं मानव ने की है, अतः इनका महत्त्व केवल मानव के ही सन्दर्भ में है; संक्षेप में ये सभी मानव के लिए हैं, मानव इनके लिए नहीं है। मानव स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। उल्लेखनीय है कि 'मानव प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है'- प्रोटेगोरस के इस कथन को विकसित करते हुये ही रॉय ने यह कहा कि 'मानव-मानव जाति का मूल है। इस प्रकार रॉय का सम्पूर्ण ध्यान संसार की वास्तविकता पर है, वे ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते हैं और मनुष्य को भाग्यवाद के स्थान पुरूषार्थ के हाथों समर्पित करते हैं।

2. मानवीय विवेक में विश्वास:

रॉय के अनुसार विवेकशीलता मानव स्वभाव का सहज लक्षण है। मानव का स्वभाव एक विकासशील प्रवृत्ति है। अंधविश्वास, जादू-टोना और प्राकृतिक धर्म के प्रति झुकाव, मनुष्य के स्वभाव की अविकसित अवस्था की ओर संकेत करते हैं। रॉय के अनुसार जैसे-जैसे मनुष्य ने प्राकृतिक तत्वों व विश्व के प्रति अपना ज्ञान बढ़ाया और नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान होते गये, अंध-विश्वास और लौकिक क्रियाकलाप के पारलौकिक व दैवीय कारण खोजने की प्रवृत्ति कम होती गयी है और मनुष्य के विश्वास की अपेक्षा 'विवेकशीलता' प्रबल होती गयी है।

3. मानव स्वभाव से विवेकशील एवं नैतिक प्राणी है:

रॉय ने इस बात का खण्डन किया कि मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी है, अथवा वह आध्यात्मिक और सामाजिक बाध्यताओं के अधीन ही नैतिक आचरण करता है। रॉय ने जिस नैतिकता का प्रतिपादन किया उसका आधार

आध्यात्मवाद नहीं था और इसलिए उनका कहना था कि नैतिकता कोई अति-मानवीय (Super Human) तथा ब्राह्य वस्तु न होकर एक आन्तरिक शक्ति है जिसका पालन मनुष्य को ईश्वरीय अथवा प्राकृतिक भय से नहीं अपितु समाज कल्याण की भावना से करना चाहिए। राय ने यह विश्वास प्रकट किया कि नैतिकता के अभाव में हम मनुष्य की कल्पना नहीं कर सकते। समाज का आधार जितना अधिक नैतिकवादी और बुद्धिवादी होगा, मानव व्यक्तित्व क विकास पर लगे हुए प्रतिबिम्ब उतने ही अधिक शिथिल अथवा समाप्त हो जायेंगे और उसे उतनी ही अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी। समाज का पुनर्निर्माण प्रार्थना, जादू-टोना या अंधविश्वास के आधार पर नहीं किया जा सकता बल्कि बुद्धिवादिता और वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग पर ही किया जा सकता है।

रॉय ने मनुष्य के स्वभाव की व्याख्या जीवशास्त्रीय आधार पर की। उनके अनुसार मानव स्वभाव निरन्तर विकासमान है। उसमें निम्न से उच्च स्तर की ओर प्रगति करते हुए पूर्ण मानवीय स्तर तक विकास की प्रवृत्ति सदैव विद्यमान रही है। प्रत्येक जीवित तत्व, जाने-अनजाने अधिकतम संभव स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। उनके शब्दों में "अस्तित्व के लिये संघर्ष नकारात्मक अर्थ में स्वतंत्रता की खोज ही है।" रॉय के अनुसार विवेक, नैतिकता और स्वतंत्रता मानव स्वभाव की तीन शाश्वत विशेषताएं हैं।

4. मानववाद का आधार तत्व स्वतन्त्रता:

राय के मानववाद का आधार तत्व स्वतन्त्रता है और राय ने स्वतन्त्रता के तीन आधार स्तम्भ बताए हैं: मानववद, व्यक्तिवाद और विवेकवाद। रॉय ने मनुष्य के आत्मविश्वास और आत्म-सुरक्षा के लिए स्वतन्त्रता को आवश्यक माना है। उनका मानववाद मानव मात्र को स्वतन्त्रता का संदेश देता है। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, अतः वह स्वतन्त्रता की कामना करता है। स्वतन्त्रता के मार्ग में अनेक बाधाएं और कठिनाइयां आती हैं। धर्म ने अपना बुद्धिवादी चरित्र खोकर अपनी कठोरता और कट्टरता से मानव स्वतन्त्रता और मानव सभ्यता को बड़ा आघात पहुँचाया है। इसी प्रकार परिवार, राज्य और कानून, आदि विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं ने भी रूढ़िवादी और परम्परागत रवैये से हमारे दृष्टिकोण को संकीण और स्वार्थपूर्ण बनाकर स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधाएं खड़ी की हैं।

रॉय के अनुसार स्वतन्त्रता मानव जीवन का सर्वोच्च सद्गुण है, क्योंकि वस्तुतः स्वतन्त्रता की आकांक्षा ही मानव के अस्तित्व का सार है। रॉय की मान्यता है कि स्वतंत्र मानव की समतामय और न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना का आधार बन सकते हैं। मानव की स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता या स्वतन्त्रता के मर्यादाहीन उपयोग की अनुमति नहीं देता। उनके अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्रता में सामाजिक व्यवस्था की सुदृढ़ता और समुदाय के सदस्यों के हितों की पूर्ति स्वाभाविक रूप से अन्तर्निहित हैं। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के दो पक्ष सामने आते हैं- स्वतन्त्रता का वैयक्तिक पक्ष तथा स्वतन्त्रता का सामाजिक पक्ष। मानव विवेक के अनुसार सामाजिक स्वतन्त्रता

वैयक्तिक स्वतंत्रता का ही बड़ा रूप है, अतः व्यक्ति का विवेक सामाजिक स्वतन्त्रता के पक्ष में व्यक्ति को अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को मर्यादित एवं सीमित करने की प्रेरणा देता है। रॉय के अनुसार नवीन मानववाद एक ऐसी स्वतन्त्र समाज व्यवस्था की स्थापना का विचार है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र हो। उनका मत है कि ऐसे स्वतन्त्र समाज की प्राप्ति केवल मौलिक लोकतंत्र की मदद से ही की जा सकती है।

5. विश्व-बधुत्व पर आधारित विश्ववाद का समर्थन:

रॉय अपने राजनीतिक चिन्तन के प्रारम्भिक दौर में राष्ट्रवादी थे, किन्तु बाद में वे अन्तराष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुये। उन्होंने अपने चिन्तन के अन्तिम चरण में नव-मानववाद की अवधारणा को प्रस्तुत किया और इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रवाद के स्थान पर विश्ववाद का विचार प्रस्तुत किया।

रॉय ने 'विश्व राज्यवाद' तथा अन्तर्राष्ट्रवाद' के बीच भेद किया है। अन्तर्राष्ट्रवाद में पृथक् राष्ट्रीय राज्यों के अस्तित्व का विचार निहित है और अन्तर्राष्ट्रवाद इन पृथक् राष्ट्रीय राज्यों के बीच भाई-चारे तथा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थिति का नाम है; लेकिन विश्व राज्यवाद की स्थापना इन राष्ट्रीय राज्यों का निराकरण करके ही की जा सकती है। विश्व राज्यवाद तो समस्त विश्व के मानवों के साथ सीधे जुड़ा हुआ है। यह तो विश्व के विभिन्न राज्यों क बीच नहीं, वरन् विश्व के समस्त मानवों के बीच बन्धुत्व की स्थिति का नाम है। रॉय के अनुसार राष्ट्रवाद एक संकीर्ण विचारधारा है जो मानव-मात्र की विश्वव्यापी एकता के मार्ग में बाधा है। उन्होंने राष्ट्रीय राज्यों की सीमाओं से परे, स्वतन्त्र स्त्रियों और पुरूषों के सार्वभौम समुदाय की कल्पना की।
रॉय ने अपने नवीन मानववाद को कठोरता की परिधि में नहीं बाँधा है वरन् उसे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होने वाला सिद्धान्त बताया है।

15.4 सारांश

मानवेन्द्र नाथ रॉय का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में विशिष्ट स्थान है। रॉय का राजनीतिक चिंतन लम्बी वैचारिक यात्रा का परिणाम है। वे किसी विचारधारा से बंधे हुए नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिकवादी आधारभूमि और मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजनों के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा। जहाँ उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की कटु आलोचना की, वहीं मार्क्सवाद की आलोचना में भी पीछे नहीं रहे। रॉय ने सम्पूर्ण मानवीय दर्शन की खोज के प्रयत्न के क्रम में यह निष्कर्ष निकाला कि विश्व के प्रचलित आर्थिक और राजनीतिक प्रणालियाँ मानव के समग्र कल्याण को सुनिश्चित नहीं करतीं। पूँजीवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद तथा अन्य विचारधाओं में उन्होंने ऐसे तत्वों को ढूँढ निकाला जो किसी न किसी रूप में मानव की सत्ता, स्वतंत्रता, तथा स्वायत्तता पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। रॉय ने अपने नवीन मानववादी दर्शन से मानव को स्वयं अपना केन्द्र बताकर मानव की स्वतंत्रता एवं उसके व्यक्तित्व की गरिमा का प्रबल समर्थन किया है। वस्तुतः बीसवीं सदी में फासीवादी तथा साम्यवादी समग्रतावादी राज्य-व्यवस्थाओं ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्व का दमन

किया और उदारवादी लोकतन्त्र में मानव-कल्याण के नाम पर निरन्तर बढ़ती केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से सावधान किया। रॉय ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्व की गरिमा के पक्ष में जो उग्र बौद्धिक विचार दिये है, उनका आधुनिक युग के लिए विशिष्ट महत्त्व है।

15.5 अभ्यास कार्य

1. मार्क्सवाद के प्रति मानवेन्द्र नाथ रॉय के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
2. गाँधीवाद के प्रति मानवेन्द्र नाथ रॉय की प्रतिक्रया एवं दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।
3. मानवेन्द्र नाथ रॉय की मौलिक लोकतन्त्र की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
4. मानवेन्द्र नाथ रॉय के नवीन मानववाद के सिद्धान्त की विवचेना कीजिए।

15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, वी. पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशलोजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज्म्, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
2. वर्मा, वी. पी., द पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1986
3. नागर, पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2002
4. मजहर किब्रिया, गाँधी एण्ड इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपेरेशन, नई दिल्ली, 1999